

ॐ

* स्वसर्पणम् *

श्रीमता स्वर्गाय आह्वयार्थिणा

सिद्धान्वारिधि—

पं० नरसिंह दास जी

इत्येतेषां कर-कमलेषु
सादर समर्पणं ; आशाकार्यनुन-
माणिकचन्द्र की-देय



१०-६०

३३

❀ नमो महावीराय ❀

धर्म-फल-सिद्धान्त

(धर्मश्च फलञ्च सिद्धान्तश्च, धर्मफलसिद्धान्ता)

लेखक—

स्याद्वाद वारिधि, सिद्धान्त महोदधि, तर्क-रत्न,
न्याय दिवाकर, दार्शनिक शिरोमणि, न्यायाचार्य
श्रीमान् प० माणिक्रुचन्द्र जी कौन्देयः
चावली निवासी, सहारनपुर ।

प्रकाशक —

अरुलङ्कप्रेस, रानी बाजार, सहारनपुर

मिती-कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी,
वीर निर्वाण सं० २४७४

प्रथम निबन्ध

१००० प्रति

मूल्य-त्रि स्वाध्यायः

(तीन पार)

* पुस्तक-निष्ठ विषय सूची *

संख्या	विषय	पृष्ठसंख्या
१	पूज्य भाई जी का जीवन-परिचय	१
२	प्राग्वत्तन्त्र	१६
३	अशुद्धि-शुद्धि सूचना	२०
— ❁ ❁ ❁ —		
४	धर्म-सेवन का प्रधान फल	१
५	धर्मका फल कर्मोंके सबर और निर्जरा है	१०
६	सोता जी का प्रकरण	११
७	हिंसा मूलतः दुःख है, धर्म सुख रूप है	२०
८	धर्म-पालनमें प्रलोभन त्याग्य है	२१
९	अहिंसा, उत्तम क्षमा सिद्धों में	२६
१०	पूर्वजन्म में विशान्याने ठोस धर्म पाला	३२
११	लौकिक फल हेय है	३८
१२	केवलज्ञान अविचारक	४७
१३	जीवों से सुख दुःख का बदला नियत नहीं। स्वावलम्ब्य,	५०
१४	नरकों स्वर्गोंमें जाने आने वाले कहां हैं ?	६४
१५	जाप में अज्ञान मन को लगाओ	६६
१६	चमत्कारों में मत फंसो, दिनचर्या पालो	६८
१७	नवयुवकों के प्रति विशेष उपदेश	८३

१८	मुनि मूढ ध्यान कर लिया करें (माण- खिलीणो अपमत्तो)	८७
१९	जैनमें लोच-प्रतिष्ठित भी कितने ?	८९
२०	अतिशयो के लोलुप	९०
२१	नि कात् भक्ति और वैराग्य	९३
२२	जीवजाति परिज्ञान तथा पुण्यसे सधर बहुत बड़ा ।	९८
२३	इन्द्रकी सपर्या और शासन (कण्ट्रील)	१०५
२४	रत्नत्रयसे जन्व नहीं, तीनों समान हैं	१०८
२५	अन्तरात्मा भी अध्यात्म पुरुषार्थ से कभी एक जाता है ।	१०९
२६	व्यवहारकाल और देवकृत्य वास्तविक हैं	११४
२७	कल्पपृष्ठों की शक्तिया नियत हैं	११८
२८	देवों की जिनपूना सामग्री और नैवेद्य यवार्थ हैं ।	१२८
२९	समवसरण तथा इन्द्रध्वज पूजा के कृत्य असली हैं ।	१३०
३०	ध्यान और ध्यातव्य	१३३
३१	गुणों की सकर परिणतिया	१३७
३२	एकैन्द्रियों में कर्मबन्ध के कारण	१३८
३३	अज्ञात भाग से आस्रव	१३८
३४	विकल्पत्रयोंके ज्ञात अज्ञात उपकार अपकार	१४२

३५	अभाव बड़ा काम करते हैं भावों के सहोदर हैं ।	१५२
३६	जीवों की शरीररचना, और जलबिंदु के जीव ।	१५७
३७	लार मूत्र अनुपसेय है, अशुद्ध है	१६३
३८	नरकोंमें भावहिंसा बीज है द्रव्यहिंसा वम	१६६
३९	सस्कार और छायावाद	१७०
४०	ज्ञान से श्यामिष्ट प्राप्ति-परिहार	१७५
४१	गुरु निना स्याध्याय, फीका	१७६
४२	गाय मांस में गाय सरोखे जीव नहीं, ज्ञान में प्रतिनिम्ब नहीं ।	१७७ १७९
४३	कर्म और पुरुषार्थ तथा धर्म का फल	१८०
४४	बाहुवली के शल्य नहीं, राजोमती के भाव अच्छे ।	१९०
४५	कर्मों का मटियामेट नहीं हो सकता है	१९५
४६	गृहस्थ परिहृत भी मर्थ निर्माण कर सकते हैं ।	१९६
४७	धर्म पालना भी भारी पुरुषार्थ है	२०२
४८	अतिम भद्रलाचरणम्	२०४
४९	आभार प्रदर्शन	२०५
५०	सम्मति द्वय	२१०
५१	परिशिष्ट निवेदन और आय व्यय	२१३

१२१ सार्वश्रीद्वादशाङ्गाम्बुनिविमुपयनौ ^{स्य} अभाङ्गम् न्यतुल्य-
 १५० श्रीमत्तत्पार्य—शास्त्रामिलुठनजनितानेकरत्नाप्त्युपज्ञम् ।
 १६३ सत्याङ्कस्यात्प्रमाणैवकृतिनयनवच सप्तमगैर्भवेदो (जो)
 १६६ जित्वैरान्तप्रवादानधिगमजसुदृग् लब्धयेध्यात्मशास्त्रम् ॥
 १७०
 १७५
 १७६
 १७७
 १७८
 १८०

श्रीमान स्वर्गीय परम पूज्य सिद्धान्त वारिधि

पं० नरसिंहदास जी प्रतिष्ठाचार्य का
 संक्षिप्त जीवन्-परिचय



१६० आगरा नगर (सयुक्तप्रान्त) से ७ फीस दूरी पश्चिम दिशा
 १६५ में 'धावली' एक सुन्दर एव प्रसिद्ध गाव है इसके चारो ओर १६
 १६६ उपगाव हैं। इस गाव मे एक सुन्दर जिनालय और १६ घर
 २०२ पद्मावती पुरवाल दिगम्बर जैनो के थे (जिनमें से अब कुछ कम
 २०४ हो गये हैं क्योंकि यहा के अनेक परिवार अब भिन्न भिन्न नगरों
 २०५ में रहने लगे हैं) उनमें से एक प्रमुख कुलपति का नाम लाला
 २१० नन्दराम जी था। ला० नन्दराम जी सौम्यस्वभावी, धर्मनिष्ठ
 २१३ व्यक्ति थे। उनके प्रतापसिंह जी, उमरावसिंह जी, हेतसिंह जी,
 राजाराम जी ये चार पुत्र हुए। चारों पुत्र कट्टर धार्मिक एव धीर

धे । ला० राजाराम जी तो अन्धे प्रतिष्ठ पदकषात भी थे ।
 इन चार भाइयों में से उमरावसिद्ध जी के केषल पुत्रियाँ हुए ।
 पुत्र न हुआ अतः उनकी वंशपरम्परा आगे न चल सकी । जेठ
 तीनों भाइयों की वंश-परम्परा अन्धी कृती कती । सब से बड़े
 लाला प्रतापसिद्ध जी के पुत्र रणजोयदाम जी चावली में व्यापार
 वदासीन प्रति से रहते हैं । पन्चोत्स वर्ष से एगाराज करत हैं ।
 पाचवी प्रतिभावा पालन करत हैं । इतर चार पुत्र हैं । राजाराम
 जी के गुणधरलाल जी आदि चार पुत्र हुये ।

द्वितीय पुत्र पूज्य पिता जी भीमान् ला० इतसिद्ध जी अपने
 समय के एक अन्धे धीरे, धर्मज्ञ, शास्त्र-व्याख्याता थे वे धरमपि
 संस्कृत भाषा बन्ध नहीं जानत थे चित्तु दिव्यी भाषा के अच्छे
 विद्वान् थे । लाला देवसिद्ध जी के चरित्रनायक भीमान् व० नर-
 सिद्धदास जी तथा मैं (दायाचार्य व० माणिकचन्द्र) के दो
 सुचरित्र पुत्र हुए । भाईजी भीमान् व० नरसिद्धदास जी का
 जन्म वि० स० १६२६ में हुआ । मेरा जन्म माप शुक्रा ५ दि०
 स० १६७३ में हुआ । मैं (माणिकचन्द्र) भाई जी से १४ वर्ष
 छोटा हूँ । पूज्य पण्डित नरसिद्धदास जी ने प्रारम्भिक शिक्षा उन्हें
 कक्षा तक अपने गाँव की सरकारी पाठशाला में पाई । पिता जी
 एक अच्छे शिक्षा प्रेमी में पड़े धर्मात्मा में, आठ वर्ष की अवस्था
 से ही रात्रि-बल का त्याग था अष्टमी, चतुर्दशी, नन्दीप्रहर-प
 दरालक्ष्य में सर्वदा जीवन-पर्यन्त एकमान किया उपवास क
 रिये । बन्धवविश्यों में मात्र १० हरिआश्रय यम था, जन्मद्वयभक्त

सप्त-व्यसन का त्याग था पन्द्रह वर्ष की अवस्था से ही चार सौकों का नियम था यदि वे सुपारीभी खाते तो एक शुद्ध स्थान पर बैठकर खाते थे। कुन्ना कर उठने थे उड़ एक सौक समझी जाती थी, मैंने कभी उनको कफ, सासी, जुकाम, बुखार होते नहीं देखा मतला चञ्चल नीरोग शरीर था, कईवार सम्मेदशिखर, चम्पापुर, पावापुर, गिरिनार जी आदि क्षेत्रों की पैदल वन्दनायें कीं। द्वाद-शाब्द वाणी के प्रचार की अटूट भावना थी, देशांतरों में भेजीं उनकी सैकड़ों विराल चिट्ठियाँ और हजारों मौखिक उपदेशों से हम दोनों भाइयों को शुभ शिक्षायें प्राप्त हुईं। वे मन्तोपी अरपा-रम्भी सद्गृहस्थ थे। उनकी उत्कट ईच्छा थी कि उनका पुत्र संस्कृतभाषा का प्रकाण्ड विद्वान् बने। सन्नुसार उन्होंने नै पण्डित नरसिंहदास जी को हिन्दी की छोटी कक्षा पास कराकर अलीगढ़ की दिर्गम्बर जैन पाठशाला में संस्कृत पढ़ने के लिये भेजा। यह पाठशाला रानीवाले सेठों की सहायता से श्रीमान् प० छेदालाल जी को देख देख में चलती थी। (श्रीमान् प० छेदालालजी तथा स्व० श्रीमान् प० प्यारेलाल जी पाटनों अलीगढ़ ने पद्मवती पुरवालीय विद्वान् श्रीमान् प० छत्रपति जी से शिक्षा प्राप्त की थी प० छत्रपति जी अपने समय के अद्वितीय विद्वान् थे) प० नरसिंहदास जी अलीगढ़ में प० छेदालाल जी से धर्म-शास्त्र और ब्राह्मण पण्डित जीवाचार जी से संस्कृत व्याकरण, काव्य, साहित्य अध्ययन करते थे।

उस समय पढ़नेके लिये विद्यार्थियों को आन कल सरीखी

छात्रावास (बोर्डिंग हाउस) आदि सुविधाएँ न थीं, अतः खान पान आदिके अनेक कष्ट उठाकर अलीगढ़से बीस कालेन बनारस की संस्कृत प्रथमा-परीक्षा पास की। तत्पश्चात् अलीगढ़ में शिक्षा का प्रबंध सत्तोप-वनक न होने के कारण और संस्कृत भाषा के क्षेत्र बनारस में अध्ययन का प्रस्ताव सुनकर परिचित नरसिंहदास जी संस्कृत भाषा के उच्च अध्ययन के लिये काशी चले गये।

बनारस में संस्कृत पढ़ने के लिये उन्हें बहुत बड़ी तपस्या करनी पड़ी। क्योंकि उस समय वहाँ जैन विद्यार्थियों के पढ़नेके लिये न तो कोई विद्यालय था और न कोई छात्रालय (बोर्डिंग-हाउस)। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी आपत्ति यह थी कि बनारस के ब्राह्मण विद्वान् बदारिरोधी होने से जैनों को अच्छत जैस समझते थे और जैनों को पढ़ाना तो बुर की बात रही उनको पास बिठाने में अपना घर अपवित्र हुआ चिन्ताते थे और उनको छूलेने से ब्रह्मण करते थे तथा उनके साथ बात चीत कर लेन पर अपने मुख को अपवित्र हुआ मानते थे।

अतः उस समय बनारस में किसी ब्राह्मण विद्वान् से जैन विद्यार्थी अपने वास्तविक रूपमें संस्कृत न पढ़ सका था तदनुसार श्रीमान् पं० नरसिंहदास जी, उनके ताउजात भाईरणछोरदाम जी, चायदियारर स्व० पं० पत्रालाल जी, स्व० पं० गौरीलाल जी, स्व० पं० रामदयालु जी, स्व० पं० कलाधर जी ने ब्राह्मण वेश में वैसे नाम रखकर अनेक विपत्तियां सहते हुये संस्कृत भाषा का

अध्ययन किया, जैसे बौद्ध वेप में माननीय श्री अकलङ्क निपक-लङ्क ने अध्ययन किया था । तत्कालीन बनारस के प्रख्यात विद्वान् स्व० श्री महामहोपाध्याय तात्या शास्त्री, म० म० प० सीता राम जी शास्त्री, म० म० दामोदर शास्त्री आदि से सिद्धांत कौमुदी (मनोरमा), दिनकरी, साहित्य दर्पण, माघ, किरात, नैपथ्य आदि व्याकरण, न्याय, साहित्य के ग्रंथों का अध्ययन किया । बनारस में कपट ब्राह्मण वेप का फुट रहस्य खुल जाने का आभास हो जाने पर बड़ा से भाग कर आप नजद्वीप (नदिया शान्तिपुर) पढ़ने चले गये वहा पर भी ब्राह्मण रूप में पंचलक्षणी, सामान्य निरुक्ति आदि नव्यन्याय का अध्ययन किया । इस प्रकार चरितनायक श्रीमान् पं० नरसिंहदास जो ने षड़ी विपत्तियों, कठिनाइयों को पार करते हुये विद्याध्ययन किया ।

अध्ययन समाप्त करके श्रीमान् पं० नरसिंहदास जी अजमेर में श्रीमान् एन० सेठ मूलचन्द्र जी सोनी के अनुरोध पर पढ़ाने के लिये २०) मासिक पर नियुक्त हुए, वहा पर आपने चारों अनुयोगोंका अच्छा स्वाध्याय किया और स्व० श्रीपण्डित बलदेवदास जी के कादाचित्क सत्सङ्ग से तथा पं० मोहनलालजी के सम्पर्क से अच्छा सैद्धान्तिक-ज्ञान प्राप्त कर लिया । साथ ही विधिकर्म, प्रतिष्ठाकाण्ड के ग्रंथों का परिशीलन किया ।

सं० १९५४ को मथुरा (चौरासी) में स्थापित हुये महा-विद्यालय में द्वितीय अध्यापक होकर २६) रु० मासिक वेतन पर गुरु गोपालदास जी के विशेषाग्रह से पढ़ाने चले आये । मथुरा में

आपसे मैंने (लघु भ्राता पं० माणिकचन्द्र) पं० झालाराम डं
 मैनपुरी पं० रामप्रसाद जी चम्पई, स्व० पं० मनोहरलाल जी
 पादम पं० दामोदरलाल जी गुरई, पं० जमोलचन्द जी उद्देश,
 पं० मन्मथनलाल जी देहली, पं० सोनपाल जी सरनउ, स्व० पं०
 हीरालाल जी, पण्डित मन्मथनलाल जी पामा आदि विद्वानों ने
 शिला प्राप्त की। उस समय मेरी आयु ११ वर्ष थी। उन दिनों
 म्याय घाघस्पति, स्व० श्रीमान् पं० गोपालदास जी परैया तथा
 पं० घणालालजी आदि ने एक पण्डित सभा स्थापित की थी वसने
 आप मंत्री थे अनेक प्रश्नों के उत्तर देते थे। पद्मावतीपुरवास
 सभा के भी आप मंत्री रहे। श्रीमान् सेठ नेमोचन्द जी टोफमचंद
 जी अजमेर के सामह आह्वान पर स० १९६८ में पण्डित जी पुन
 अजमेर पढ़ाने के लिये चले गये, जैन पाठशाला में अनेक छात्रों
 को पढ़ाया। उन दिनों श्रीमान् स्व० सेठ फण्णमल जी इन्दीर
 ने टाचैतमें पद्मकल्याणक प्रतिष्ठा कराई उसके प्रतिष्ठाचार्य श्रीमान्
 पण्डित नरसिंहदास जी थे प्रतिष्ठा आपने एसे सुन्दर-विधान के
 साथ की कि समस्त आगतुक व्यक्ति वमसे बहुत सन्तुष्ट और
 प्रसन्न हुए भी उरजैन गया था। स० १९६५ में सम्मोदरिशहरपर
 जो सिवनी निवासी स्व० श्रीमान् सेठ पूरणसाह जी ने प्रतिष्ठा
 कराई थी उसके प्रतिष्ठाचार्यभी आप थे। कुन्देलखण्ड में भी कई
 प्रतिष्ठायें आपने कराई थी।

अजमेर में स्वर्गीय पं० बनारसीदास जी आदि को पढ़ाया
 पण्डित जी को हजारों रुपेक कष्टस्थ थे। अजमेर में कोई अधिक

काम नहीं था अतः दिनरात शास्त्र-व्यालोडन करते रहते थे।

इस वर्ष पण्डित जी के ऊपर महान् दुःख का प्रकरण उपस्थित हो गया। महान् परोपकारी स्नेह-चारिधि पूज्य पिता जी का चावली में स्वगवास हो गया। ससार में सभी माता, पिता अपने पुत्रों से स्नेह करते हैं, किंतु यह पिता भोक्तातिराम्त बिलक्षण स्नेह करने वाले थे, वे प्राचीन दिगम्बर आचार्यों के महान् ग्रन्थों का अध्ययन, अध्यापन, कर स्वपर कल्याण करना, यश उपार्जन करना, धार्मिक आचरण करना कराना यह सत्पुत्र का कर्तव्य समझते थे। सदा शुभ भावों को अपण करते रहते थे, उन दिनों अपने प्राण-प्रिय लड़काको कौन यज्ञाल बनारस भेजता था, किन्तु उन्होंने ने ठोस पुत्र-स्नेह यही समझा कि यह लड़का उच्चकोटि का विद्वान् बनकर जिनागम की प्रभावना करे। उन्होंने ने अपने तन मन धन को पुत्र शिक्षामें लगा दिया था। तभी तो ऐसी निरुद्ध परिस्थितियों में पण्डित जी को प्रशम्ब विद्वान् बना सके थे।

पूज्य पिता जी ने तीनों काल में हम दोनों से गृहस्थ सम्मन्धों कुछ भी काम कराने की इच्छा नहीं रखी। एक लोटा पानी भी नहीं लिचवाया। सब कार्य अपने हाथ करते थे। कभी एक पैसा कमाने की या कमाई लेने की स्वप्न में भी बाछा नहीं की, कमाकर कुछ रुपये दिये भी तो उन्होंने ने उपेक्षा भाव रक्खा, लिये नहीं। इन कार्यों में फस जाने से वे छानोपाजन में विघ्न होना अनुभव करते थे। स्वयं अच्छा उपाजन कर लेते थे।

पूतन-पाठ का बहुत उत्साह था । श्रीमन्तभद्राचार्ये
 हुन्दहुन्द, नेमिचन्द्र सिद्धात-चक्रवर्ती अक्लकृदेनआदि महर्षियों
 के गम्भीर प्रयोगों में छिपे हुये द्वाणशास्त्र-वाडमय के प्रचारकी तीव्र
 भावनायें सबदा अपने हृदय में अटूट मरी रहती थीं । दशास्य
 जाते समय भाईनी की सूत की कठोर करघौनी में रुपया के अति
 रिक्त छोटे लत्तामें छिपाकर दो सोला सोना धाघ दिया करते थे कि
 कष्ट अवसर पर सोना बेच कर अध्ययन करते रहना पूज्य पिता
 जी के गुणों का स्मरण पर धन भी आरो साधू हो जाती है
 आयुष्य के अन्तिम निपेणों पर किसी का धरा नहीं ।

पूज्य पिता जी का स्वर्गवास होन के पश्चान् परिहृत जी ने
 अजमेर की नौकरी छोड़कर चाण्डी में ही रहने का विचार किया
 लेन-देन गहना रखने का व्यापार बदा लिया यों इन दिनों डेढ़सौ
 रुपये मासिक की आय हो जाती थी, पं० जी किसी आसामी को
 सताते नहीं थे । उनके व्यवहार से सर्व मामयासी प्रसन्न थे ।
 कुछ खालाफ आदमियों ने परिहृत जी की सरलता अनुसार धोखा
 दिया, यों दस हजार रुपया मारा गया । परिहृत जी सन्तोषी थे
 आनन्द के साथ छ-बीस वर्ष चावली में रहे । विवम सम्बत्
 १६८८ में परिहृतनी को इष्ट-विद्योग का दुःख सहना पड़ा । प्रसन्न
 अवस्था में पक्षाघात हो जाने से तीसरी पत्नी का भी
 विद्योग हो गया ।

व्यागी पुरुष तो धन वस्तु आदि का त्याग कर ही देते
 हैं तभी व उत्कृष्ट जनों का पालन कर पाते हैं । कित्त मन्त्र

सद्गृहस्थके लिये इस युगमें न्यायोपार्जित धन, और पूर्वविनाहित धर्मपत्नी का होना आवश्यक है। वृद्ध अवस्था में भैयागृत्य, सद्ब्यय, तीर्थ-यात्रा, परोपकार, मुनिदान आदि में इन्हीं दो का सहारा है। धर्म-पत्नी का अभाव गृहस्थ अवस्था में गटकने की बात है। “प्रद्विणी गृहमित्याहुः”

परिहृत जी के चार पुत्र हैं। बड़ा पुत्र नमिचन्द्र चायली में काम करता है। नमि के पाच पुत्र और दो लड़कियाँ हैं। दूसरा पुत्र ताराचन्द्र दरने (मथुरा) औपघालय में वैद्य है इसके पाच लड़के और दो लड़कियाँ हैं। तीसरा लड़का हेमचन्द्र सरसेठ भागचन्द्र जी महोदय के पास अजमेर में रहता है, इसके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं। चौथा पुत्र सुमतिचन्द्र आगरा में ऐम०, ए० ऐल० टी० की परीक्षा दे रहा है, इसका विवाह हो चुका है। परिहृत जी की लड़की जारली व्याही है।

सरसेठ भागचन्द्र जी महोदय ने पं० जी को कुल-प्रमाणत वात्सल्यानुसार धड़े सन्मान और आप्रह के साथ सौ २० मासिक वेतन पर पुन अजमेर बुला लिया और अपने रङ्ग-महल में ठहराया। कोई विशेष कार्य नहीं दिया, सेठानी और सेठ जी को पं० जी पढाते थे। परिहृतनन स्वाध्याय, अध्ययन अध्यापन के अतिरिक्त और व्यापार कर ही क्या सकते हैं ?

सरसेठ भागचन्द्र जी ने छोटी ही अवस्था में अनेक गुण प्राप्त कर लिये हैं। इनको कुटुम्ब-परम्परा से विद्वत्स्नेह है। पञ्जाबवासी पं० मथुरादास जी, जयपुरवासी पं० सदासुरज जी, पं०

धनराल जी गोधा, पं० बलदेवदाम जी, पं० गोपालदास जी, पं० धनारसीदास जी आदि गृहीय-विद्वान् के रूप में सेठ जी के पृथ-वर्तियों के यहाँ रह चुके हैं।

अन भी सरसेठ भागचंद्र जी को जाप, पूजन, स्वाध्याय ध्यान, विद्वत्समागम का अधिक उत्साह रहता है। भाद्रपद में रत्नशय्य घृत करते हुये उनकी सौम्यमूर्ति, दर्शनीय अनुकरणीय हो जाती है। पाच दिन तक नगे पाव रहते हैं। मन्दिर जी को नंगे पैर जाते हैं। प्रासाद, हवेली, सवारी, भूषण आदि का त्यागकर केवल जिन-मन्दिर या शहर से बाहर छोटी सी फोठरी में विविक्ष रहते हैं। अन्य भी धनिकोचित अनेक गुण हैं। राज राष्ट्र जनता में अनिच्छ उपकारों द्वारा अत्यधिक मायता बढ़ा ली है। मिलन प्रकृति है। धन, भोग, कुटुम्ब, इन्द्रिय-विषय आदि में अत्यासक्ति नहीं है धर्माचरण से परिणाम अनुस्यूत रहते हैं। सम्यक्त्व के सभी अङ्गों को पालते हैं।

परिदृष्ट जी में इनने कतिपय आवश्यकताओं का अध्ययन किया। वही दिनों परिदृष्ट जी के ऊपर पुन दुःख प्रकरण आया दो पुत्र, एक पुत्री, छह पौत्रों और चौदह मपौत्रों में रहते हुये भी खाली में माता जी का अठ्ठासी वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया। ये माता जी भी गम्भीर धमात्मा, गृहव्यवस्था-दक्ष थी, अनेकत्रय, उषवास, रस-त्याग, तीर्थ-यात्राओं की थी। रात्रि जल का त्याग तो सात वर्ष की उम्र से ही था, भोली, सौम्य, सरल प्रकृति थी, अस्ती कुटुम्बी जीव उनकी आत्मा को शिरोधार्य करते

थे। कईवार सम्मोदशिखर आदि तीर्थोंकी यात्रा की, उद्यापन भी किये। दोनों समय दशन, जाप्य, का नियम था। समाधि मरण के दिन भी जिन-दर्शन किये। सभी कुटुम्बी उनकी आज्ञा पालते थे। धन कुटुम्बियों में उनका तीव्रराग नहीं था। सदा परिणाम अच्छे रहते थे। माता जी के स्वर्गारोहण से दोनों पुत्रों को शोक हुआ। ऐसे शुभ-भाषों पूरे आशीर्वाद देने वाली आत्माओं की न्यूनता है। “जगदस्त्रिणम्”।

पण्डित जी सदा से ही धर्म-सेवन करते रहे। प्रतिदिन पञ्च-स्तोत्रों का पाठ, जाप्य, ध्यान, जिनार्चा, स्वाध्याय का नियम उनका जीवन भर निभ गया था। सम्मोदशिखर जी, गिरनारजी चम्पापुर, पावापुर, शत्रुघ्नय आदि क्षेत्रों की बन्दनार्यें की थीं। तथा अन्य कुटुम्बीजनों को तीर्थ-यात्रा धर्मसेवन में लगाये रहते थे, सन्तान को उचित शिक्षा-सम्पन्न सदाचारी बनाया। पण्डित जी ने चायलीमें एक छोटा सा श्रीपथालय खोल रखा था। विना मूल्य श्रीपथिया घाटा करते थे। बच्चों की बीमारी को शीघ्र दूर कर देते थे। दो दो चार चार फोस के रुग्ण बच्चे लाये जाया करते थे। पण्डित जी की चिकित्सा से वे आरोग्य पाते थे, फितने ही गरीबों पर व्याज छोड़ देते थे।

सेठ पद्मचन्द्र जी आदि के सादर बुलाने पर पण्डित जी तीन चार बार दशलक्षण-पर्व में आगरा गये। शास्त्र प्रवचन किया। आगरे वालों ने प्रसन्न होकर पण्डित जी को “सिद्धात-धारिधि” पदवी से सुशोभित किया। पण्डित जी को समझाने

का प्रथम यज्ञ अच्छा आता था । कठिनातिकठिन जैनसिद्धांतके प्रमेयों को युक्ति तथा उदाहरणों द्वारा गले घतार देने में वे बड़े सिद्धहस्त थे । मन्दमति श्रोताओं को भी बड़ी पुरालता से समझा देते थे । घृ वि पण्डित जी पूजन, पाठ, प्रथमापुयोग, चरणा-नुयोग, द्रव्यानुयोग, कर्मकाण्ड, व्याकरण, न्याय, प्रतिष्ठा विधान मन्त्र-शास्त्र के प्रकाण्ड ज्ञाता थे । अत उनके प्रसाद गुणमय सुश्राय शार्दों या प्रभोत्तरो को सुनकर श्रोताजन आनन्द से गढ़र हो जाते थे । सभी विषयों के बहुराख्य थे । मुख से शर निकलते ही प्रभकर्ता के अभिप्राय को जान लेते थे । परिहनत्री की जिद्धता गम्भीर थी । दर्शन और चारित्र भी प्रखल थे ।

सौम्य स्मित लाल तेनखी मुख था, दतारलि, नेत्रयोति शरीरकान्ति ठं:क थी । अर्धोपार्जन में सत्य अर्धोय निष्कपटना से व्ययहार करते थे । द्रव्य र्च करना रुचता था । कौटुम्बिक प्रतिष्ठा बदाई । एरफीय पशावती पुरवाल जानि में तो प्रतिष्ठा थी ही किन्तु अन्य सरडेलवाल, अमशाल, परचार आदि प्रखल जातियों में भी परिहत जी का बहुत आनर था । सरसेठ हुफमर्चद जी, सेठ टीकमचद्र जी, सरसेठ भागचद्र जी सोनी, सेठ गभीर-मल जी, सेठ पञ्चचद्रजी आदि श्रीमान् तथा विद्धद्वय १० गोपाल दास जी, १० घनालाल जी, १० पञ्जालालजी याय दिशाकर, १० पञ्जालाल जी गोधा आदि विद्वान् तथा त्यागीर्ग सभी सामोद उच्च आसन प्रदान करते थे ।

पूज्य माई जी को मुक्त पर अनुपम प्रेम था । अध्ययन

अभ्यापन काल में मुझे निराकुल रक्खा। सभी लड़के लड़कियाँ के विवाह अपने हाथ से किये। पिता के समान उद्योग ने मेरा लालन-पालन किया। उनके प्रेम-व्यवहार का स्मरण कर मेरे नेत्र आँसू हो जाते हैं। ॥ भी यथोचित उनकी भक्ति, विनय सम्मान सेवा करने में अपना परम सौभाग्य समझता रहा हूँ। जनता कहती थी कि इन दोनों में राम-लक्ष्मण के समान अष्ट-त्रिमूर्ति ही हैं। वस्तुतः मैं उनकी पर्याप्तसेवा न कर सका इसका मुझे अनुताप है। मैंने तथा यह घंटों लड़के लड़कियों चचेरे भाई आदि सभी कुटुम्बिकों ने उनकी आत्मा को शिरोधार्य किया। साथ कुटुम्बीजन एक सूत्र में बंधे हुये हैं। सबके सूत्रधार पूज्य भाई जी थे।

पण्डित जी का भोजन, धसन, व्यवहार परिश्रम था। सेव्य विषयों में भी अनेक पदार्थों की आलस्यता ले रक्ती थीं। घर का पिसा आटा-रवाते थे, नल का पानी कभी नहीं पिया, डास्टरी हकीमी बना का सेवन नहीं किया। वैद्य या हकीम से औषधि का पर्चा लिखना लेते थे, घर में शुद्ध औषधि बना कर खाते थे। दस वर्ष की अवस्था से ही बाजार की मिठाई खाने का त्याग था कभी जौनार में भोजन नहीं किया घर की जौनार या बरातमें भी उनके लिये कच्ची रोटी अलग बनती थी। उन के वस्त्र कभी नहीं पहिने। त्यागियों की सी वृत्ति थी। दस वर्ष से तो अत्युदासीन परिणाम हो गये थे। अकपायभाव, अहिंसा, शान्ति बहुत बढ़ा ली थी। ऐसे उद्भट विद्वान् सच्चरित्र महान् पुरुषके

गुणों का प्रतिपादन करना हमारी लक्ष्मि मनोपा और लोह लेपनासे शक्य नहीं है।

अनन्तरमे सेठ भागचन्द्रजी महोदयने परिहृतजीसे निराकुल सिरमाये रमा। यों सरसेठ जी के परिहृत जी सट्टनहत्तो पकृत थे। आयुष्यकर्म के अन्तिम तिथेक स्वरूप यमराज को किसी पर दयाभाव नहीं है। आठ दिन प्रथम परिहृत जी के घर का आयेरा हुआ अनेक वैद्योने यही कहा कि यह घातक घर है। परिहृत जी वराजर आत्म-चिन्तन में मन को लगाये रहे। हेमचन्द्र ने चिन्तिता, परिचर्या, धर्म-भयण कराया। महान् दुःख के साथ कहना पड़ता है कि कार्तिक सुदी १३ सवत् २००१ को दिन के धारह बजे नमस्कार मन्त्र का धितन करते हुये पूज्य भाई जी दर्शनगो हो गये। उपस्थित कुटुम्बियों और नगरवासी जैन-चतुर्भों को महान् दुःख हुआ, जोरसे रोने लगे। सरसेठ जी प्रातः काल से ही निजल बनकी परिचर्या म पं० जी के पास बिराजे हुये थे। अनेक उपचार किये सब व्यर्थ गये। उस समय सेठ जी भी रुदन करने लगे। देव-व्यवस्था पर किसी का धरा नहीं चलता है। सेठ जी ने अपन माय गुरुजी की कृपा से चरणों की ओर लगकर शन-यात्रा की। यां जैन-समाज का उपकारी सूय सैरुडों हजारों जनां कर अस्त हो गया।

"यमम्य"

रक्षता। मैं उनकी सेवा कुछ भी नहीं कर सका। वे मेरे सहोदर
ज्येष्ठ भ्राता तो थे ही, साथ ही गुरु जी भी थे। अतः तत्प्रीय
महान् उपकारों से प्रेरित होकर गुणस्मरणार्थ उनके कर कमलों
में इस छोटी सी पुस्तक को समर्पण करता हूँ।

भूयाद्भक्तेश्च—मयोपशान्त्यै । १५



श्रीमान् प्रातःस्मरणीय मिद्वान्तवारिधि
पू० प० नरसिंहदासजी "प्रतिष्ठाचार्य"

कृत। मैं उनकी सेना छुट भी नहीं कर सका। वे मेरे महोदर
 ज्येष्ठ भ्राता लोथही, साथ ही गुरु जी भी थे। अतः सदा
 महान् जगरों से प्रेरित होकर गुणस्मरणार्थ उनके कर कर्णों
 में शन छोटी सी पुस्तक को समर्पण करता हूँ।

भूपाङ्गकलेश—भयोपशात्यै ।

शातिर्चिनो मे भगवान् शरण्यम् ।

मापेक्षमक्षेत्रिय—हृदयदयोपेक्षमक्षणीति साक्षात्,

क्षेत्रस्थमावागधि नियतपदाद्याश्च विश्वानभीक्षणम् ।

यत्तु मन्तु पूर्वाध्ययनपटुसमाकाङ्क्षणीय क्षमाठय,

यदिन्यधर्मोपहितविषयवित्याप्तये स्ता मुमुक्षो ॥

(श्लोक० टीका)



प्राग्वक्तव्य

श्रीगीरोत्थाङ्गपूर्वप्रभृतिरूपमनघ मन्त्रशुच्चार्य्य धर्म-
शुक्लप्यानात्पिना या मतिमयधिमन पर्ययी चाग्रहन्त्य ।
शब्दाद्यष्टाङ्गपूर्णं गृह्णिजनयतयो भाग्यन्त्यग्रमपत्या,
पायाञ्जीरस्वतत्त्वाद्यधिगतिकुशला साईतीभारती न ॥

इस दुःखदुःखपूर्ण ससार में मङ्गल, लोरीत्तम धनसेवन ही जीव का शांति-सुन्दर कारण है। ऐसे तो इस पञ्चमकाल में सभी प्राणियों का जीवन सदा सङ्कटमय है। किन्तु इन तीस वर्षों में तो अचिन्तित अस्मभावित षष्ट केलने पड़े हैं। उनमें भी इन पाँच-सात वर्षों में या घतमान अर्थ में तो महर्ष्यता, मारकाट, छुराबानी, बलात्कार, घनापहरण, बालक बिनारा, स्वस्थानत्याग, धर्म-भ्रष्टता, अग्निदाह, आर्ष रौद्र परिणाम आदि नारकीय या-तनाओं ने भारी सता रखा है। राजा, प्रजा, धनिक, निर्धन, पण्डित, मूर्ख सभी भय-मस्त हैं। ऐसे उपसर्ग समय में आचार्यों ने सल्लेखनात्त धर्म-पालन ही आवश्यक उपाय बताया है। घोर विना का उचित कारणों से प्रवीक्षार किया जाय कहा तक करोगे। फिर भी जम, जग, मृत्यु, इष्ट-नियोग, अनिट्ट संयोग

आदि व्यथायें अपरिहार्य यों त्रिकाल त्रिलोक में हित यह धर्म ही शरण्य है।

यैसे तो देव-शास्त्र गुरु ही सब के महोपकारक हैं। फिर भी इस पर्याय में जैनधर्मोपयोगी ज्ञान प्राप्त कराने में मेरे नि-
स्वार्थ उपकारी पूज्य भाई सिद्धांत-महोदधि पं० नरसिंहदास जी और स्याद्वाद चारिणि, न्यायवाचस्पति पं० गोपालदास जी वरीया गुरु हैं। यों माननीय पं० अम्बादास जी शास्त्री प्रभृति अजैन विद्वानोंसे भी अध्ययन किया है। मैं उन सबका कृतज्ञोपकृत हू।

आर्हत धर्म शास्त्रों की पढाई का प्रकरण बड़े भाग्य से मिलता है। ज्ञान को पहिलों से लेना और पिछलों को घाट देना यह गुरुपर्य क्रम सदा से चला आ रहा है विद्वान् का यह भी परम कर्तव्य है।

पाच ज्ञानोंमें चार ज्ञान तो निज के लिये ही हैं। हा श्रुत तो बहुभाग ज्ञानात्मक अपने लिये और अल्पभाग शब्दात्मक पर के लिये भी माना है। तदनुसार मैंने "जैनधर्मसिद्धांत" इस पुस्तक को लिख डाला है। कतिपय थायकों की प्रेरणा भी थी। इसके प्रमेय सब सर्वज्ञोपज्ञ आगम के हैं मेरी गाठ का कुछ नहीं, अवेपकों को शास्त्रोंमें सब मिल जायगे थोड़ा यत्न करना पडेगा।

इस पुस्तक में धर्म क्या है ? धर्म पालने का मुख्य फल क्या है ? तथा ध्यातव्य सिद्धांत क्या है ? इनका परामर्श हुआ है। युक्तियों, उदाहरणों और आगम वाक्यों से प्रतिपाद्य को समझाने का शक्तिभर प्रयत्न किया है। श्री समतभद्रादि गुरुजी

तो सर्वदा मस्तक पर और मां में विरूपमान है ही, तथा ऐश-पर्यायिक गुणद्वय भी ।

धीमान् माननीय स्वर्गीय दोगा गुरुआ के मन्त्र परीए देना है । सौ भं सौ नम्बर तो धिरनके ही ध्याते हैं । विस्मरण घरा श्रुटिया रह जाना सम्भव है । द्वि-ही की क्षमिया ह्यात दूसरी तीसरी बार स्वाध्याय करने से ठीक हो जाय । या मुझमे साक्षात् पर्चा कर लेते, फिर भी बहुभुव विस लोग शुद्ध कर सकत है । "नह्यपि सप्रथित" । हम सब को ज्ञानमद हास्य है ।

पुस्तक को पढ़ने वालेभी नवीन सा ज्ञेय समझ कर स्वरित होभ न करें, किन्तु गम्भीर परामर्श करें । इस पुस्तकमें सब जैन श्रमणकी ही परिचयार्थ हैं । हा चाहे अन्यादे यधि पदपमाया का प्रयोग हो गया है । इसे किसी महान् दार्शनिक या श्रोता की पद्धति का अनुकरण-पारा कहिये, या मदीय व्यक्ति का धृष्टता ही मान लीजिये । यह जीव स्वदोषों से ही पराधीन है ।

पचालीस वर्षों से उपग्रही, अनुपद्रव, पचानों छात्रों के पढ़ाने का जरूठ कार्य करते रहने से कुछ ऐसा देव सी पद गई है तथा जैन सभाओं के नाना प्रकृतिक भोतार्थों के शब्दा समाधान या वचन-वचनों से भी ऐसी आदतें पर कर लेती हैं । व्ययहारका प्रभाव है । इस ही कारण आप शब्द के स्थान पर अनक स्थल पर तुम, तुमने, तुम्हारे आदि कठोर या त्रिय सम्बोधन-वाच्य शब्दों का प्रयोग हो गया है ।

सहनशील अभ्येता उस पर लक्ष्य नहीं दें । अन्तरज्ञ

कोई भर्त्सना या कपायभाव नहीं हैं। अरति करने का कोई कारण भी नहीं है। मात्र समझने समझाने का सद्भिप्राय है।

पठिवृत्ता ! आप मेरी स्पष्टोक्ति पर कुपित न होवें “स्पष्ट वक्ता न वञ्चक”। गुरु कहते हैं कि ‘ठगै नहीं निर्भय स्पष्ट कह देवे।’ मन और वचन की एकविपयता अच्छी है सबको इसेही अपनाना है। ग्रन्थों का परिशीलन करने वालों के निज के कुछ अनुभव होते ही हैं। अर्थात् सर्वज्ञोक्त तत्त्व को युक्ति, निदर्शनों द्वारा व्युत्पादन करने की प्रक्रिया सब की विभिन्न प्रकार है। “मुण्डे मुण्डे मतिभिन्ना”। तत्त्व व्यवस्था में नहीं किन्तु प्रति-पादन सरणि में कुछ वक्ता को स्वातन्त्र्य भी प्राप्त है। पुस्तक छपाई में कुछ गलतियां रह गई हैं। शुद्धि सूचना-पत्र अनुसार पहिले पुस्तक को शुद्ध कर पुन पुस्तकाध्ययन करें। गुरुजी कहते थे कि ‘अशुद्ध पुस्तक शत्रु’ यह आपका नितांत आवश्यक कर्तव्य है।

मेरे हार्दिक स्नेहयत्सल बन्धुओ ! आप मुझे अपना ही समझ हसनीरक्षीरन्याय सदृश प्रवृत्ति अनुसार होरस्थ वीरशासन को अपना कर स्वपर कल्याण करें ऐसी पावन भावना है। जैन-शासन जीयात्।

स्वर्गीय पूज्य भाई जी के उपवीरों से रोमरोमाप्र कृतज्ञ हो रहा मैं इस उपहार को उनके करान्तों में समर्पण करता हू।
“रामद्वेष रहित जैन-धर्म बढे रहौ”

चतुरस्र घनाकारालोकस्थ गो विलोकयन् ।
हस्तामलकमल्लोक श्री सुपार्श्वे श्रियं क्रियात् ।

माणिक्यचन्द्र कौन्देय (न्यायाचार्य)

चावली निवासी सहारनपुर वास्तव्य

कातिक शुक्ला दशमी, वीरनिर्याण सम्यत् २४७४

पता—जम्बूदास जी का छप्ता, सहारनपुर ।

नितान्त आवश्यक निवेदन

अशुद्धि शुद्धि सूचना—पत्रम्



पठनशील भावधरा — फर्के स्थलों पर अक्षम्य अशुद्धिया
छप गयीं हैं अतः कृपया सब से प्रथम शुद्धि सूचना पत्र अनुसार
पुस्तक को शुद्ध पर लौजियेगा । पश्चात् स्वाध्याय प्रारम्भ कर
दीजियेगा ।

जीवन-परिचय

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
नौन्नभाडमत्य थ	नौभत्यभाड्म थ	१	१
मद्विणी	शुद्धिणी	६	५

घर्मफल-सिद्धान्त

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पक्ति	अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पक्ति
का	के	४	४	हाय	होय	६	८
विमले	विमल	७	११	समग्रद	समग्रमह	७	१२
विभूतियां का होना	विभूतियोंका चिरकालतक होना	८	१०				
मात्त	मोक्ष	८	१३	भगवान	भगरान्	८	१६
कम	कर्म	६	१०	मागेन	भोगने	६	१०
जा	जो	१०	१८	घघ	यघ	१०	२०
हा	हो	१०	२०	आताआ	ओताओ	११	१०
थाडा	थोडा	११	१२	जैन	जिन	१४	५
विहार मुनिविहार		१४	७	का	फो	१५	४
अग्नि में लेकर	लेकर अग्नि में					१५	५
सुदशन सुकौशल		१७	७	निष्ठुर	निष्ठुर	१६	१४
धम	धर्म	२१	१६	सकगी	सकेगी	२२	२
जिसका जिसकी		२२	११	आनदोदगम	आनन्दोद्गम	२२	१२
हाता होता		२२	१२	उपद्रत	उपद्रवित	२३	२०
इसमें फि-तु इसमें		२४	१०	जा	जो	२४	१२
हा हो		२४	२०	करा	करो	२५	८
छापे छाये		२६	१	लट्ट	लट्टू	२७	२
हीं हों		२६	१	हीं	हों	२६	२
निर्निमुक्त	विनिर्मुक्त					२६	५

चतुरस्र घनाकारालोकस्थ गो विलोकयन् ।
हस्तामलकगन्धलोक भी सुपार्श्वं थिर्यं क्रियात् ।

माणिक्यचन्द्र कौन्देयः (न्यायाचार्य)

घायलो निवासी सहारनपुर वास्तव्य

कातिक शुक्ला दशमी, वीरनिर्वाण सम्बत् २४७
पता—जम्बूदास जी का छात्र, सहारनपुर ।

नितान्त आवश्यक निवेदन

अशुद्धि शुद्धि सूचना—पत्रम्



पठनशील भावधरा —कई स्थलों पर असम्य अशुद्धिया
एष गयीं हैं अतः कृपया सब से प्रथम शुद्धि सूचना पत्र अनुमार
पुस्तक को शुद्ध कर लीजियेगा । पश्चात् स्वाध्याय प्रारम्भ कर
दीजियेगा ।

जीवन-परिचय

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पक्ति
नौलभावमत्य य	नौलत्वभाद्मत्य	१	१
महिणी	गृहिणी	६	५

धर्मफल-सिद्धान्त

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पक्ति	अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पक्ति
का	के	४	४	हाय	होय	६	८
विमले	विमल	७	११	समग्रह	समग्रमह	७	१२
विभूतियों का होना	विभूतियोंका	चिरकालतक	होना	८	१०		
मास	मोक्ष	८	१३	भगवान	भगवान्	८	१६
फम	फर्म	६	१०	भागेन	भोगने	६	१०
जा	जो	१०	१८	वघ	वघ	१०	२०
हा	हो	१०	२०	भाताआ	शोताओ	११	१०
थादा	थोदा	११	१२	जैन	जित	१४	५
विहार	मुनिविहार	१४	७	का	को	१५	४
अग्नि में लेकर	लेकर अग्नि में					१५	५
सुदरान	सुनौदाल	१७	७	निदुर	निन्दुर	१६	१४
धम	धर्म	२१	१६	सकगी	मनेगी	२२	२
जिसना	जिसको	२२	११	आन दोदगम	आन दोद्रम	२२	१०
हाता	होता	२२	१२	उपद्रवः	उपद्रवित	२३	२०
इसमें	किंतु इसमें	२४	१०	जो	जो	२४	१२
हा	हो	२४	२०	करा	करो	२५	८
छापे	छाये	२६	१	लट्ट	लट्टू	२७	०
ही	हो	२६	१	ही	हो	२६	२
निर्निर्मुक्त	विनिर्मुक्त					२६	५

सम्राट	सम्राट	३२	२	सस्कार	सम्हार	३३	१
या	रत्न	रत्न	दा	३	याग	योग	३७
मत्र	मन्त्र	३७	१६	फोटर	फोटो	फोटोकीटी	५४
धैठा	धैठो	५६	११	का	की	५८	:
फा	फो	५६	६	पटकारों	की	पट्कारकी	६१
सकृती				सकृतीयुकी			६१
पूर्ण	भद्रा	न	रख	तीत्र	चारिप्रमोह	धरा	६१
है	है ?	६२	१०	तिर्यंच	नियञ्च		६५
ते	कोई,	वेते	कोई	सद्गीत			६६
निश्चित	निश्चित	६७	१	अयथा	अपना		६८
फठार	फठोर	६८	१८	स्वसवेद्य	स्वसवेद्य	७४	८
जैमी	जैनी	७७	११	इन	नहीं	पहिले	अग
इ	प्रत्यय	करने	पर	तद्धिता	त	से	सद्धितोत्पत्ति
विधि	है।	फिर	स्त्रीलिंग	के	जैनिनी	बनेगा।	७८
१	फलदेध	वसुदेध	७६	१५	ता	तो	७६
ससान	समान	८३	१२	चौदरा	आदिको	अधिक	धर्म
पालो	मुनि	प्रविधि	है।	आवक	सतिधि	है।	८५
मट	मट	यत्नकर	८७	४	“महाशिलीशो	हु	अपम-
सो	सो						८७
सवेग	सवेग	८७	१२	है	है		८६
महापाष्याय				महामहोपध्याय			८६
विपयध	विपयध	८६	१४	पायानाना,	पायेनाते		९०

नमित्तिक	नैमित्तिक	६०	६	जाता	जाता है	६०	१७
घर्लन	घर्लिन	६१	२	करा	कर	६१	११
स्वसवेद्य	स्यसवेद्य	६४	१५	नि कात्ता	नि कात्ता	६६	१८
देना	देता	६६	२१	मर्यादा	मर्यादानाह	६७	२१
चलित	चलितरस	६८	१	ता	तो	१००	१८
वासना	वासनाओं	१०१	५	उलम्बने	उलम्बाने	१०१	८
विनाद	विनोद	१०१	१२	माह	मोह	१०४	६
देहली से	देहली	१०४	१७	घुठ	घुछ	१०६	१७
स्यात	स्यात्	१०७	२	काग्य	काम्य	१०७	१०
पापात्यं च	पायात्यं च	१०७	१८	का	को	१०७	२१
च द्रचार्यं	च द्राचार्यं	१०८	४	को	के	१०८	२१
घनट	घजट	१११	१६	फलो	फालो	११४	७
घाडा	घोडा	११५	१५	कितने	कितनी	११७	१०
रानी	रानिया	११८	७	न्यास	नार		
कपास	नारियल	१२१	५	प्याना	प्यानो	१२२	१४
<p>कल्पवृक्ष चाहे जो कुछ पदार्थ दे देते तो इस जातिया क्यों मानी गयी ?</p>							
पूजन	पूतन	१२५	१०	अत	अुत	१२३	१२
फी	फो	१३१	१६	स्वायाय	स्वाध्याय	१२६	१६
मातार्थ	मोतार्थ	१३२	१५	आवारकों	आवारकों	१३१	२०
पुत्रद्वग	पुत्रल	१३५	१६	ला	लो	१३२	१७
यहा	यहा	१४५	१०	थवै	आवै	१४१	१०
				सो	ही	१४५	१७

इतने अवाय धारणा स्मरण ज्ञान है।				१८८	१८
सम समय १५० ४ आंठ		आर्त्त		१५१	२
पानुस्या बालुया १५१ ५ कार्योत्पाद		कार्योत्पाद		१५१	८
धिपाति धिपति १५० १३ अठाइस		अठ्ठाईस		१५३	३
ससृत्त ससृत्त १५३ १४ घय		यर्ष		१५३	२०
सत्त्व तत्त्व १५५ ३ पञ्चात		पञ्चात्		१५६	१६
शरीरिफ शारीरिफ १५८ १६ शुद्ध्यर्थ		शुद्ध्यर्थ		१६२	१६
बाहर पर		बाहर अङ्ग पर पङ्		१६२	१६
ता तो १६३ १७ नहीं है हा मल मूर जीवां के					
योनिस्थान शीघ्र धन जाते हैं, अत अस्त्रय है अशुद्ध है।					
				१६३	१८
जनी जानी १६८ ७ प्रमुक्त		प्रामुक्त		१६४	८
अत एव + १६६ १० पचेन्द्रिय		पचेन्द्रिय		१६६	२०
अहरियमाण		आहरियमाण		१६७	२
का को १६७ ८ ह		है		१६७	११
अय गोप अयशेष १६७ २१ करते		करता		१६६	२१
आदिका आदिको १७३ १४ अरघोफा		अरघा		१७४	११
विकत्रयो विकलत्रयो १७५ १६ माना		मानो		१७८	१५
अनुपचा अनुपेक्षा १८० २१ कम		कर्म		१८१	१७
वग वग १८८ ६ दलिता है		दीयता है		१८८	६
त्रिणिदा त्रिणिदो १६५ १५ का		को		१६६	१६
शुद्धा शुध्य २०३ ८ पात्स्यु		पादस्यु		२०४	३

धर्म-फलसिद्धान्त



इस पुस्तक के लेखक—
श्रीमान् सिद्धान्त-महोदय, तर्कज्ञान, न्यायाचार्य
प० माणिकचन्द्र जी, महारनपुर ।

‘धर्मसेवन’ का प्रधान फल



कषाययोद्धृमोहारि-सम्राज निजघान-य ।
रनत्रयायुधै पारर्षि स मे पापानि कृन्ततु ॥

धर्मतत्व का रहस्य जानने के प्रथम धर्म का लक्षण समझ लेना अत्यावश्यक है । आचार्यों का प्ररूपण है कि :—

“धम्मो वत्थुसहाजो रममादिभावेण परिणदो धम्मो ।
रयणत्तयाणि धम्मो जीजाणं रक्खण धम्मो ॥”

अर्थात् जिस किसी जीव, पुद्गल, धर्म द्रव्य आदि वस्तु को जो परानपेक्ष स्वाभाविक परिणामन है वह धर्म



है। अथवा आत्मा की उत्तमवृत्ता, मार्दन आदि शुद्ध परिणतिया धर्म हैं एवं सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्र्यमय स्वर्गीय आन्मस्यरूप की प्राप्ति हो जाना धर्म है। तब अन्य जीवों की दया पालना भी ध्यावहारिक धर्म है।

श्री ममन्तभद्राचार्य ने—

“समार दृ एत सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे”

सामारिक दृ एतों से हजार जीवों को उत्तम सुख स्वरूप मोक्ष म धर देने वाले परिणाम को धर्म कहा है।

हा ! न्याय शास्त्र में सुख को देने वाले या विघ्नों को दूर करने वाले आत्मीय गुण को धर्म माना है। कोई दार्शनिक स्वर्ग और मोक्ष के सम्पादक भावों को धर्म यताते हैं। ब्रह्माद्वैतवादी एवं विशिष्टाद्वैतवादी, ज्ञानाद्वैतवादी पण्डित तो अपनी निजात्म सत्ता का मटियामेट हो जाना ही धर्म पालन का परम फल मान बैठे हैं। कर्मकाण्डी मीमांसक विद्वान् विधि लिङ्गन्त वाक्यों द्वारा स्वर्गप्रद यागादि कर्म करने म ही धर्म कर्म की सफलता स्वीकार करते हैं। अन्य यवन, ईसाई, पौराणिक जन तो ‘इष्टदेव की भक्ति या विश्वास करते रहना ही उत्कृष्ट धर्म है’ यों अङ्गीकार करते हैं। कोई ० तो उचकर यों कह बैठते हैं कि—

‘धर्मस्य तत्र निहित गुहाया महाजनो येन गत स पंथा’

धर्म का रहस्य तो अधरे में छिपा है वडे मनुष्य जिस मार्ग पर चल चुके हैं वही धर्म पथ है ।

इन सन की मण्डन-खण्डनात्मक पर्यालोचना करना इस लेख का उद्देश्य नहीं है । किन्तु इस कार्य को स्वाधिकार से मनसा कर चुकने पर युक्ति, प्रमाण और अनुभव से जो धर्म और उमका फल परीक्षित हुआ उमका निर्णय करना है ।

इस दु समय चराचर जगत् में उडुभाग प्राणी दु खित दृष्टिगोचर हो रहे हैं । ये अपने मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र्यो फरके उपाजित किये गये बलेशो से छूटना भी चाहते हैं, किन्तु निवेक न होने के कारण पुन -उमी परिवलेश के दलदल में फस जाते हैं । यह दुःख परम्परा अनादि से ससारी जीवों को सता रही है । इन दुःखों से छुटाने का जो अव्यर्थ कारण होगा वही वस्तुतः धर्म शब्द का वाच्य हो सकता है । यह सिद्धात सभी दार्शनिकों को सन सम्मति से अभीष्ट हो जाता है । अत जीवों को ठोम हित की प्राप्ति और निरुष्ट अहित का परिहार कराने वाले धर्म का अन्वेषण करना आवश्यक है ।

हेतुवाद आगम और स्वानुभव से जितना प्रमेयसमुद्र में गम्भीर प्रवेश करते हैं वहा तह पर पहुच कर हमको यही धर्म का रहस्य मिलता है कि जो "तन्कालीन अली-

किं आत्मीय आनन्द का सम्पादक होता हुआ भविष्य में भी अस्पृश्य या निश्चयेय का साधक होय" अर्थात् उस समय भी अस्पृश्य गुरु स्वरूप होता हुआ जो कर्मों का सार और निर्वाह का जनक होय । अथर्वनाम का "चारिण उल्लुग्मो, धम्मसा परिगादप्पा अप्पा लडि शुद्ध मपयोग जुदो, पावदि णिच्याम सुह" इत्यादि आध्यात्मिक धर्म का निबोध यही निकलता है ।

जिज्ञासु आताओ ! समागि जीवों के अनेक कर्मों का बंध हो रहा है । धर्म या पुरुषार्थ से उन पीड़ित दुष्कर्मों का नाश कर दिया जाता है । मृगच्छु का यह प्रयत्न है । इन अज्ञान कर्मों को सिद्ध करने के लिये अवसर नहीं है । तस्मी, सुस्मी, भाग्य, धर्म, अधर्म, मर्मादि मानने पड़ते हैं । अतः धर्म का सिद्धांत लक्षण य निर्णीत हो जाता है कि 'जो पीछे गुरु का सम्पादक होय या न होय तथा पश्चात् सार निर्वाह को भले ही करे किन्तु वर्तमान में धर्म पालन के कारण में अवश्य ही शुद्धि द्वारा आत्मीय अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप होता हुआ बद्ध और बध्यमान कर्मों की निर्जरा तथा भविष्य में बंधनेवाले वर्तमान कर्मों का सार कर दवे वह धर्म है ।

तत्त्वों का श्रद्धान करना विशेषरूपसे आत्मा के शुद्ध द्रव्य, गुण पर्यायों की प्रतीति करना सम्पदर्शन है

वस्तु को अन्यूनानतिरिक्त तथा सर्वाज्ञोक्त जिनश्राणी का स्वाध्याय कर हेय, उपादेय पदार्थों को वैसा ही ठीक ठीक ज्ञान कर लेना, सम्यग्ज्ञान है। बहिर्भूत पदार्थों में आसक्ति नहीं कर उन पर पदार्थों का त्याग करते हुए सहज आत्म स्वरूप में रमण करना सम्यक्चारित्र्य है। धर्म से शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति, आत्मा में बन्धे हुये पुद्गल निमित्त कर्मों का मर्ग और निर्जरा हो जाना धर्म पालने का प्रधान फल है। तभी तो श्री समन्तभद्राचार्य ने रत्नकरण्ड-श्रावकाचार में—

“सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः”

यानी-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य को ही धर्म माना है। यत्याचार ग्रन्थों में तो पद पद पर धर्म का उक्त लक्षण पुष्ट किया गया है।

भोगभूमित्व, चक्रवर्तिपन, इन्द्र, अहमिन्द्र हो जाना धनाढ्य बन जाना इत्यादिक लौकिक ऐन्द्रियिक सुखों को तो धर्म का फल मानना निदान या सुखानुपध नामक दोष प्रताया है। अष्टाग सम्यग्दर्शन को पालने वाला चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव ही जत्र कर्मपरमश, सात, दुःख-मिश्रित, पापशील ऐसे लौकिक सुख में आस्था नहीं रखता है तो भला पाचवें गुणस्थानवर्ती श्रावक, आर्यिका और छठे, सातवें आदि गुणस्थानवर्ती सयमी मुनियों की बात

। त्यजेत्तान्यपि सम्प्राप्य परम पदमात्मन ॥८४॥

अभिप्राय यह है कि निर्दोषसप्तमीत्र, सुगन्धशमीत्र
नन्दीधर पूजा विधान, रत्रित, जीवदया, मुनिदा
सराग समय आदि परिणतियों पर पुण्यास्रव होता है
किन्तु मोक्षार्थी को अत्रों के समान त्रतो का भी परित्या
करना पड़ेगा। धर्म पालने में आनुपङ्गिक मिल रहे
पुण्याधीन लौकिक सुख तो एक प्रकार के विज्ञ है
तेरहने गुणस्थान में तीर्थङ्कर प्रकृति का उदय हो जाने में
असत्य इन्द्रो से पूज्य हो रहे जिनेन्द्र भगवान के प्राति-
हार्य, समरसरण आदि विभूतियों का होना भी समा-
बन्धन का कारण है सर्वोत्तम मार्ग तो ये ही था कि—

तीर्थङ्कर प्रकृति, उच्चगोत्र, मनुष्यायु आदि पुण्य-
कर्मों का भी शीघ्र नाश होकर जन्दी से जन्दी मात्र की
प्राप्ति हो जाती। हा! भव्य जीवों के भाग्य अथवा धर्म
तीर्थ प्रणयन, असत्य जीवों को सम्पत्त्व लाभ हो ये
अन्य जीवों के इष्ट प्रयोजन है किन्तु तीर्थङ्कर भगवान तो
ससार शृङ्खला में अविकर उभरे रहने से टोटे में ही रहते हैं।
गोम्पटमार कर्मकाण्ड में तीर्थङ्कर प्रकृति का उत्कृष्ट स्थिति-
बन्ध ऊँचे मन्त्रेश परिणामों से होता बताया है—

“सन्वद्धिदीणं सुकस्मयो” गाथा १३४।

आनकल पद्मफल में मोच नहीं होती है कैसा ही

धर्म सेवन करो राग भाव छूटता नहीं है । वर्तमानके त्यागी उदासीन आचरु या मुनि महाराज यदि सम्यग्दृष्टि हैं तो ये स्वर्ग में ही जायेंगे । एक भवतारी लौकान्तिक देव होना तो बहुत कठिन है । वहा स्वर्गमें उन्हें नाच गाना बजाना सैरसपाटा करना, देवदर्शन, प्रतिक्षण शृङ्गार में डूबे रहना, देवियों के साथ भोग विलास, इन्द्र द्वारा मान-अपमान की प्राप्ति, इष्टवियोग, अनिष्ट संयोग, ईर्ष्या आदि रागद्वेष-मय भावों में असह्यमान घण्टों तक निमग्न होना पड़ेगा । उन परिणतियोंसे पुन कर्म-बन्ध होगा । यों न जाने जिन-दृष्ट कबतक यह कर्म-बन्ध और फल भागने की परम्परा चलती रहेगी । अहा तीव्र आत्म विशुद्धि की भावना और पुरुषार्थ करने वाले भाव-मुनियों को पुण्य, पाप से शीघ्र छुट्टी मिल जावेगी । अर्द्ध-पुद्गल परिवर्तन-काल में तो मोक्ष हो ही जावेगी । एक बात यह भी लक्ष्य में रखना कि उपशम श्रेणी का भी उत्कृष्ट-अन्तर कतिपय अन्त-मुहूर्तों से न्यून अर्द्ध-पुद्गल परिवर्तन काल माना गया है । इसमें अनन्तमव हो जाते हैं । सिद्धांत यह निकलता है, कि धर्म-पालने का लक्ष्य-इन्द्रिय-जन्य लौकिक सुखों की प्राप्ति करना नहीं है । बीच में कोई आनुपञ्जिक बिना-चाही बला आ पड़े तो हम क्या करें ? परवश हमें वह इज्जत भी अस्वरस से भोगनी पड़ेगी । श्री

बचनमार में लिखा है कि—

"नदि मण्यादि जो पुत्र शक्ति त्रिसेमोति पुण्यपात्रण ।
 द्विएडदि, घोर पाप । सत्तार मोह सछएखो" ॥७७॥
 सागार्थ—सोने या लोहे की सावलों के समान जो
 पुण्य और पाप में अन्तर मान रहा है, वह मोहाकांठ
 जीव घोर दुःखमय अपार सत्तार में भ्रुन रहा है । वस्तुतः
 पुण्य पाप दोनों समानतया दृश्य स्वरूप हैं । हमें यह
 स्तलाना है कि हमारी जीवों ने धर्म का फल जो पुण्यार्थ
 समझ रखा है । यह ठीक नहीं है, धर्मसेवना को पुण्यवर्ध
 के साथ अव्यभिचारी कार्य फारणमात्र नहीं है । अन्यथा
 व्यभिचार भावे या अतिरेक व्यभिचार भावे यह स्थापित
 तो पद पद पर है । किन्तु हमें तो यह सिद्ध करना है कि
 जिनोक्त धर्म फलने से मात्र तत्काल श्रुतीकिन् आनन्द
 प्राप्ति और कर्म मधुरतया निर्जरा हो जाती है । वस्तुतः
 यही धर्म की कसौटी है ।

सुखरदार । हमें अतिरिक्त किसी पुन, धन, पशु,
 आरोग्य आदि की प्राप्ति पर लक्ष्य नहीं रखना । अन्यथा
 भारी टोटा भुगतना पड़ेगा जो कि दु समय अनन्तानन्त
 सत्तार को कारण होगा । यदि जिन पूजन से कुछ पुण्य-
 वर्ध भी हो जाय यह फल की आशा कुछ छोड़ी ही है ।
 मात्र पुण्योत्पन्न पर मस्त मत हो जाये ।

द्रव्यानुयोग, करणानुयोग को नहीं समझ कर भोली जनता कह देती है कि 'सती' जी ने धर्म का फल बहुत बढ़िया पाया। 'अग्नि' कुएँ जलमय हो गया। सुदर्शन सेठ के लिये ब्रह्मचर्य पालने से घली का देव विमान बन गया। चीदम की हिंसा नहीं करने वाला चांडाल गम्भीर सरोवर में डाल दिया गया भी मणिपय मिर्हसन पर देवी से पूजित हुआ।

ऐसा प्रथमानुयोग में लिया है।

इन कथानकों की कतिपय व्याख्याता रोचक हास, भास-भङ्गी से सुनाकर सुनने वाले श्राता, श्रात्रियों में करणारस प्रसाहित कर देते हैं, स्वयं भी मुग्ध हो जाते हैं किन्तु आप पाठक थोड़ा न्याय शास्त्र के नियमित कार्य कारण भाव पर लक्ष्य डालिये। मैं तो कहता हूँ कि इन लोगों पर जो अग्नि ही क्यों आयी? "पहिले कीचड़ में पै रखना पीछे झण्ड पानी से पै धोना" ऐसा व्यर्थ व्यापार ठलुआ लोगों को ही रुचता है।

आपके विचारानुसार हम कहते हैं कि पहले पाप का उदय आया तो बलवत्तर अग्नि उपस्थित हुआ किन्तु पुनः पुण्य का उदय हो जाने पर वह दूर हो गया। यह कार्य कारण भाव कुछ अर्थों में यदि मान भी लिया जाय तो आप उन प्रकारों के लिये क्या उत्तर सोचेंगे?

जबकि दण्डकवनमें पाचसौ ५०० मुनि धानीमें पैल दिये गये थे, अथम्पनादि उपसृष्ट मुनियोंकी आवरी कथा प्रसिद्ध ही है अथवा गजकुमार या पार्वनाथ भगवान पर भी घोरतम कष्ट पड़े थे। पाद्यों को अत्युष्ण लोहकील या तप्त आभूषणों से पीडित किया था। गुरुदत्त मुनि को उपसर्ग हुआ था वे उपसर्ग सहकर भी भद्रति मोक्ष को गये। सीता से भी पाच सौ गुने घर्मात्मा शीलवती अनेक घोर तपस्वियों का-हु सह, या असह उपसर्गों करके कदली घात मरण हुआ है। प्रत्येक तीर्थंकर के बारे म दस दस मुनि घोर उपसर्गों को सहन कर मोक्ष प्राप्त करते हैं। द्वादशम रचना में इसके लिये एक न्यास ही अन्तर्दशाग नाम का आठवां अङ्ग शास्त्र है इनके भाषों की पूर्ण बुद्धि से मोक्ष ही होती है। इसी प्रकार दारुण उपसर्गों को जीव कर अनुत्तरो में पदा होने वाले मुनियों का वर्णन अनुत्तरोपपादिक नीचे अङ्क म गू था गया है। इनमें उन उपसर्गों का और उस समय के निम्न परिणामों का विशद वर्णन है। स्वयं विचारो तो सही कि यदि अग्नि म सीता जी जल मरती, सपाधिमरण पूर्वक मस्य हो जाती तो समन्तमद्राचार्य जी व घर्मे-सहणानुमार सीता जी को क्या टोटा पडता ? तब भी वे स्वर्ग म ही जातों। अग्नि का पानी घनाकर दणो द्वारा रचा हो जाने की दशा में

कर्मों का तीव्र स्वर और निर्जरा हो जाने से, वञ्चित रह जाने के कारण उलटा सीता जी को मारी घाटा ही उठाना पड़ा। पर जाना कोई अपराध या पाप तो नहीं।

अग्नि परीचा के समय खिलाड़ी देखने वालों में घड़त से ऐसे पांगा लोग भी बैठे थे जो कि सीता जी के जल-जाने पर, उनको असती कहने के लिये दैत्यारथी किन्तु साथ ही ऐसे विचारशील विद्वानों की भी घंटा परी कमी न थी जो कि जिन पदने पर मृत्यु हो जाने की अवस्था में भी अद्भुत धर्म पालना हो रही समझते थे। नीति शास्त्र में हजारों मूर्खों से एक परिदृष्ट को अच्छा माना गया है। कथानक पद्मपुराण जी में यों लिखा है—

दो देव कहीं, केवलज्ञानी के दर्शन को जा रहे थे, मार्ग में, उन्होंने ने अयोध्या के निकट सीता जी की अग्नि परीचा को प्रकरण देखा, ऐसी दशा में एक देव ने अपने मित्र से कहा कि सखे ! तुम इस अवसर पर कुछ चमत्कार दिखा देना, वस इसी वार्तालापानुसार उस देव ने किसी समुद्र से पानी लाकर वहा डाल दिया। देखो तो सही, स्तोत्रार्थी ने कितनी छोटी बात पर इतना सद्गीन यामला सहा कर लिया है।

यदि देव वहा होकर नहीं निकलते तो, सीता का अग्निदाह हो जाना अनिवार्य था।

आनन्द भी और प्रथम भी सड़को बपों से विधमियों द्वारा मूर्ति शिष्टन, मन्दिर धर्म, शास्त्र दाह, जैनधर्मात्म पीड़न आदि कुकृत्य हो रहे हैं। तीर्थ म्यान छीने जा रहे हैं। जैन सम्मेलन, प्रतिष्ठोत्सव, उत्सव रोक दिये जाते हैं। "म गच्छेत् जैन मन्दिरम्" ऐसे असत्य अपवाद लगाये जाते हैं, जैनधर्म छोड़ने के लिये धाध्य किया जाता है, गिहार रोक जाते हैं। यदि इनका किसी शक्तिशाली द्वारा निराकरण नहीं कराया जाता है तो क्या धर्म का त्याग कर दें? कभी नहीं।

। विद्वानों को विचारना चाहिये कि तब भी अब भी और आगे भी टोम प्रतिष्ठो, ब्रह्मचोरियों पर अनेक विघ्न आते रहे हैं और आबगे। असत्य जीव विघ्नों से सताने हुये मर गये हैं किन्तु उनकी धर्मपालना का फल तत्काल अलौकिक आनन्द और कर्म निर्मल हो चुकी थी हो रही है और होवेगी। जैनों का कार्य कारण मार बहा डटा हुआ है। मर्मत्यागी विद्वान् इम रहस्य पर शीघ्र धाध मार देंगे। चावदूरी की न्यायी बात है।

प्रत्युत सीता जी और सुदर्शन सेठ के म लोगों में यह भ्रम फैल गया कि जो अग्नि परीक्षा में उतीर्ण न होंगे ल अनेक स्त्री पुरुष त्रस्यर्च्य

तीन लाख मन लकड़ी के ज्वल्यमान, कुण्ड में तो क्या दस सैर लकड़ी की आग में भी कूद पड़ने की परीक्षा दे सकेगे ? और यदि वे उसमें भुंगस गये तो क्या आप उन का व्यवहारी ही कहते रहोगे ? अथवा कोई व्यवहारी, लुच्चा विशेष आपधि लेपट कर या चन्द्रमात पणि अग्नि में लेकर कूदकर नहीं जले तो क्या उसे व्यवहारी का फतवा दे दोगे ? शीघ्र बोलो न ? सीता को हरते समय रावण ने शरीर न छूकर उड़ी सदासी या दामी द्वारा सीता को विमान में नहीं बठा लिया था किन्तु हाथों से ही पकड़ा होगा, दसों चार राग-युक्त पात भी कही होंगी, इसी भित्ति पर धोत्री ज्वारों ने अपवाद फैला दिया ।

विचार शील माइमो । शील के सम्पूर्ण भेद और प्रभेदों का पालन, तो चौदहवें गणस्थान में ही होता है । तेरहवें में भी कुछ गड़बड़ रह जाती होगी इस तत्त्व को साचाठ, पिलकर समझ लेना । प्रलयय के अठारह हजार भेदों में से गृहस्थ सीता ने मात्र २७ या ८१ इक्यासी भेद पाले होंगे किन्तु इससे भी अधिक शील भेदों को पालने वाले आचरु और मुनिराज विष्णुगण अपमृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं । प्रथमानुयोग इसका साक्षी है । अतः धर्म की अव्यर्थ रसौटी लौकिक यश-या विभूतिया मिल जाना कथमपि नहीं है । परीक्षापिशाची-प्रसितों को मम्मल जाना चाहिये

हा, एक बात और है कि हिंसा, झूठ, चोरी, म
 प्रमत्तयोगात् पद लगता है, व्यभिचार में नहीं। इस बात
 को न समझो तो जाने दो।

कुछ वर्ष पहिले की बात है कि अजमेर में डब्बा-सेठों
 का घराना है। सेठानी जी मोतियो की मूल्यवान नथ को
 उतार कर नाइन से बाल कढ़वा रहा था। इनका लाडला
 बकरी का बच्चा महा महा खेल कूद रहा था। बाल
 बचवा चुकने के चार घण्टे बाद नथ की याद आई,
 नाइन के अतिरिक्त वहाँ कोई भी मनुष्य था ही नहीं।
 शकान्श, नाइन को घर से धुलगाया गया, धमकाया
 गया, किन्तु मोली नाइन चोरी करने का निषेध करती
 गई। अन्त में नाइन ने कहा यदि मैं ने नथ चुराई
 होय तो मेरा इकलौता लडका पाच दिन में मर जावे,
 दैवयोग से नापिता का लडका भी मर गया तब तो सब
 को यही निश्चय हुआ कि नथ इसी ने चुराई है। आठ
 दिन बाद वह बकरी का बच्चा भी मर गया। खाल
 उधेड़ने वाले चमार ने टूटी, पिची तथा मसली हुई नथ
 लाकर सेठानी को दी कि सेठानी जी ! न जाने यह क्या
 चीज है ? ये लो, मेमने की आँतों में यह फसी हुई मिली
 है इसी कारण बकरी का बच्चा मर गया था। परीचा
 देखने के लोलुपी इस दृष्टाव से कुछ शिषा लेवें।

धर्म बन्धुओ ! अल्लुण ब्रह्मचारी सुकुमाल (सुकुमार) या सुकौशल को शृगाली और व्याघ्री भक्षण करती रही । यहा तरु कि उनका मरण भी हो गया । वहां क्या रघु देव ठलुआ काम करने (घास चरने) चले गये थे ? या सीता सुदर्शन के समान इनके पास पुण्यकर्म बंधा हुआ नहीं था ? हम तो पुनः यही कहते हैं कि धर्म पालन का सच्चा फल सुदर्शन और सुकुमाल को हीमिला यदि कोई क्रीडामत्त देव इनकी रक्षा कर देते तो ये उपशम श्रेणीय पाये जा रहे शुक्लध्यान की रक्षा न कर पाते और न एक भवावतारी सर्वार्थसिद्धि के देव हो जाने का सौभाग्य प्राप्त कर सकते थे । इन दो मुनियो ने घोरतम उपसर्ग के उपस्थित हो जाने पर अपने पुस्तार्थ द्वारा अतीन्द्रिय आनन्दानुभव करते हुये अनन्त कर्मों की भ्रष्टि निर्जरा कर डाली थी । उपसर्ग निवारण हो जाने की अपेक्षा उपसर्ग सहन का पदस्थ नहुत ऊँचा है । बड़ी कमाई होती है ।

तीन पाडवों की शीघ्र मुक्ति विघ्न सहने से ही हुई । यदि युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन मुनिवरों की किसी के द्वारा रक्षा कर दी जाती तो वे और भी दीर्घ काल तरु ससारी बने रहते । परीषह सहन करने में भीतरी चिदानन्द रस अधिक प्राप्त होता है । गज कुमार मुनि की रक्षा नहीं हुई

तो क्या हुआ ? यही हुआ कि गन मुनि ध्यानारूढ़ बने रहे और बद्ध कर्मों की विशेष रूप से निर्जरा हुई तब तो हुआ ही । विवाह करते ही कुछ ग्रहों की अपनी आपु ज्ञात कर जो तत्काल शीघ्र दीक्षित हो गये और ससुराल वालों के डाग दिये गये सिंग पर मिगडी जला देना आदि अनेक उपसर्गों को शात परिणामों से सहकर प्रथम शुक्ल ध्यान को माह कर एक भवावतारी सार्थ सिद्धि के अधिकारी बन गये । नमोस्तु गजकुमाराय मुनये ।

—महाशय जी ! इम पुरपार्थ की तो थोडी प्रशसा कर दीजिये या अतिशयो की तारीफ करना सीखा है । समाधितन्त्र मे लिखा है कि—

आत्मदेहात्मज्ञानननिताह्लादनिर्धृत ।

तपसा दुष्कृत घोर भुञ्जानोऽपि न खिद्यते ॥३५॥

इमका छेदपर्य यह है कि आत्मा और शरीर के भेद ज्ञान से उत्पन्न हुए सुख से सर्वांग निष्णात हो रहा मुनि उपसर्ग या घोर दुष्कर्मों के फलों को भोगता हुआ भी तपश्चरण द्वारा स्वल्प भी खेद को प्राप्त नहीं होता है । कौन कहता है कि उपसर्ग के अग्रसर पर मुनि को दुःख हो रहा है प्राज्ञ जी ! वे साधु तो परम अतीन्द्रिय आरामीय ध्यानन्द म निमग्न हो रहे हैं । न्यारे पुद्गल को कुछ भी होय । उपसर्गों से डरकर नहीं, प्रत्युत उपसर्गों को सहकर ही अनेकानेक मुनि

मोक्ष को गये हैं। भावों की शुद्धि पर लक्ष्य रक्खो।

मुनिये ! ढाई द्वीप से ही मोक्ष जाते हैं पैंतालीस ४५ लाख लम्बे चौड़े गोल इस मनुष्य लोक से मात राज् ऊपर सिद्ध क्षेत्र में सर्वत्र अनन्तानन्त सिद्ध ठमाठम विराजमान हैं ढाई द्वीप में भी जहाँ निराकुल, निरापद होकर मुनि ध्यान कर सकते हैं उस कर्म भूमि की अपेक्षा अठारह गुना स्थान पर्वत नदियों कुलाचल, जघन्य भोगभूमि, मध्यम भोग-भूमि, उत्तम भोग भूमि, कुभोग भूमि, म्लेच खण्ड, सरोवर, छुद्र नदियों, खेत, नगर, गाव आदि न घेर रक्खा है। कुलाचल, महा नदियों, भोग भूमियों, मेरु पर्वत, कुभोग भूमि आदि के ऊपर सिद्ध क्षेत्र में तो घोर विघ्न पूर्वक सहरण दशा से ही मुनियों ने मोक्ष प्राप्ति की है और उस ढाई द्वीप के अठारहवें भाग उचित स्थल में भी अनन्तानन्त निर्ग्रंथों ने निठुर घोर उपसर्ग सहे हैं। जैन सिद्धांत की वसत वायु किधर रह रही है ?

श्री राजवातिक में उपसर्ग सहकर अन्तकृन् केवली सिद्धों की सख्या अनन्तानन्त मानी हैं। दस, बीस की कथा से क्या पूरा पड़े ? सच्चे जैन बन्धुओं ! अपने २ धर्म पर डटे रहो, धर्मात्मा को दुःख भी सुख स्वरूप मालूम होता है। वस्तुतः धर्मपालन सुखमय ही तो है। उमा स्वामी भगवान् ने "दुःखमेव वा" इस सूत्र द्वारा हिंसा भ्रूठ आदि अधर्मों

को दुःख रूप ही कहा है। पीछे सुख और चास्त्रि गुण का विवेक विचारते हुये टीकाकारोंने 'दुःखके कारण या दुःख के कारण के भी कारण हिसादिर है' यों व्याख्या की है। किन्तु मूल धाराय बड़ा अच्छा जचता है कि सभी पाप दुःखमय ही हैं।

'हिना, दगावाजी, विश्रामघात, कुशील इन कुकर्मों से भविष्य में दुःख होगा।' इसकी अपेक्षा मुझे यह अध्यात्म ग्रन्थों की व्याख्या बड़ी अच्छी लगती है कि ये सब पाप तत्काल दुःख रूप ही हैं।

इसी प्रकार चमा, ब्रह्मचर्य, तपश्चरणा, सम्यग्दर्शन, जिनाचन इन अर्ध शोषक क्रियार्थों से (भविष्य में न जाने पर) सुख होगा। इस वाक्य के स्थान पर "ये उक्त क्रियार्थे सुख म्यरूप ही हैं— धमे सुखमेव" यह शास्त्र वाक्य मुझे पृष्ट प्रतीत होता है। जबकि आत्मा में ज्ञान, सुख, धीर्ष, चेतना, अस्तित्व आदि सभी गुणों का अमेद हो रहा है। प्रवचनसार में—

"सयमेव जहादिच्चो तेजो उपहो यदेव दाणमसि
सिद्धोपि तहा खाण सुह च लोगे सहा देवो ॥३८॥"

इन श्लोकोंके अनुसार इसी सिद्धान्त को पृष्ट क्रिया गया है। तथा

"सोक्ख सहावसिद्ध खत्थि सुगण पि सिद्ध भवदेशे,

ते देऽ वेदराष्ट्रा रमन्ति विषयेषु रम्भेसु" ॥७१॥

इस गाथा द्वारा इन्द्रियजन्य सुखों को दुःख रूप ही स्वीकार किया है ।

ऐसी दशा में निज आत्मस्वरूप की प्राप्ति के विषय और किम क्षणिक सुख की प्राप्ति की अभिलाषा म पड़े हो अन्तरदृष्टि खोलो, ज्ञानदृष्टि को पसागे ।

चिन्तामणि को पाकर भी क्यों भड़कते द्रुपे ऋच से उदला करते हो । सेवा करने वाले सच्चे-स्वय-सेवक जैसे अपने कर्तव्य में दु खों से नहीं घबराते हैं और धन, मान की प्राप्ति आदि क्षणिक सुखों की भी वात्साय नहीं रखते हैं । इनसे अमृत गुणो निःकाशना धार्मिकों को करना पड़ती है । चक्रवर्ती या तीर्णर भी इस लौकिक विभूति को लात मारकर वैराग्य धारण कर लेते हैं । इन्द्र अहमिन्द्र भी वैराग्य नामक धर्म को पालने के लिये मनुष्य होकर तप द्वारा कर्म-क्षय करने की अभिलाषायें रखते हैं । धर्म से अनपेक्ष न्यायमार्ग उलवान है ।

दुखसखत कम्मसखत समाहिपरण च बोहिलाहो य ।

दु खों का क्षय हो (लौकिक सुखोंका भी न हाना) कर्मों का क्षय हो, तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हो, समाधि पूर्वक मरण हो, ये इच्छाय उरी नहीं हैं । हा लौकिक सुखों की अभिलाषायें करना बन्ध का बीज है । धर्म सेवन का

फल यदि रति अरतिमय स्वर्गादि माना जाय तो रभी मोक्ष हो नहीं। स्वर्गा क्योकि द्रव्य-धर्म से भावधर्म और भावधर्म से द्रव्यधर्मका सन्तान-प्रद ताता प्रदता ही चला जायेगा ठीक बात तो यह है कि धर्म सेवन का फल अलौकिक आनन्द मे मग्न हो जाना है। जो कि स्वयं-वेद्य है दृष्टान्तों से नहीं समझाया जा सकता है। गम्भीर अनुभव करो।

“उद्यति न नयर्थरस्तमेति प्रमाणम्”

धर्म-पालनेम दुये आत्मीय आनन्दानुभव को समझाने मे न नय चलती है और न प्रमाण का ही अधिकार है।

जिसका सत्य, शील, क्षमा, प्रद्वर्ष्य, तपधरण इन धर्मों के पालने मे सफल सपरस आनन्दोदगम नहीं होता है उसको भोगभूमि या देवगतिके चण्डिक सुरोर्गा अनि-लाषा से अथवा ऐसे ही अन्य प्रलोभनों क लिये धर्मसेवन नहीं करना चाहिये। अन्यथा भारी घाटम रहोगे 'दुप धर्मका रहस्य रतीमर भी नहीं जानने हो, आचार्य महाराज आपको दोनों लोकों का अग्निनाशा मुख देना चाहते हैं।

जो माता अनेक कष्टों को सहकर स्वपुत्र का पालन पोषण इस लिये करती है कि यह मेरा लड़का बड़ा होकर मेरे लिये उत्तम भोजन दगा, गहना उनगायेगा, कमाई ला कर सौपगा, वह पुरन्धीपनका अशुभाव मुख नहीं पह-

चानती है ! यदि माताको पुत्र के प्रति अमित वात्सल्य करने में उक्त अभिलाषायें लक्ष्य हों, तो माय अपने पुत्रों से इतना अनुराग न कर पाती, चिड़िया अपनी मन्तान से प्रीति न निगाहती, उन्दरिया अपने घच्चे को दिन रात छाती से न चिपटये फिरती यहा तक कि वानरी मोहग्र मरे रच्चे को भी दो चार दिन तक नहीं लटकाये डोलती क्योंकि पशु पक्षियों को भावी धन या गहनो की स्तोरु भी प्रेप्सा नहीं है ।

वस्तुत माता के पाम स्वकीय औंस पुत्र के लिये नैमगिक अगाध स्नेह का समुद्र मरा हुआ है । उस स्वामानिक प्रेम-स्रोत के सन्मुख धन आदिक की अभिलाषायें लात मारने के योग्य हैं । अस्तु, यहा मोही माता पुत्रों में लौकिक सुख की प्राप्ति का भाव सम्भव भी हो सकता है किन्तु धीतराग के धर्म सेवन में तो अणुमात्र भी इन्द्रिय-जन्य सुखों की अभिलाषा गप्सना मर्धया निषिद्ध है आज अनेक कुपित स्त्री पुरुष दूमरो को प्रभूत गालिया देते हैं, शाप देते हैं । प्रसन्न माता पिता, गुरुजन अपनी सतान को आशीर्वाद देने हैं । सुभद्रा और उत्तम ने अभिपन्थु को जयाशिष दी थी । मायें अपनी मन्तान की प्रसन्नता (खर) मनाती है । किन्तु उपद्रुत स्थानों पर किये गये नर सहार या कुर्बानी के दिन वध की जा रही मायों पर

शुभ कामनाओं का क्या प्रभाव पड़ा ? बकरे की मा अपने बच्चे को चिरञ्जीव होने की आशीष प्रदान करती रहती है, परन्तु बकरा ईद के दिन अथवा शक्ति देवी के सामने यूप से उभे हुये पशु की बलि पर उन दुःआर्षों का क्या असर पड़ा ? अतः कहना पड़ता है कि अपनी, परकी इष्ट अनिष्टार्थ चिन्ताओं को छोड़ो । तभी तो मुनि महाराज किसी को लौकिक आशीष नहीं देते हैं मात्र धर्म श्रद्धि कह देते हैं वाग् श्रद्धि धारी माधु जैसा कह दें वैसा नीरोगता, पुत्र प्राप्ति, विजय अर्थ लाभ हो ही जाय, इसमें रागद्वेष बढ़ता है मुनि को अपनी तपस्या का ध्यय करना पड़ता है । यों आशीर्वाद देना बड़ा महगा पड़ता है ज जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेषण जम्मि कालम्मि, जा जहा जैमा जिम प्रकार होनहार है उसको इन्द्र, अहमिन्द्र, जिनेन्द्र भी नहीं चलायमान कर सकते हैं । जीव और पुद्गलों की कारखोंके अनुसार हो रही परिणतियों पर तुम क्या कर सकोगे ? साम्प्रदायिक या अस्पेक जीव की पुण्य पाप करनी को चितारो । हा अपनी शक्ति को नहीं छिपा कर मात्र दया करने का यथाचित पुरुषार्थ कर डालो । तुम्हारे ऊपर यदि मार पीट हनन का प्रकरण उपस्थित हो जाय तो यथाशक्ति न्यायोचित विरोध करते हुये आप समाधिपगुण करने के लिये कटिबद्ध रहिये । धर्म के सिवाय

जैना का आधुनिक कोई मण्डल रक्षक नहीं दीख रहा है, समार, शरीर, भोगों से विरक्त हो जाना ही जीव आत्मा का परम हित है। यह शरीर धर्म का साधन है। स्वाध्याय, उपवास, कायात्मर्ग ध्यान, गुप्तिया, सामायिक आदि धर्म हम शरीर से ही पलते हैं। अतः छोटे हेठे कष्टों पर भूट समाधिमरण करलेना उचित नहीं है। हा, आयुके अन्त हो जानेका निर्णय करबुकनेपर द्विगिध सन्यास लेनेमें आलस्य भी नहीं करा। वडिया समाधि मरण हो जाने से सात आठ मन में सावक जीव अवश्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इन्द्रिय विषय, कषाय, उपभोग, शरीर, पत्रिग्रहों में उत्कट वैराग्य होना चाहिये।

श्री देवनन्दी आचार्य ने लिखा है कि—

न तदस्तीन्द्रियार्थेषु यत्क्षेमङ्करमात्मन ।

तथापि रमते बालस्तत्राज्ञानभावनात् ॥

इन्द्रिय-जन्य भोगों में कोई ऐसा तत्व नहीं है जोकि आत्मा का कल्याण करने वाला होय, तो भी यह अज्ञानी जीव रमस्थिवत् अज्ञान से उनमें रम रहा है।

यह जगत् भी कैसा भोला भाला है चाहे किसी भी बात पर लड्डू हो जाता है। रोटी के डुरुड़े पर भूगड रहे पिसनहारी के चार लडकों को देखकर निस्सन्तान महारानी जी का चित्त ईर्ष्यामिश्र कल्पता है कि यदि ये मेरे बच्चे

होने तो मैं इनको दिन रात आँखों में छापे रखती हूँ। तब विमनहारी भी गनी के गढ़ने, ऋषड़े, मोर्गों को देखकर ललचाती रहती है। आचार्यों ने हमें भोगों की धिशाग है। कथानक के भीतरी भाग पर लक्ष्य टालो उसी वाच्यार्थ पर ही नहीं। जैसे कि दशरुद्रण में तत्पार्थ सूत्र की पूजा करने वाले भक्त जन प्रत्येक अध्याय पर अर्घ्य चढ़ाते हैं। प्रत्येक सूत्र की भी पूजा करने के भाव हैं। यो "नारका नि वा-शुभरक्षेत्रवापरिशाप, नाक मम्मृच्छिनो, काय-प्रतीचाग, अधिव्यजनोराप, तत्प्रदोपनिन्द्य" आदि सूत्रों के वाच्यार्थों का आदर नहीं करते हैं। हाँ इन सूत्रों के लक्ष्यार्थ गान की अष्ट द्रव्य से पूजा करते हैं, नमस्कार करते हैं। फलितार्थ पर पहुँचिये। कथा ग्रन्थों का आध्याय करने वाले श्री पुण्य जन भी चाहे किमी भी रात पर बिना मोचे समझे प्रसन्न हो जाते हैं और चाहे किमी भी कथानक पर कृपित हो जाते हैं इसकी चिन्तना क्या करें ?

विचारो तो सही कि भक्त चमरती ने क्या खोटा कार्य किया था जिससे कि उनका अरुणो खरखो मनुष्यों में अपमान हुआ। आप पाठक भी भक्त चमरती को क्यों घृणा की दृष्टि से देखते हैं ? तथा बाहुरलि ने कौन सा बढ़िया काम किया था ? जिससे आप दृष्टियुद्ध, जल-

युद्ध और पल्लवुद्ध में चक्रवर्ती को जीतने वाले बाहुबली पर लड़ हो जाते हैं ? वस्तुतः (आखिर) भगवत जी उनके बड़े भाई थे, चक्रवर्ती भी थे, छोटे भाई बाहुबलि उनको नमस्कार कर लेते तो क्या गिगड जाता ? देखो बाहुबलि जी को एक वर्ष घोर परिश्रम करना पडा तब कहीं केवल-ज्ञान उपजा और भरत चक्रवर्ती ने केवल सात, आठ अर्न्तसूहृत्तों में ही केवलज्ञान विभूति को पा लिया । बात यह है कि उनका पुण्य, पाप जो कुछ भी होय, हम लोग व्यर्थ रागद्वेष के पचड़ों में पड़कर चाहे जिसको उल्टा सीधा उत्तीर्ण पत्र दे दते हैं । ऐसी आदतें पडी हुई हैं जिनसे कि हम लाचार हैं ।

प्रद्युम्नकुमार ने अपने बाबा और ताऊ तथा नारायण पिता को भी परास्त कर दिया । हममें आप प्रद्युम्नकुमार पर क्यों प्रसन्न हो रहे हो ? आपको उनके बाबा, ताऊ, पिता, पर घृणा दृष्टि डालने का कोई अधिकार नहीं है । क्या यह प्रद्युम्न जी ने अच्छा किया ? आप ही उत्तर दो ? प्रद्युम्न लडका था पीछे मोक्ष गया, ऐसे व्यर्थ के पक्षपात न किया करो । अपनी निर्मलताओं का उशीररण करो । लब्धाकू देनेवाले परीक्षकको विचारक और निष्पक्ष होना चाहिये ।

लज और अकुश ने अपने पिता और चाचा को

हेरान कर दिया बचाकर जग चलाने पर भी लम्पा इ
घोटू ॥ भागी चोर थार्ड । शलारा पुरुष मयवन्ट लम्पग
भी यों विचारेने लगे रि— यगुा ने कुमार ही बलमड
नामयण है हम तो नाम पात्र है, क्यों जी ? यह क्या
कुमारो का शुभ फर्मव्य था ? आप तादाधिक लर, कुश,
डोसरो पर प्रमथ पर प्रमथ होने जाने है । इन इन ही
प्रकार क यर्व वीद्या-फल (ग्लिन्ट) देने के मङ्गल
त्रि-पो द्वारा यह नीच प्रविष्टण मगट्रेषों म कमा रहता
है, और हर्ष विवाद डाग कमेरथ दिया करता है यानार
म जाकर विमी मर्जी हुई दुफान को अल्ला और पूरद
दुमान को अट पुरा कह देता है । यह नहीं विशान्ता है
कि इन मगट्रेष परणति से मर्ग आत्मा ने रिमने दूरमों
को बाध लिया है । कर्म बन्ध के निमित्तों का सुन्म
गवेपण पीनिये ।

आचार्य ने समाधितन्त्र मे लिखा है—

“आत्मगानात्तर मार्ये न शुद्धो धारयेच्चिरम् ।

कुर्यादर्धरगात् किंचिद् धावायाभ्यामवत्पर ॥”

आत्मगान के अतिरिक्त रिमी भी मार्ये को देख कर
त्रिचार में मत लाओ । आमा का शुद्ध मचेतन होन रहना
ही परम धर्म है । क्षमा आदि से धारने समय भी आत्म-
मचेतन हो रहा है । तभी तो दशलक्ष की जयमालाओं

प्र— “ओ ही परमब्रह्मणे उत्तमक्षमाभर्मागाय नम ”

“ओ ही परमब्रह्मणे उत्तममार्दवधर्मागाय नम ” इन मन्त्रों के द्वारा उत्तम क्षमा, मार्दन, ब्रह्मचर्य आदि धर्मों को परम ब्रह्म यानी शुद्ध सिद्ध परमात्मा स्वरूप कहा है । शष्टरूप निनिर्मुक्त सिद्ध अग्रस्था मे जिनाचन, मुनिदान, पुष्पाजलि आदि व्रत धारण, इन्द्रिय विजय, रूपाय निग्रह, ममिति पालन, परीपह जय और वर्म्य शुक्लध्यान आदि परिणाम नहीं हैं । ये परिणतिया ममार अग्रस्था की है किन्तु उत्तम क्षमा, अहिमा आदि वर्ष वहा विद्यमान है । श्री ममन्तमद्राचार्य जी ने भी “अहिंसा भूताना जगति विदित ब्रह्म परम” अहिंसा धर्म को परम ब्रह्म स्वरूप कहा है । अग्रचनसार म भी—

“जो शिहद मोह दिह्यो आगम कुसलो पिराग चरियक्षि ।

अच्छुदिह्यो महप्पा धम्मोत्ति विसेमिदो समणो ॥६२॥”

इम गाथा द्वारा यही बात कही गई है ।

“ध्यानकोटिममा क्षमा”

रूरोड ध्यान के समान एक क्षमा है । ध्यान करना ममार है क्षमा सिद्ध स्वरूप है । तीत्र कोशको आप एक घण्टे तक करने मे ही सतत हो जायगे जबकि क्षमा को असत्य तर्कों तक करके भी आनन्दाभृत गटकते रहते हैं

जो धर्म उस परमोक्तुष्ट मोक्ष को प्राप्त करा समता है या शुद्धात्म स्वरूप ही है। इसको फल पुण्य वध मानना एक प्रकार धर्म की श्रवणा (तीर्थादीन) करना है। बुर्ला (मञ्जर) का कार्य विद्वान् से कराना चाहते हो। मोले श्रद्धानी जीय चाहे कुद्ध भी कहें सुनें किन्तु मनस्वी मुनि-राज ऐसी श्रवणा को सहन नहीं कर सकते हैं चाहे कसा भी दु ए पड़े, उपसर्ग आ जाओ, च्लेश पडो वे अपने धर्म्य कर्तव्य से घ्युत नहीं होते हैं। उम नाहर के लागों को दीए रही च्लेशमयी अवस्था मे जैन मुनि अपनी सुखमय स्वात्मानुभूति मे निमग्न हो रहे हैं। दु एों को चलानर मत जुलाओ किन्तु आये हुये दु एों से बरडाओ भी नहीं। आचार्यों ने लिया है कि—

“अद्दु एमापित ज्ञान र्दीपते दु एमन्निधौ ।

तस्माद् यथास्त दु एरात्मान भावयेन्मुनि ॥”

इसका अमिप्राय यह है कि दु एरहित अवस्था म धारण कर लिमा ज्ञान पुन दु ए उपस्थित हो जाने पर भूट नष्ट हो जाता है तिम कारण अपनी शक्ति अनुमार दु एों करके आत्मा को भावित करने रहो। चोर तपश्चरण द्वारा ही आत्मा के अन्तस्तल म छिपे रहे गुण प्रगट होते हैं।

अथ चोर परीषद के समय भी उम मुनि की ध्यान-

कनानता पर ही लट्ट हो जाओ जिसमे कि वे मुनि दुःखों का वेदन न करते हुये भी अपने धर्मपर सुमेरुपर्णतपत् दृढ रह कर पुरुषार्थ द्वारा कर्मों को काट रहे हैं। प्रवचनसार म ऐसे ज्ञान को सुखस्वरूप ही पुष्ट किया है।

जाट सय ममत्त एणामणन्तत्थ त्रिवद त्रिमल ।

रहिय तु ओग्गहटिहि सुहति एग तिय भणियम् ॥

इम गाथामे शुद्धज्ञान को एकान्त सुखस्वरूप ही सिद्ध किया है एक अर्थ में अग उपाशों को जान रहे अनिरुद्ध अनेक प्रमाण ज्ञानों का पिण्ड ही तो ध्यान है।

मीता के ऋद्धचर्य से आप अग्नि का जलमय हो जाना मानते हैं। त्रिशल्या के खान जलसे हजारों रोगों का दूर हो जाना स्वीकार करते हो। मैं तो कहता हूँ कि इन अल्प मार थोड़े राग-द्वेष के प्रकरणां या पुण्य फलपर न्यौत्रानर न हो सैटना, त्रिन्तु सीताकी उस दशा पर मुग्ध हो जाओ जिस समय कि वह अपने ऋद्धचर्य पर दृढ़ रहना चिन्तती हुई शुद्धात्मा का ध्यान कर रही समाधि-पूर्वक अग्निपुण्ड्र में सोत्साह घुस पड़ी थी। अथवा अग्नि परीक्षा के पश्चात् रामचन्द्र की प्रार्थना करने पर भी पर न जाकर ससार के गभीर भोगों से विरक्त होकर मीता ने भ्रूटिति वेश लोचकर आर्यिका की दीक्षा ले ली थी। यह वर्म को फल अग्नि परीक्षा से बहुत बड़ा है।

विशल्या क उम धर्म को चिन्ता कर प्रमत्त होना कि यह सभ्राह्मी लक्ष्मी चिनेन्द्रिय होकर तीन हजार वर्ष तक उचित प्रत पालती हुई अजगत् गर्भ के सुगर में ग्रीवा तक निगली जा चुकी थी और दृढ़ते दृढ़ते उम पाने समय आये तथा सर्प को मारने के लिये उद्यत हुई अपने विना चक्रवर्ती को गर्भ पर दया करन की प्रार्थना कर रही थी कण्ठगत प्राण होते समय उम दया धर्म को पाल रही विशल्या की पूर आमा परम सुगेनी थी उम धर्म द्वारा मार्ग चलते हुए उसको यह तुच्छ अतिशय भी प्राप्त हो गया था कि उमके कान जल से अनेक रोगियों को लाभ हुआ। लक्ष्मी की शक्तिप्राण भी उमी के प्रभाव से निरला था। विज्ञान उम लौकिक अतिशय की यथा प्रशमा की जा सकती है तो कि विशल्या की युवावस्था में ही अत्यल्प रह जाता है हा जन्म, वरा, मृत्यु रोगों का विनाश करते वाला धर्म का अतिशय वस्तुतः प्रशम्नीय है "धर्माय तस्मै नमः"। ऐसे धर्म को हम उसकी प्राप्ति के लिये विषेय से नमस्कार करते हैं। राग—द्वेष पूण चेष्टाओं को फेर कर ही सत्ताराय विज्ञान सुरमय धर्मको देण पायोगे।

अतिशयधारी अनेक द्रव्य लिंगी मुनि भार शुद्धि के विना अनन्तरार ग्रंथेयन जा चुक हैं। हम आप भी जा

चुफ होंगे । हा भाव प्रिशुद्ध हा जाय तो बर्ताम वार से अधिक मुनिलिंग नहीं धारण करना पडे । मुनिधर्म से बर्तीसवें वारम मोक्ष हो ही जाय । मले ही सात दिनों तक कदाचित् तीन लोकमे कोई भी उपशम सम्यक्त्वी न पाया जाय किन्तु एक जीव के प्रथमोपशम और त्रयोपशम सम्यक्त्व प्रमंख्यात्तर हो मरते है । पुन. मोक्ष हो ही जायगी । उपशम श्रेणी चार बार हो सकती है किमीको नहीं भी हाय । धर्म तो आत्माका तदात्मक स्वभाव है । धर्मपर आत्माका अनादि अनन्त अधिभार है जब विभार रूप अनन्तानुबन्धी कृपाय के सस्कार अनन्त भर तरु चलते रहते हैं तरुससे भी अधिक सस्कार गहरा स्वभाव मानेगये धर्म का घुम जाता है तभी तो एक बार हुये सम्यग्दर्शनका स्रोत आत्मामें जब जग गया तर कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तनकाल में अग्रग्य सम्यक्त्व की उपजा कर मोक्ष मे धर ही देवेगा, पूर्ण पर्याय नष्ट होती है तन उत्तर पर्याय को अपना चार्ज सम्भाल देती है तभी मस्कार टिक पाता है काल क्रम से ये सस्कार धु धले भी होते जाते हैं यो अनेक मस्कार मर जाते हैं । किमी २ धारणा ज्ञान की वासनायें तो प्रतिदिन ऐसी होती हैं कि पाच मिनट या घण्टे दो घण्टे तरु के उत्तरवर्ती अमख्य ज्ञानों को चार्ज सम्भाल कर ही नष्ट नष्ट हो जाती है । कोई सस्कार

पुरुषार्थ से टिकाऊ कर दिया जाता है। छात्र व्याकरण
घोसने हैं, गोग्मटमार की गायाँ रटने हैं। आस्ताम्।

अनेक मोड़ी जीवों ने धर्म पालन को एक खिलवाड़
समझ रखा है। मोक्ष प्रद धर्म का ऐसा जघन्य उपहाम
किया है कि यदि वह धर्म हमारे लौकिक इच्छानुसार
प्रयोजनों को नहीं साधता है तो ऐसे धर्म की कल क्या
आज ही और अभी हम अश्रद्धा करने के लिये तैयार
रहें हैं। वे मिथ्यादृष्टि जीव समझ बैठने हैं कि जिन-
पूजन, पानी छानना, रात्रि-भोजन त्याग, अमृत्य
परित्याग आदि व्यवहार धर्मों में क्या रखा है ? आनन्द
से रहो और आनन्द से रहने दो, ऐसे नववायु में रहनेवाले
मनपुत्रों के प्रति आचार्यों का यही आदेश है, कि—
मन्धुओं ! विचार करो, उक्त देवदर्शन, जिनार्चा आदि
धर्म पालने में ही ठोस आनन्द भरा हुआ है, अधार्मिक
परिणतियों में नहीं। व्यवहार धर्म से ही निश्चय धर्म की
प्राप्ति होगी। मार्ग यही है। अन्य तो सब विडम्बना है।
अन्तरात्मा पर लक्ष्य दीजिये।

आजकल निकृष्ट काल में भी स्वार्थ त्याग, परोपकार,
निर्नेन्द्रियत्व, मितव्यय, सतोष, क्षमा, धैर्य आदि धर्मियों
की महती प्रशंसा है। देश नेताओं, माताओं, स्वयं सेवकों
के स्तम्भ नि स्वार्थ धर्म्य सेवकों पर दृष्टि डालिये, आप

को स्वार्थी, हिसक, इन्द्रिय लोलुप, लोभी, जीवों की अपेक्षा इनमें विशेष पवित्रता, निर्मलता और त्रिलक्षण आनन्द-अनुभव प्रतीत होगा, व्यर्थ में किसी अच्छी, वस्तु का निरादर करना ठीक नहीं। ४५ वर्ष पहले की बात है जबकि कुछ मन-चले लोगों ने देश भक्तों की यो हँसी उड़ाई थी कि आप लोग विदेशी घड़ी नहीं लगाया करें, किन्तु पानी से भरी डेढ़ मन की चोभ वाली नाद को पीठ पर सतत बांधे रहा करें जिसमें कि एक छोटे छेद वाला कटोरा पड़ा रहे, क्योंकि पहले भारत में पहरेदार इसी पद्धति से घण्टा बजाया करते थे।

इसी प्रकार न्याय शास्त्र और व्याकरण शास्त्र पढ़ने वालों की भी तेली का तेल, चिल्लाता हुआ मेढ़ा आदि छटातों द्वारा खिलिया उड़ाई जाती थीं किन्तु ये सब मूर्खता के युग अब नहीं रहे हैं। विचारवान् परीक्षक उक्त उपहासों से नहीं घबड़ा कर बहुत कुछ आगे बढ़ गये हैं। और अपना ध्येय भी प्राप्त कर लिया है। स्वराज्य मिल गया है। साम्राज्य भी मान्यों को ही प्राप्य है।

मृदु जीव अष्टकर्मों को नाश करने की सामर्थ्य वाले धर्म से नौकरी लग जाना आदि तुच्छ असाधनीय प्रयोजनों को नहीं मानकर देसकर भट्ट धर्म से अरुचि

पर बैठने ह जैसे कि अमूल्य रत्न या पारम पत्थरों को देखकर यदि मैं नहीं मेर मोल नहीं देती है, तो वह अज्ञानी बालक या रत्न पागम पत्थर को शीघ्र फैलने के लिये आतुर हो जाता है। हम उदा तक कहें मूर्ख जनता ने नमस्कार मन्त्र का ऐसा दुरुपयोग करना विचार लिया है कि यदि पापाना दूर है और दीर्घ अज्ञा का वेग हो रहा है तो वे कुछ देर तक मन्त्र रत्न रहने के लिये मन्त्र का चमत्कार अजमाना चाहते हैं। कभी-कभी मन्त्र अस्थायी मन्त्र निस्मरण के लिये भी उनकी ऐसी नीपत हो जाती है। पावन या रेचन गोली के स्थान पर मन्त्र को बैठाना चाहते हैं सो भी तब, जबकि वह उक्त दोनों काम करदे। क्या कहें आप तो आप ही हैं।

लोगों ने ऐसी उन्-उठा गवरी है कि यदि आज सिनेमा जाने के लिये आध घण्टे की दर हो गई है तो नमस्कार मन्त्र बोल कर मन्त्र द्वारा यह फल हो जाना चाहते हैं कि या तो आध घण्टे के लिये सिनेमा धिगड़ जावे या रील चलाने वाला बीमार हो जावे और हम जब आध घण्टे बाद पहुँचें तब अवश्य ठीक हो जावे। प्रयोजन यह है कि हमारे पहुँच चुकने पर सिनेमा का प्रारंभ होवे। मन्त्र ही अन्य वीसों मनुष्य मन्त्र पढ़कर ठीक समय पर पहुँच चुकें हों इन्हें उनकी पग्या नहीं है

मन्त्र से चाहे जो कुछ काम निकालना ही जो ठहरा ।

- भाइयो ! ये मन्त्र बोलने वाले स्वार्थी पुरुष शास्त्र सुनने के लिये कभी ऐसा विचार नहीं करते हैं कि हे भगवान् आठ बजे होने वाले शास्त्र, व्याख्यान, या वृजन, हमारे पहुँचने पर ही प्रारम्भ हों, प्रथम तो यह धार्मिक कार्यो म याग ही नहीं देते और कदाचित् पण्डित जी के कहने से दरमरायें भी तो शुभ कार्यो म वे यही देखते रहते हैं कि आधा पौन घण्टा शास्त्र उच जाने दो तब पहुँचेंगे हाजिरी तो लग ही जायेगी । कौन घण्टे भर तक उहा मन मार कर बैठा रहे । मन्दिर जी म तो हमारा पाच मिनट में ही जी ऊन जाता है इत्यादि ।

- इसी प्रकार मुरुहमा जीत जाना, बीमारी दूर हो जाना, बीजरु मे नफा होना, स्वप्न मे अफीम का अङ्क दीस जाना आदि प्रयोजनों मे भी इस नमस्कार मन्त्र को अव्यर्थ कार्यकारी देखना चाहते हैं । यदि इन इन्द्रिय-लोलुप, जीवो का अभीष्ट सिद्ध नहीं हुआ तो ये मूर्खराज उसी समय नमस्कार मन्त्र की भर पेट निंदा, अश्रद्धा, घृणा करना शुरू कर देने हैं । "कषायभावान् धिक्"

- भाइयो ! मत्र पर आप दोष क्यों मढ़ते हैं ? लौकिक कारणों से भी तो तुम्हारे कतिपय कार्य नहीं सध पाते हैं । दवाइया फेल हो जाती हैं औपरेशन उल्टे

यदि नहीं तो महाश्रीर जी की माधना करने का तुम नो क्या अधिकार है ? यदि समर्थ होकर भी आप किसी पिता के पुत्रों को लाभ नहीं पहुँचा सकते हो तो उस पिता से भी कोई आशा न रखें। पिता से गुरु और गुरु से अर्हत् परमेष्ठी उद्भूत उड़े माने गये हैं।

श्रीर सेनको ! धृष्टता को कृताता से बदल लो, सभी जीवों की और विशेषतः मधर्मा जनों को अपनी सेवाओं से भाग्य कम्बो। भरत चक्रवर्ती ने अपने सधर्मा भाइयों को पुष्कल द्रव्य दिया, सम्मान दिया, धर्मत्माओं की सहायता करने से अपने प्रभुत्व को सफल समझा। अपने भाग उदार रखो, मगान भी तुम्हारे साथ हैं। निर्दोष का निर्वाप का साथ मेल मिल जाता है।

वस्तुतः निमित्त नैमित्तिक भाव ऐसा है कि श्री महाश्रीर स्वामी के नाम स्मृति, दर्शन, पूजन, उपकरण चढ़ाना आदि क्रियाओं से आत्मा में परिणामों की विशुद्धि होती है उससे पुण्यकर्म होता है और पाप कर्मों की स्थिति या अनुभाग की हानि, अशुभ कर्मों का शुभ हो जाना मन्त्रमण, पुण्यकर्म स्थिति का उत्कर्षण, पापा-परिष्कार, पापमय हो जाते हैं। यों निमित्त मिल जाने पर तुम्हारे प्रयोजन भी सिद्ध हो जाते हैं। श्री महाश्रीर प्रतिमाराधन से लाखों करोड़ों के मनोगत पूरे हो चुके हैं

हो रहे हैं। किन्तु किसी भी वैद्य या डाक्टर की चाहे कोई भी दवाई विषम रोग को नष्ट कर ही दे ऐसी व्याप्ति नहीं है, हा काललब्धि या पापोदय कीमन्दता हो जाय तो ऐसी दशा में औषधि से लाभ हो जाता है। तद्वत् कश्चित् कदाचित् किसी को लौकिक चमत्कार भी मिल जाते हैं। कोरे उन अतिशयों के लिये ही उन्मुख मत बैठे रहो, व्यर्थ हर्ष विषाद द्वारा कर्मवध परम्परा उठेगी। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप सामग्री नहीं मिली तो वैराग लौटना पड़ेगा। अतः सबसे अच्छी बात तो यह है कि लालसायें ही नहीं उपजाओ, केवल आत्म शुद्धियों का सचय करो। बन्धुपर! अभीष्ट पदार्थों में उतना सुख नहीं जितना कि मान रक्खा है ये सब चर्चार्य वीर प्रभु ने ही समझाई हैं। यो तो भाइयो! श्री महावीर स्वामी तीनों लोकों की रक्षा करने में तत्पर हैं जिनके लिये वादीभूमिह सूरि ने कहा है कि—

श्रियः पति पुण्यतु नः समीहित

त्रिलोकैरुचानिरतो जिनेश्वर ।

यदीयपादाम्बुजमक्ति—सीकर,

सुरासुराधीशपदाय जायते ॥

कर्तृवादी मतवनों, देखो दोनों वादी, प्रतिवादी महावीर जी की साधना करते हैं जिनेन्द्र भाग्यन तो तत्पर

ममीहित कायों को माधत है । मानू मक्त के फोरे कागज पर हस्ताक्षर कर देने हैं । सुन्दरमा जीता मो जीता ही, सुन्दरमा हारने वाला भी जीत गया समझो । धन का जर्मादारी के मिल जाने से अनेकों क प्राण गये हैं । पुपुत्र और उनकी स्यतन्द्र बहूओं से भी अनेक मानों पिताओं को फ्लेग मोगना पड़ रहा है । अधिक यश भी प्राणों का लेने वाला हो जाता है । लोकरु में कहते हैं कि "अधिक पढ़ाई जीवन लेय" थोड़ा अपयश भी होता रहे । एक मन भर मीठी रीर म छ पासे लरण डाल दो तभी मधुर रस व्यक्त होगा शुरुयस में स्वल्प नील दे देने पर भूरापन जच जाता है । स्वच्छ पानी नीला दीयता भी है । अच्छा आस्ता । देखो, फिर तुम ही कह दागे कि महावीर जी ! तुम तो सर्वत्र ये मेरी हत्या करा देने वाली जर्मादारी मुझे क्यों जिता दी ? मानी देने वाला या मारने वाला लडका और इज्जत विगाड़ने वाली पुत्रवधू, क्यों प्राप्त करीई, ऐसे यश म, क्या रक्खा है ? जो अपमृत्यु का कारण हो । इत्यादि उपात्मम महावीर स्वामी जी को न सेलने पड़ें- इमी लिये बच्चे को सच्चा साप न ढिलाने के समान त्रिलोक-त्रिकालत्र धीर प्रभु ने मानू तुम्हारी तन्फाल चाही हुई वस्तु न दिनाकर हित ही किया । और योग्य पुत्र दिला देने म भी क्या रक्खा है ?

जिसके लिये धनगार घर्माघृत में प्रकट विद्वान् आशा-
धर जी ने किमी आचार्यका यह उक्त लिखा है कि—

जायो हगइ कलत, उडुन्तो बडिमा हरई ।

अर्थ हरइ समत्यो, पुतममो वरिथो खत्थि ॥

लडका उत्पन्न होतेही स्त्रीको छीन लेता है। बदमारी करता हुआ हमारी बदमारी के साधनों पर डाका डालता है। समर्थ होकर प्राणाधिक प्रिय धन को हडप लेता है। पुत्र के समान कोई गैरी नहीं है। इसी प्रकार भूमि या धन की निन्दा ग्रन्थों में की है यह बात महान आचार्य जी ने महावीर जी की आज्ञा से ही तो लिखी थी यों उनकी निपेची हुई वस्तुओं को आप उन्हीं से मागते हैं भला यह भी कोई मनुष्यता है ? श्री वर्द्धमान स्वामी तो सत्रका हित ही करते हैं और करेंगे भी। भक्तों के लिये उनका भण्डार खुला है चाहे जितना ले लो अज्ञानी जीनों के मनोरथ भी दिन में दम धार बदल जाते हैं। अतः ये तीन लोक तीन काल में हित स्वरूप तत्र तुमको बता देने हैं इसी का आदर करो यह तो भाक्तिको की उक्त पद्यानुसार अर्थ अलङ्कार की बात हुई।

अत्र इच्छानुयोग पर आयो "नहि भेषज्यमानुरेच्छानुमेति"। दवाई कोई रोगी की इच्छा पर नहीं चलती है। हा ठीक लाभ कराती है। सम्यग्दर्शन को अनुकरण बनाये रखो। वन्दुर्ग ! जैन न्यायशास्त्रानुसार कार्यकारण

समीहित चायों को मावने हैं। मानू मन्त्र के कोरे फागन पर हस्ताक्षर कर तन है। मुझमा जीता मो जीता ही, मुझमा हरने वाला भी जीत गया ममको। धन या जमींदारी के मिल जान से अनेकों क प्राण गये हैं। रुपय और उनका स्वतन्त्र ग्रहणों से भी अनेक माता पिताओं को क्लेश भोगना पड रहा है। अधिक यश भी प्राणों का लेने वाला हो जाता है। लोक म कहते हैं कि "अधिक बड़ाई जीवन लेय" योद्धा अपयश भी होता रहे। एक मन भर मीठी खीर में छ मासे लज्जा डाल दो तभी मधुर रस व्यक्त होगा शुक्रवस्त्र म स्वल्प नील दे देने पर भूरापन जच जाता है। स्वच्छ पानी नीला दीपता भी है। अच्छा आस्ता। देरो, फिर तुम ही कह दागे कि महावीर जी ! तुम तो सर्वन व मेरी इत्या ऋण देने वाली जमींदारी मुझे क्या जिता दी ? गाली देने वाला या मारने वाला लड़ना और इज्जत निगाइने वाली पुत्रवधु, क्या प्राप्त करोई, ऐसे यश म क्या रक्ता है ? जो अपमृत्यु का कारण हो। इत्यादि उपालम्भ महावीर स्वामी जी को न मेलने पड़ें इमी लिये बच्चे को सच्चा साप न ढिलाने के समान त्रिलोक-त्रिकालज्ञ वीर प्रभु ने मानू तुम्हारी तमाल चाही हुई वस्तु न दिलाकर हित ही किया। और योग्य पुत्र दिला देने म भी क्या रक्ता है ?

निम्ने लिये अनगार धर्मोमृत मे प्रकांड विद्वान् आशा-
 धर जी ने किमी आचार्यको यह उक्त लिखा है कि—

‘जाग्रो हरइ कलंत, नट्टन्तो बद्धिमा हरई’।

अर्थ हरइ समंत्यो, पुतसमो पैरियो सुत्थि ॥

लडका उत्पन्न होनेही स्त्रीको छीन लेता है। बदवारी करता हुआ हमारी बदवारी के साधनों पर डाका डालता है। समर्थ होकर प्राणाधिक प्रिय धन को हडप लेता है। पुत्र के समान कोई पैरी नहीं है। इमी प्रकार भूमि या धन की निन्दा ग्रन्थों मे की है यह बात महान आचार्य जी ने महावीर जी की आज्ञा से ही तो लिखी थी यों उनकी निषेधी हुई वस्तु-ओं को आप उन्ही से मागते है भला यह भी कोई मनुष्यना है ? श्री बद्धमान स्वामी तो सनका हित ही करते है ईश्वर करंगे भी। भक्तों के लिये उनका भण्डार खुला है इई जितना ले लो अज्ञानी जीनों क मनोरथ भी दिन में दूध दूध बदल जाते है। अतः वे तीन लोक तीन काल में इति मन्त्र तत्र तुमको पता देते है इमी का आदर रोग दने मन्त्रों की उक्त पद्यानुसार अर्थ अलङ्कार की बात है।

अत्र द्रव्यानुयोग पर आयो “नदि मन्त्रोत्पत्ति-
 नुपत्ति” दगाई कोई रोगी की इच्छा पर नदी मन्त्र है।
 हा ठोस लाभ रूगती है। सम्यग्दर्शन से शत्रु मनुष्यो
 रक्षो।

नैन न्यायगुणानुसार अपेक्ष

भाज पर लक्ष्य करो । समारी जीवों के कार्मणवर्गणार्थों का योग द्वारा प्रतिक्षण थासव होता रहता है तत्कालीन रूपायानुसार स्थितिघ और अनुभागघ भी पढते रहते हैं । प्रतिक्षण एक निपेरु का उदय आकर जीवों को मुरा दुःख, मोह, अज्ञान आदिक कर्म फल भोगने पढते हैं । यों अपने भले बुरे विचार अनुमार जावेहुये कर्मों का भी लक्ष्य करो, पुण्य पाप की ध्ययस्था का चमत्कार आप लोग देख रहे हो । देरों के कण्ठ से अमृत भरता है और हम लोगों के कण्ठ से प्रतिरयाय (नजला) ।

अपने अन्तरङ्ग शुभ परिणामों पर दृष्टि डालो, दूसरों पर दोष मढ़ देने की अपेक्षा स्वकीय सञ्चित पाप कर्मों की शक्ति को निरसिये तत्र नमस्कार मन्त्र और श्री महावीर, स्वामी पर आक्षेप करना । श्री महावीर स्वामी जी ने अपनी अपवाद रहित पावन देशना से आपसो पुण्य, पाप का फल प्राप्त करना भी आदेशित किया है । व्यर्थ क्यों घौरा रहे हो ? स्वस्थता की शीघ्र औपधि सेवन करो । वीर भगवान ने तो अन्धों को अनाप सनाप रत्न बाटे हैं भले ही कोई अज्ञ उन अमून्य मणियोंका परिज्ञान आदर न करे । एतापता उन मोही जीवोंका ही भवितव्य अच्छा नहीं दीखता है अभी समार-परिभ्रमण लग्ना पडा हुआ है ।

विचारशील भ्रातृगण ! जिनको दिन रात मोह, मद, नशा चढ रहा है वे तो विचारे विचार ही क्या कर सकते हैं । हा जो थोड़ी सी भी अन्तर्दृष्टि रखते हैं उनके लिये इतना ही रुचन पर्याप्त है कि नमस्कार मन्त्र का उच्चारण करते समय या मद्यपीर की मान्यता करने पर जो आत्म-प्रिशुद्धि हुई है या तीव्र पाप का उदय मन्द पड गया है उस उतने ही फल पर सतोष कगे अधिक फल प्राप्ति के लिये हाथ मत पमारो । अष्टसहस्रीमें ऐसे तीव्र रागी को "अमूल्यदानकवी" दोष से दूषित बताया है । यानी मूल्य न देकर दुःकानसे संत मेत सौदा भ्रपटना चाहता है । आप पुण्य रहित दशा में तीव्र पुण्यगानों का फल लूटना चाहते हैं । क्यों ? बताओ न ।

जयपुर के दीवान अमरचन्द्र जी और निद्वद्वय प० टोडरमलजी महोदय के प्राण कैसे गये ? यदि ये महानुभाव स्पष्ट वृत्तांत कह देते तो अन्य अनेक मनुष्य मारे जाते और ये उच जाते किन्तु ये अहिंसा, करुणारूप ठोस आत्मीय धर्म को पालते रहे, इन्होंने निपत्ति पडने पर रुदली घात सहित सन्यासरूप परिणामों से शरीर को छोड दिया, बताओ जीव-दया का दृष्ट-फल उनको क्या मिला ? सच पृछो तो इनको ठोस धर्म फल प्राप्त हुआ । "श्रेयामि गृह्णिन्नानि" को भूल जाते हो ।

इस कलिकाल में पापी जीव अधिक उपजते हैं उरु-
 पुण्यमान् नहीं। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भी निवृष्ट हैं।
 अतः सामग्री मिल जाने पर पापों का उदय आ जाने से
 अनेक कार्यों में अधिक विघ्न आ जाते हैं। चनों के साथ
 भित्तुया भी पिस जाता है। यों उदाचिन् सज्जनो को भी
 विघ्न होना पड़ता है। राजसार्तिक में कर्मों के आत्मा
 को फल देने में द्रव्य क्षेत्र काल भावों को भी निमित्त
 बताया है।

जीवन्धर स्वामीने आसन्न—मृत्युर्क कुत्तेको नमस्कार
 मन्त्र दिया, मरकर कुत्ता बर्म प्रसाद से देव हो गया उस
 दर ने आर्य महनीय मुनि से प्रथम जीवन्धर स्वामी को
 नमस्कार किया, कई विधायें देकर सत्कार किया। श्री
 पार्ष्णनाथ ने सर्प-सपिणी को मन्त्र दिया उन्होंने सौधर्म
 से भी अधिक विभूतिगाली घरखेन्द्र, पचासती होकर श्री
 पार्ष्णनाथ का उपकार किया। इन दृष्टान्तों से अन्य भी,
 पुराने और नवीन अनेक उदाहरण हैं।

इन दृष्टान्तों से स्वार्थी लोग यों भ्रष्ट रह बैठगे कि
 जो हमारा पहिले या पीछे उपकार करे उसे हम भी
 उपकार कर मरने हैं। किन्तु दयालुओ ! यह दया धर्म
 का मिद्वान्त नहीं है। यदि उपवृत्त जीव उपकार न करे
 प्रत्युत घोर अपकार भी करे, जैसे कि कर्मठ नें एक तरफा

वैर निभाया था। - मर्ष, चिन्तू, स्पष्टमल, ततैया भनै ही काटने ही जायें तो भी उपकारी महानुभाव ऐसे दृष्टो पर भी मतत कृपा ही करते रहने हैं। शिर्ष्या ने अपने भक्त मर्ष पर प्राण जाते दृष्टे भी दयादृष्टि रखी थी। ऐसे आत्मीय पुरुषार्थ द्वारा शिष्या वर्म मविष्य में पुण्य को ही पाये यह नियम नहीं, ये कृत्य तो मञ्जित रमों के नाश करने में प्रधान कारण हैं। तभी तो मुनिगज उपमर्ग या परीपह आ जाने पर अपने रमों की निर्जरा हो जाना ही प्रधान फल विचार लेते हैं। गहरे गुणस्थान तक विचार होता है, ऊपर मञ्जित नहीं। सज्ज देव का वैजलज्ञान अविचारक है। विचार करना मन का कार्य है। तेरहवें गुणस्थान में द्रव्य मन है, भाव मन नहीं और सिद्धों के द्रव्य मन, भाव मन, कोई भी नहीं है।

५. अतः शास्त्र को पढ़कर गार्ह्यार्थ को जान लेना या दौड़ रही रेलगाडी से बम्बई का चाहे कौन से प्रदेश से रूतन निकटत्व के आपेक्षिकज्ञान में विषय हो रहे निस्मार सकल्पित भूटे सन्चे-ज्ञेयो को वे नहीं छूते हैं। हा निरल्प ज्ञानियों के उन भूटे सन्चे ज्ञानों को वे जान रहे हैं। वस्तुभूत त्रिकालवर्ती लोकालोक के निखिल द्रव्यगुण परिणियों को वे युगवत् प्रत्यक्ष देख रहे हैं। इस विषय की विशेष चर्चा करनी हो तो मुझसे मिलकर बात कर लीजिये।

शास्त्र मन्थित कृत्य का निरादर कर बैठना उचित नहीं ।

जिनारु को गम्भीरता, सहनशीलता, अशीघ्रता, विवेक, सहिष्णुता, विनय से व्यवहार करना चाहिये । स्वल्पमतभेद से तीक्ष्ण कषायें कर बैठना यह टेव जैनों में से जितनी शीघ्र दूर हो जाय उतना ही शीघ्र जैन सगठन हो जायगा, पाप—भार भी हल्का हो जायगा । अत्यल्प मतभेद पर उतनी परिणामो म-तीव्रता अल्पत्र नहीं पाई जाती है । बनारस में राजपूताने का निरामिष भोजी ब्राह्मण विद्यार्थी उन बंगाली या मैथिल गुरु जी के चरणों में साष्टांग मस्तक छुमाकर नमस्कार करता है । कोई २ तो चरणों को वो कर पीजाता है जो कि निर्गल, मद्य, मांस सेवन करते हैं । अब प्रकरण पर आइये ।

जीनों के सभी सुख, दुःख इन पुण्य, पाप से सम्बन्धित होंय यह एकांत नहीं है । कतिपय सुख दुःख समारी के पुरपार्थ से भी हो जाते हैं ।

क्षपक श्रेणी या तेरहवा गुणस्थान अथवा सिद्ध अरुथायोंक सुख तो नियमत इच्छा के बिना पुरपार्थ से ही होते हैं । सबसे बड़ा पुरपार्थ मोक्ष है जहा कि आत्म स्वर्गीयधीर्य (अनन्तगल) से अपने स्वाभाविक परिणमने में निमग्न है, पर-निमित्तों का आघात बाल बाल बचाये

हुये हैं हमको छोटा उद्योग न समझ बैठना ।

जीवों में परस्पर सुख दुःख लेना देना मानने वालों से यह बात और भी कहनी है कि सामायिक करते समय एक श्रावक को सँकड़ों मच्छर काटते हैं या मक्खियाँ सताती हैं (श्लोकगतिक्रमे "सङ्घिन समनस्का" सूत्र की टीकामें ऐन्द्रिय द्वीन्द्रिय चींटी मक्खी मच्छर आदि जीवों में भी ईहा, अज्ञाय, धारणा, स्मरण, अभिलाषायें होना सिद्ध कर दिया है ।) ता यह श्रावक क्या पुनर्जन्मों में मक्खी, मच्छर, पर्यायों को धारेगा, और वे मच्छर क्या श्रावक नंगे ? बदला तो तभी चुकाया जा सकता है किन्तु यह बात नहीं है । वस्तुतः जैन सिद्धांत दूसरे ही प्रकार का है क्वचित् ही दुःख सुख बदले से दिये जाते हैं बहु भाग तो एक ओर से ही सुख दुःख दिये जाते हैं ।

अन्तरङ्ग में धारा प्रवाह से पुण्य पापोंदय का स्रोत चालू है ही । परिशेष में पुरुषार्थ भी तो कोई वस्तु है । यह भी सम्भव है कि किसी अन्य जीव ने हम को सताया हो न्यारे द्रव्य क्षेत्र कालों में दूररेके द्वारा या अचेतन कर के हमको उमका फल मिले । बध रहे एक सौ बीस कर्मोंमें नियत जीव, या नियत क्षेत्र, काल नहीं लिख दिये जाते हैं । जहा योग्य प्रकरण बन बैठा वहाही कर्मों ने फल दे दिया । योग्य सामग्री न मिलने पर कर्म फल देने बिनाही

भर जाते हैं । जैसे कि हमारे आपने देवगति, नरकगति आदि कर्मों का प्रदेशोदय हो जाता है । वधे हुए हम अपना फल देवों ही या पुरुषार्थ कर्मों के अनुसार होय, ऐसी व्याप्ति नहीं है । अविपाक निर्जरा उत्कर्षण अथवा दर्शन, सरूपण आदि कर्मविधायों भी तो होती हैं । सर्व-चेतना कर्मफल चेतना को समझो ।

इस समय हम सासारिक सुख दुःख का विचार करना है । किसी को हमने पूर्व जन्म में मारा पीटा हो, तभी वह जीव मारे पीटे यह नियम नहीं है । समुद्र में बड़ी मछलियां छोटी मछलियों को बिना अघराध खा जाती हैं, एक छपरली हजारों मछिरियों को घट कर जाती है, एक तीतर लाखों दीमकोंको खा डालता है, एक मछलीमार अधिक करोड़ों मछलियों को मारता है । क्या उन सभी मछलियों ने पूर्व जन्मोंम धीर को जालमें फँसाया था ? क्या फमाई को घरों ने पहिले भयोंमें मारा था ? क्या परस्त्री-गामी गजा का उन बलात्कारित स्त्रियों ने पूर्व-जन्मों म मतीत्व मङ्ग किया था ?, नहीं । यह सब नये तौरसे किये गये पाप हैं ।

श्री पार्ष्वनाथ भगवान् के जीव ने कमठ को किसी भी भव म हानि नहीं पहुँचाई थी ।

एक रात यह भी लगे हाथ समझ लो-कि अयोध्या

नगरीमें एक बुढ़ा भैंसा मार्गम गिर पडा, हजारों अयोध्या वाली नरनारी उमको पाँों से रोंदते हुवे निकलते रहे, वडे कष्ट से भैंसाकी मृत्यु हुई, वह मरकर क्रूर असुर हुआ और उसने अयोध्या में भयङ्कर महामारी रोग फैला दिया, अनेक मनुष्य क्लेश पाकर मर गये और बहुत से जीवों की रक्षा विशल्या के स्नान जल से हो सकी ।

हा जी ! आज कल तो सैकड़ों नर नारी, हजारों भैंसे, लाखों गायें, करोड़ों मछलियों, असुरय घुन अण्डे, पक्षी, या अन्य दुर्बल सरल जीवों का सहार हो रहा है । किन्तु एक भी नर गाय या भैंसा मरकर किसी स्वघातक को कष्ट नहीं पहुँचाता है । अनुदिन हिसा होना बढ़ रहा है । कपट, पापाचार, व्यभिचार, आपक, इच्छायें बहुत दिनों दिन बढ़ती जा रही हैं । ऐसी दशा में आप पाप का चमत्कार कुछ भी नहीं देख रहे हैं । बस, गुरुजी का आदेश यह है कि तत्त्वतः फलाफल को न देखकर अपने धर्म पर दृढ़ बने रहो । परीचा काल में ठीक उतरो-बहक न जाना, अन्याया दीर्घ आज़रजव भोगना अनिर्णय हो जायेगा, समझे !

अपना प्रिय पुत्र पिता, माता, स्त्री, पति, भ्राता मित्र आदि भी मरकर कोई उपकार या समाचार नहीं लेते देते हैं । हम भी तो पूजन दर्शनको जाते समय मार्गम कीचड

माटी म मर रहे, गाये मताये जा रहे कीड़ों की ग्वा पहा बगने हैं ? पण्ड कर मारनेके लिये ले जा रहे घुँ, कुत्तों बग्गों, गावों को मित्ने भाई उचाते हैं ? घम कुद्ध न कहलाथो, दवोंको ही दोष क्यों देते हो ? न तो वे कृपालु परोपकारी देव या मनुष्य ही यह विचार करते- फिरते हैं कि हम जीव के पास घम प्रत्यक्ष दीख रहा है अतः हम मानव या तिर्यच की रक्षा कर दो । यह कार्य कर देना रिप्ती का स्मरुतप्य (डिउटी) नियत भी नहीं है और न जइ पुण्य पावों की ओरसे रिप्ती को उनका कार्य करते रहने की नीङ्गी ही मिलती है । और न घम सेरने वालों को अपने जइ पुण्य मे ऐसी उपहार बगने की या उपद्रव टल जानेकी मनीषा करना उचित है । वही घृणाधरन्याय से कोई कार्य बन गया तो त्रिलोक त्रिकाल मे व्यभिचार रहित अन्वय व्यतिरेक वाले कार्यकारण मात्रका क्या पूरा पड़े । हा अचेतन अर्थ अपने द्रव्यादि अनुमार कार्य करते रहे हैं उस अचिन्त्य कठोर शक्ति से अनधिकार अपमा मस्तिष्क मत लड़ाओ ।

कोई कोई उच्छृङ्खल मनुष्य यो कह बैठने है कि आज कल भर्मात्मा अधिक दुख पाते हैं, पाषा मीन उढाते हैं, सती विधवाओंसे वेग्यायें सुरिनी हैं, कई कपाई यो कम्पनी बनाकर जता बचने वाले हिंसक मनुष्य तो

मोटर या चौरुही में बैठकर मैर करने फिरते हैं। इससे निपरीत जिनके घर में जिन मन्दिर जी हैं वे दुखी होते जा रहे हैं। कतिपय विम्ब-प्रतिष्ठा कराने वालों की दुर्दशा हो चुकी है। सयमी, तपस्वी, दयावान् पुरुष ऋष्टमे हैं। नीम नती नल्लचारी न्यागियों को एक न्यभिचारी गुण्डा हरा देता है। रुस्ती में पछाड सकता है।

भाइयो ! यह बात नहीं है मञ्चित तीत्र पाप पुण्य प्रपना कार्य तो करेंगे ही। “अर्थक्रियाभारित्व वस्तुनो लक्षणम्” कतिपय धर्मात्मा दुख पाते हैं। साथ ही नहुत से पापी भी अनेक ऋष्ट उठा रहें हैं। अनेक दीन, दरिद्र, भिखारी, चिर-रुग्ण, यालदने वाले घोडे, भैंसे, मुर्गी, मछली आदि जीव नहुत दुखित हैं।

इसी प्रकार कोई पापी पूर्व पुण्यानुसार मौज उडाता है। तो अनेक सन्चे धर्मात्मा भी आनन्दमग्न हो रहे हैं। धरनाते क्यों हो कुछ अपने अन्तरङ्ग कर्तव्योपर भी लक्ष्य दो, कारणों को सूक्ष्म दृष्टि से निहारो, घर में मन्दिरजी हैं तो सूतरु, पातरु, लडाई, कलह, कदाचार आदि अनेक कुरम घर में न होने दो, विनय रखो, प्रतिष्ठा विधि में यश प्राप्ति का लक्ष्य मत रखो, नल्लचारी, सदाचारी पुण्यों से मन्त्रनिधान कराओ प्रतिष्ठा की अप्रतिष्ठा न करो, स्वयं सदाचारी बने रहो, इन अव्यर्थ कारणोंसे अग्रग्य ठोम ५

प्राप्त होगा। कोरी प्रकृति प्रायः कारिणी नहीं है। हम तो ऊईयाँ कह चुके हैं कि धर्म पालनके माथ लौकिक सुख प्राप्ति का साक्षात् सम्बन्ध ही नहीं है।


यदि धर्म धारण का फल “दुर्जन तोष न्याय” से साता घेदनीय, उद्योग, शुभनाम, आयुस्त्रिक इन पुण्य-कर्मोंका रन्ध जाना भी मान लिया जाय तोभी धर्मपालन से तत्काल लौकिक सुख हो जाने की वाञ्छा मत करो, न जाने पुरात्तित नितने चिरनद्ध असख्यात जन्मों वाले सत्तर के टरकोटी सागर, या वासनानुसार अनन्त वर्षों के तीव्र स्थिति अनुभाग वाले पाप कर्म आज कल उदय में आ रह हैं। और आज कल का निर्दोष धर्मपालन न जाने नितनी आत्राधा कालके बाद तुमको शुभ फल टव क्या पता है ? कर्मों का उतना डर नहीं जितना कि कर्मों की वासनार्ये महा भयङ्कर हैं। बालकवत् जन्दी न मचाओ शीघ्रता करने से काम त्रिगड जाता है। धैर्य से हथेली पर सरसों को जमाओ, प्रनचनसार म भी कुन्दकुन्दाचार्य जी ने कहा है कि—

जदि सन्ति हि पुण्याणिय परिणामसमुन्मत्राणि विरिहारिण
जणयन्ति निसपतएह जीयाण देव दन्तारणम् ॥

उपाध्यायजी ने इम गाथा और इसकी अगली गाथा द्वारा पुण्योमो दु खों का हेतु सिद्ध किया है। जोर करके

क गोपने की अभिलाषाका उद्विग्न दृष्टात देकर युक्तियों
 उसके राद्धान्त पुष्ट किया गया है। महान् पाप का आसन्न
 होते रहने की दशा में पुण्यासन्न की क्षणिक प्रशंसा कर
 मरुते हो, मात्र पुण्यासन्न को ही चरमधेय मत समझो।
 पुण्य की सुर वासनाएं भी पाप मस्कारों के समान ससार
 भ्रमण को बढ़ाने वाली हैं। मिथ्यादृष्टि या अभव्य जीव
 अनेक नार ग्रंथों में हो आया एतावता कोई सार नहीं
 निकला।

वैष्णव जन प्रतिदिन देवदेवियों से इष्ट वस्तु की
 प्रार्थना करते हैं, कालीदेवी, त्रिन्धेश्वरी तथा अपने गात्र
 या निकटवर्ती अनेक देवी देवों की स्वेच्छा पूरणार्थ पूजा
 पत्री करते हैं। सुमलमान भी राजा शरीफ, मीया-
 अमरोहा, आदि को अपनी उत्कण्ठायें (तमन्नायें) पूरी
 करने के लिये मनाते हैं। सो ठीक है, वे रागी डेपी देव
 हैं, और वैसे ही आराधक हैं "यथा देवस्तथा पूजा"
 किन्तु जैनों के देव तो वीतराग हैं, और जैनोंका लक्ष्यभी
 रागद्वेष रहित वीतराग विज्ञान की प्राप्ति करना है। फिर
 यह दुःकानदागी कैसी! व्यर्थ प्रतारणा और आत्मनञ्चना
 की जा रही है।

खेद की बात है कि जैनों में अजैनों के कतिपय ऐसे
 व्यवहार आ  भगवान् चाहते तो आपका

हो ही जायेगा, सर्वज्ञ ज्ञाता, दृष्टा, परमात्मा विद्यमान हैं। एक ही माया है' इत्यादि व्यवहारों से तत्त्वज्ञान को छति पट्ट चती है। मय्यदर्शन विगडता है। अतः ऐसे प्रसङ्गों से उचे रहो, विपरीत या सशयास्पद विमार्गों को जैनतत्त्वों पर मत लादो। जैनो में दूमरे का अर्जन साहित्य घुम पडा है उसको छेक छेक कर निराल डालना भी सुदुस्ता है अतः तो जैन वचारे हिन्दुओं में ही गिने जाते हैं। भगवान् रक्षक हैं।

रुद्रादी वैष्णव या सुडा भक्तोंके सहजाम म रह कर देवमक्तिसे लौकिक सुखोंकी प्राप्ति करना ही धर्म का चरम फल मत समझ बैठो। मोहम्मदीय यत्नों की अपने इस देव पर यदूट श्रद्धा है, अपने स र्माथियोंसे हादिक अनुराग है दीन कहते ही लाखों करोड़ों एक जीवन मरण हो जाते हैं। धर्म पर सब कुछ अर्पण करने की समझ रहते हैं मात्र इतना अनुकूलण करो, अभक्ष्य भक्षण, इत्यादि अस्मिदाह, अपवित्रता का नहीं।

जिनदेव, गुरु, शास्त्र म और जिनधर्म म गाढ श्रद्ध रखो। महावीर जी के दर्शन से, सम्मेदशिरसर जी व यात्रासे कर्मभार अत्यथ हलका हो जाता है, विशुद्धि बढ़ती है इस सर्वज्ञोक्त को मानो। ईश्वरादियों ने ईश्वरको सर्व शक्तिमान् मान रखा है। किन्तु जैन सिद्धावम वीर प्रभु

को अनन्त शक्तिशाली कहा है। कल को अभव्य यदि मोच हो जाना माग बैठे, तो वे बेचारे भी क्या करें। यदि तीर्थकरका वश होता तो सबसे प्रथम जगत भर की कर्म वर्गणाथो को ही नष्ट कर डालते। किन्तु यह कार्य वे नहीं कर सके।

चार निकाय के देव भी क्या दे सकते हैं ? पुरुषार्थी जीव को स्वशक्तियों पर ही अग्रलम्बित रहना चाहिये, अपनी कपाई मवॉल्लुष्ट है यही स्वालम्बन जैन सिद्धान्तका रहस्य है। न्यायशास्त्र में "हिताहित-परिहार-ममर्थ हि प्रमाण ततो ज्ञानमेव तत्" हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार कराने में समर्थ स्वकीय ज्ञानको माना है। अतः अपने समीचीन ज्ञानों को सम्भालो, अशरण अनुप्रेक्षाका चिन्तन करो, तत्र कष्ट पड़ने पर कोई शरण नहीं दीखता है। इन्द्र, अठमिन्द्र, क्षेत्रपाल कोई रक्षा नहीं करता- है। श्री जिनेन्द्रदेव भी कृतकृत्य शुद्धात्मा हाकर सिद्धालय में विराजमान हैं, आप किम सहायता की भिक्षा के प्रपञ्च में फसे हो, आत्मजल उड़ाओ। मागनेसे देव या पुरुष कुछ भी नहीं देता है। जो स्वयं दीन है वह दूसरोको क्या निहाल करेगा। अपनी आत्मा की विडम्बना कर तुच्छ भले ही उन जाओ।

यदि एक दो देवों ने धर्मात्माओं की रक्षा की है तो

साथ ही साथ यह कहना पड़ता है कि अनेक क्रोधी देवों ने मुनियों पर अकारण घोर उपमर्ग भी करे हैं। द्रुपद, मनुष्य, तियच और अचेतनों द्वारा किये गये उपसर्गों के हजारों दृष्टान्त प्रथमानुयोग में पाये जाते हैं। दृष्टान्त सभी प्रकार के विद्यमान हैं। सुभीष या लक्ष्मणको विष ने मारा ? मनुष्य भी घातक या रक्षक हैं।

उत्तर पुराण में लिखा है कि एक स्त्री को भयङ्कर सर्प ने काटा प्रियपत्नी की बुरी अवस्था देखकर उसका पति दौड़ा हुआ मुनिराज पर गया, और बोला कि यदि मेरी पत्नी जीवित हो जाय, तो मुनिपुङ्गव ! मैं आपकी सहस्रदल कमल से पूजा करूँगा मुनि यौनवती ये देवयोग से स्त्री जीवित हो गई श्रद्धा वश पति बेचारा हजार पत्तोंवाले कमल को लेने गया तलवार यहाँ ही छोड़ गया था। इधर निकट स्त्री ने एक शिष्ट चोर से सकेतपूर्ण बातें कहीं पति को विग्न समझा, चोर उसका भाग साङ्ग गया, पतिने आपस कमल से मुनिराज की पूजा कर, जो मुनिराज के सन्मुख शिर झुकाकर नमस्कार किया, उसी समय उस दुष्ट स्त्री पतिको मार डालने के लिये तलवार का प्रहार किया किन्तु अकस्मित् उस मले चोर ने पति की रक्षा की। इस का भागसे आप लौकिक मुख दुःखोंको हेय समझने का शिष्ट ग्रहण करेंगे ऐसी सम्भावना है।

गिज्ञ पाठको ! धर्मका फल अतीव गूढ़ है । मैं स्वयं शब्दों द्वारा आपको समझाने में असमर्थ हूँ । एक गंगार ग्वालियेने ध्यानस्थ मुनिको तीव्र जाड़ोमें कृपावश कमल उदा दिया था । किन्तु ऐसे कष्ट निवारण को मुनि तो उपसर्ग ही समझते हैं । आप ही मतलायें कि ग्वालिये को पुण्य हुआ या पाप ?

श्री समन्तभद्राचार्य जी ने लिखा है कि वर प्राप्ति की इच्छा से आशामान् नहीं होना चाहिये ।

अच्छा तो और भी सुनिधे-कत्रिरेण्य महान् विद्वान् धनञ्जय कह रहे हैं कि—

इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद् वर न याचे त्रमुपेक्षकोसि
हे देव ! आपकी स्तुति कर मैं दीनता से कोई वर नहीं मागता हूँ । क्योंकि तुम में कोई राग द्वेष नहीं है, इच्छायें भी नहीं हैं । तुम तो सब से उपेक्षा करने वाले हो दोगे भी क्या ?

-अथास्ति दित्सा यदि वोपरोध-

स्त्रम्पेन सक्ता दिश भक्तिरुद्धिम् ।

कवि जी जिनेन्द्रदेव से कह रहे हैं कि यदि आप फिरमी कुछ देना चाहते हो, और मुझे बलात् रूपसे उरुसा रहे हो कि “भाई कुछ न कुछ ले लो” ऐसा तुम्हारी ओर से भारी उपरोध होने पर मैं यह ही कहता हूँ, कि-मुझे

कोई लौकिक फल नहीं चाहिये। इ भगवन् ! केवल आप में मेरी भक्ति बनी रहे यही वर मुझे दीजिये, पार्श्व सम्बन्धन को मैं मांगता हूँ। स्तुतिमार्गोंके यहाँ जिनके देव की भक्ति को ही सम्बन्धन माना है और यह ठीक भी है।

बन्धुयो ! सबसे छोटा धर्म श्रद्धा, भक्तिपूर्वक जिनके दर्शन, पूजन करना है। और बड़ा धर्म सपरक श्रेणी के शुद्ध परिणाम है। ये धर्म अपनी निश्चिन्ता अशा से कर्म का सार और निर्जरा ही करते हैं। हा पूजन, प्रतिष्ठा, जाप्य दान, परोपकार, सरागमयम आदि के प्रवृत्ति, अर्थ से कुछ पुण्यबन्ध भी मान लिया जाय तो ऐसे फलहीन धर्मात्मा कोई तीव्र अभिलाषा नहीं रखते हैं। परन्तु लौकिकसुख भोगना पड़े, यह न्यायी बात है। भावसम्बन्धन दर्शन का अन्तस्तत्त्व एकड़ो, जिनको कि धारण करने वाले गोमट्टसार अनुसार लाखों करोड़ों में आज कल यहाँ 'एक दो ही हैं। अतः परिशेष में कहना पड़ता है कि निष्काम होकर धर्मका सेवन किये जाओ। "निकी कर और दरिया में डाल" यह धर्मों की किंगदन्ती भी इसी आशय को लिये हुये है।

शुभाशुभ फलों से अणुमात्र राग, द्वेष, मत करो, आत्मा आत्मा को आत्मा करके आत्मा के लिये आत्मा

से आत्मा में सचेतन करता रहे, यह श्रमेद पटकारों की भावना सर्वतो-भद्र है। सीता, सुदर्शन आदि को भी इसी स्वानुभूति से ही मोक्ष प्राप्ति हो सकती है। “उम व्यक्ति ने क्षणिक लौकिक सुख प्राप्त कर लिया हम नितान्त, धर्म में लगे रहते हैं, तो भी कुछ फल नहीं मिलता है” ऐसे तुच्छतापूर्ण विचारों को मन में मत लाओ, परीक्षक को ऐसे विचारों से ही तुम्हारे धर्मपालन का अनुमान लग गया, बस चुप रहो, अधिक क्लेश मत सुलनाओ। भूलें पर भूलं न करते जाओ।

कतिपय बड़े लोगों से भारी गलतियाँ हो जाती हैं। कुछ कम ८७ सत्तासी हजार वर्ष पहिले की बात है अतिम बलभद्र, नारायण ने श्री नैमी-धरनाथ भगवान् के भविष्य द्वारिका-दाह निरूपण पर पूर्णश्रद्धा न रख मही भूल गी, जिससे कि वे अपने धृष्ट माता पिताओं को या कुटुम्बी-जनों की अथवा प्रिय प्रजा-जन आदि की रक्षा नहीं कर सके, अक्सर आ पढने पर भी समुद्र जल से आग बुझा देने के बलकी शेखी पर तने रहे, और अन्तमे जो भगवान् ने कहा बही हुआ, ममी प्रयत्न व्यर्थ गये, समुद्र का जल पेट्रोल हो गया, सब शेखी भस्म बूल म मिल गई।

निकटतम बारह लाख वर्ष हुये उम युग की बात है कि उपान्त्य बलभद्र रामचन्द्र जी ने मोक्षगामी जीवों को

उदर में धारने वाली गर्मिणी शीलवती मीठा की हिम
जन्तुओं से भरपूर हो रहे भयङ्कर उन में सुदृश दिया।
श्रीग इमी अपराध के कारण उनको सीता की अर्न्त दृष्टि
से निरुली हुई यह करारी लताइ गुननी पड़ी, कि 'लोक
पवाद से जैसे मुझे छोड़ दिया है वैसे नहीं धर्मों न छोड़ -
बैठना।' इसी प्रकार भयङ्कर अग्नि-प्रवेश की कठिनतम
परीक्षा देने को स्वीकार कर लेना भी सीता की नितान्त
गलती है। यदि कुछ ऊँच नीच हो जाता तो धर्म की
कितनी वाच्यता होती, इस तत्वज्ञोभी कभी आपने सोचा
है। माना कि रेत के मैदान में छलांग मारने वाला नट
पाच गज पतंग मार लेता है, किन्तु उससे दो गज कम
चौड़े भयङ्कर हुए तो नहीं उलपगाना, देखी धोखा हो
जायगा, काले भुजङ्ग के साथ मत खेलो। अपने घर के
आगे एक गज ऊँचे खातरे पर पात्र लटका कर आप
निर्भय बैठ सकते हो, किन्तु सतखने महल की सीधी भीत
के ऊपर कहीं नीचे पर लटका कर नहीं बैठ जाना। पाप
आर्र्पण करता है और मृत्युयें खाँचती हैं कदाचित् गिर
पड़े तो अपयश के साथ अपमृत्यु ही प्राप्त होगी।

अनेक अत्याचार या कष्टों को सह लेने के पश्चात्
सोमा, चन्दना, सुलाचना, वृषमसेना, अञ्जना, द्रौपदी या
सुदर्शन, श्रीपाल, मानतुङ्ग आदि को कुछ थोड़ा सा

लौकिक चमत्कारभी प्राप्त हो गया तो इससे क्या पूरा पड सकता है । जब कि लाखों, करोड़ों असुरएड पतिव्रतार्थों को रती भर भी अतिशय न प्राप्त होकर कदली-घात मरण करना पडा है अनेको को सतीत्व भङ्ग सहना पडा है । सीता को भी पूर्वभ्रम मे यह उलाटकार भेलना पडा था । तभी तो सीता ने रावण के जीनके साथ वैसा घुरा निदान किया था । इम जन्ममें भी रावण की इस प्रशस्त दृढ़ प्रतिज्ञाने सीताको बचा लिया कि 'चाहना न रखनेवाली स्त्रीका मैं सेवन नहीं करूंगा ।' अमख्य धर्म-प्राण पुरूप वर्ग भी बेमौत मार डाले गये, आज भी कई रियामतो, म्लेच्छ प्रातों म मारी पोलें चल रही हैं ।

मैं तो कहता हू कि अन्यायी राजाने यहा ही क्या ? पहले अपने हृदयों को ही आप लोग टटोल कर देखें, हम लोगोंकी आत्मा मे धर्म कितना है ? और पापपङ्क कितना ठमाठम भरा हुआ है कि यदि आप आतुर होकर किचिर् धर्म सेवनका भटिति मे चमत्कार देखना चाहते हैं तो वह अधिक मात्रामे पाया जा रहा पापपुञ्ज भी अपना त्वमत्कार दिखानेके लिये सबसे आगे निकल पडेगा । बोलो ऐसी हालत मे आप चमत्कार देखने की उत्कण्ठा (हमिश) को कम करेंगे या नहीं ? । विचारक आतायो ! निष्पत्त होकर अपने-पाप और पुण्य की रोकड को मिला

की आय व्ययका खाता ठीक करो। सड़ते-भरे घण्टे तब
 किया गया अपाय-जन्य पापही पहिले पूरा फल दिखोयेगा।
 पीछे पूरे दिन रातमे मात्र आध घण्टा किये गये धर्मसेवन
 को फल दिखानेकी चार्गी आवेगी। ऐसी अस्थामें आप
 जोर से पुकार मचायेगे, कि महाराज हमें धर्म, अधर्म में
 से निर्मा का फल नहीं देयना है। हमें यों ही जैसे का
 तैमा पूरे पापपुञ्ज की अस्थामें निरापद जीवित रह लेने दो
 नहीं तो पाप के तीव्र प्रहारों क मार अभी दम घुट जावेगा
 जगत मे पापपुञ्जने गूढ़ रहस्यघारी (द्विप रुस्तम) बहुत हैं
 जो कि आजकल तीसरे नरकतक जाते हैं। चौथे, पाचवें
 छठे, सातवें नरको को भी आजकल विदेह क्षेत्र से मरकर
 पापी जीव जाते हैं। किन्तु इन प्रत्येक नरक में प्रतिक्षण
 असंख्याते जीव पहुँचें तब इनका पट मरे।

दार्शद्वीप म मनुष्य या सत्री असत्री तिर्यक् भेचारे
 मितने हैं। इनकी एक समयकी भी भूख नहीं मिट सकती
 पारह स्वर्गोंमे भी असंख्याते जीव प्रतिक्षण जन्म लेते रहने
 चाहिये सम्यक्ती तिर्यक् सोलहवें स्वर्ग तक जाता है।
 तथा नरको से निकल कर असंख्याते जीव कर्मभूमि के
 गर्भन जीवों म ही जन्म लेंगे। पहिले दूसरे स्वर्ग मे आ
 कर तो एकेन्द्रिय भी हो जाता है, ऊपरले स्वर्गोंसे नहीं।
 यों नरको स्वर्गों को भरने वाले या वहा से आकर गर्भजों

में जन्म लेने वाले जीवों का बड़ा भागी गोदाम, स्वयम्भू-
रमण-द्वीपार्थ और स्वयम्भू रमण समुद्र हैं। जहाँ कि
असंख्याते प्रती अत्रती गर्भज निर्द्वेष पाये जाते हैं। और
समुद्र में करोड़ों, अरबों असंख्याते राधन तन्दुल मन्थ,
सम्पूर्ण जीव भरे पडे हैं।

सबसे स्वर्ग से ऊपरले देव तो गर्भज मनुष्यों में ही
उपजते हैं लाखों करोड़ों प्रणामे एक देव मरता उपजता है।

आता जी ! यह सब गूढ़ चर्चाय महावीर भगवान्
ने कही है वीर का उत्तरदायित्व अत्र त्यागी या विद्वानोंपर
है। जैसे कि घरमे अकली बुढ़िया ने चोर घुम आनेपर या
आग लग जाने पर चिल्लाकर कह दिया कि चोर चोर
आग लगी आग लगी। बस अत्र धन या प्राण बचा
लेनेका उत्तरदायित्व सुनने वालोंपर आ जाता है। समारी
जीवों में कपायो की आग लग रही है रत्नत्रय चुराये जा
रहे हैं अतिवीर का आगम चिन्ना रहा है। अत्र वर्म को
बचा लेना त्यागी और पाण्डितों पर निर्भर है।

बन्धुओ ! आज दिन १०० सौ म से पचानवे पुरुष
शृङ्गारम पूर्ण सिनेमा, नाटकों, खेल तथाशोको दरसते हैं,
या देखने की इच्छा रखते हैं। अनेक स्त्रियाभी प्रार्चन
धर्म परिपाटियों को छोड़कर नवीन राष्ट्र में उह गई हैं ये
चेष्टायें अतीव निकृष्ट हैं। कतिपय मन-चले नययुक्त

दर्शन पान करने समय भी मन को स्थिर उच्च शीघ्र पूर्व
 दन ७ उच्च गति कोई सौन्दर्य, यौवनपूर्ण स्त्री स्वरूप
 था रहा है, व अपने मन को आता दते हैं कि वगैर
 पैसा, शा, मालाया, इ मन । तू वहाँ माता आता ॥
 अगट म राम रहा है, यह ता मरवाने का फलतु फाम
 तो फिर भी म लना, हिन्दु यह शायमीर का माल यहास
 चना गरा तो फिर हाव थाने म नहा, देख दार् चारा
 माल १ तिरुलन पाव । मानो इमी लिये मन्दिरजी में
 आवे । । ऐसे लान्पुरी जीव हर मर मनोज्ञ अवला को
 वग लगे । हिन्दु अपनी देखे अनुमार उमी दीन मार
 दृष्टि को मर्क हीरर फलादेगे, तो उमको मौ मार शाली,
 कानी लुली, कुरुषा को देख लेना भी करना पड़ेगा ।
 कयो जी जिस जूए म एफार जीव अंत मौपार क्षार होय,
 इम दटे म धन्दे को कौन कर तर भुगांगा, प्रताथो ।
 आरसे दमदकी लगाकर दरना, दाध मिलाना, आसक्ति
 म माव गगीर स्वर्श मना इम म गगी पुष्ट की उत्तरोत्तर
 म्हरा निदरा रुच हो जाती है । इम शक्ति का ध्यय
 तम म्हुत दिनों तर नहा मेल सरोये ।

जितन्द्रिय म ही शारीरिक, मानसिक, आत्मीय
 शक्तियोंका वाम होता है अधिक स्पष्ट कयो करान हो ।
 प्लन, ध्यान, तत्व-चर्चा आदि धर्म क्रियाओं म कितने

महानुभाषों का और कितनी देर तक निर्वृत मन रूखा है ? हमका राह पगमर्ग करो ।

अन्ध नक्षत्रागी जप गाय, मैंम तर्की को दोहने में भी मद्बोच करता है घोड़ी, हथिनी पर उटना नहीं चाहता भगवान की समरी भी हाथी पर होती है, हथिनी, घोड़ी पर तर्की । जिन्हा की पालकी स्त्रिया नहीं ले चलती है । नक्षत्री काठचिन्की स्त्रियो को भी मगग भासासे नहीं देखता है । तो आप भक्त जी ! क्या मन्दिग्नी म टम मिनट के लिये हम वानर मनको पगमे नहीं करसकते हैं ? तत ।

दयनीय माही जीयो ! निरुष्ट आत्माओ में जप सम्यग्दर्शन ही नहीं तो अणुत और महात हां जाना तो अतीव रुठिन हैं । तभी तो सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य ने गोमट्टसार जी में उन्तीस अङ्क प्रमाण मनुष्यों में फल दशमक प्रमाण मानन सम्यग्दृष्टि बतावे है और मयमी तो मात्र आठ अङ्क प्रमाण है । हम प्ररूपणानुमार सम्भ्रत' अतिशयोक्ति से वर्तमान जैनों म चार छह सम्यग्दृष्टि मिल जात । इस विषय का अधिक विवेचन "सम्यग्दर्शन की दुर्लभता" शीर्षक लेख म किया गया है विशेष जिज्ञासु यागमान्वित उस लेख का अध्ययन करें ।

उपशम सम्यक्त्व, चायिक सम्यक्त्व, तो निर्मल है ही जप चयोपशम सम्यक्त्वमे अपने उनाये हुय जिनमिम्न, जिन

दशान पत्न रग्ने समय भी मन को स्मर उबर शीघ्र फेंक दत है जहा से कि कोई मौन्दर्य, यौवनपूर्ण स्त्री स्वरूप था रहा है, व अपने मन को थ्याजा देने है कि वेगफ, पंगा, गपे, नालायर, ह पन ! तु कहा माला आदि के भगडे म लग गे हैं, यह दागे मरसाने का फालतू कार्य तो फिर गा कर लेना, म्बिन्तु यह कार्मर का माल यहासे चना गया तो फिर हाथ थाने ग नरी, देख कोई चोरा माल न निरलने पाव । मानो इमी लिये पन्दिरजी में छाव से । ऐसे लोलुपी जीव एक गार मनोज्ञ अमला को डग लेंगे । म्बिन्तु अपनी देख अनुमार उसी दीन कातर दृष्टि को मत्क होकर फेलायेगे, तो उमको मौ वार काली, सानी लुली, मुम्पा वो देख लेना भी करना पडगा । क्यों जी निस जए म एरुगार जीत थार सांगार हार होय, हम टटे न धन्य से फान रर तक भुगतगा, वतायो । थ्याससे टरटवी लगाकर दखना, हाथ मिलाना, यासक्ति न माथ गरीर र्श रगना हमन रागी पुरुष की उत्तरोत्तर गुरुय गिजल रुच है जाती है । इस शक्ति का व्यय तुम गहुत दिना तक नही भल सकोगे ।

जितेन्द्रिय व ही शारीरिक, मानसिक, आत्मीय शक्तियोंका विराम होता है अधिक स्पष्ट क्यों कराने हो । पूजन, ध्यान, तल-चर्चा आदि वर्म्य क्रियायो म कितने

है, धनी निर्धन हो जाता है, दरिद्र लडका गोट रिया जाकर करोड़पति बन जाता है। मग्ने लायक गेमी वर्षों तक बीमार पने रहते हैं, दृष्टा कृष्टा युवा दो घण्टों में मर जाना है, कई परीक्षाएँ पास कर चुके कीर्ति मग्नेन जीविका के लिये मटग्ने फिरते हैं, और हस्ताक्षर करना भी नहीं जानने वाले कतिपय व्यक्ति करोड़पति पने हुये हैं। पटम छुरे भोरु जाते हैं फलना करोड़पति थाज भास माग रहा है, फुटग्ने के कुटुम्ब नष्ट कर दिये गये हैं। सुदन्ले जना दिये गये हैं। रेलगाडिया लूटी गई है। यह मन देव दुर्गिपाक है।

विचारशीलो ! फिमी के चमत्कारों को देखकर उधर ही उन्मुख हो जाने की टप मत डालो। हजारों लाखों मनुष्यों में जैसे एक दो जादूगर होते हैं। उमी प्रकार जीव से पन्धे लुये अनन्तानन्त कर्मों में से सौ पचास कर्म-स्फन्ध ही दुग्मी बजाकर बहुत से बुद्ध लोगों में पचना सातिगय फल दिखाते हैं। शेष बहुभाग कर्मतो जीवना थकले में ही स्वसवेद्य सुख, अज्ञान, दुःख आदि फल दते रहते हैं। हाथी क दातो क समान दिखाउ कमफल न्यारे ही हैं, जो कि अत्यल्प हैं। सुना है कि अभी दो तीन वर्ष पहले हरिद्वार के कुम्भ की यात है, एक भूट स्त्री ने गङ्गाजी के अतिशय मी कल्पित मान्यता पर अपने दो

प्रिय पुत्र गङ्गा में उहाकर खो दिय, और रोती कल्पती
गङ्गा जो कोमली हुई चली आई । श्री समन्तभद्राचार्य
आप्त-मीमामा के आदि म लिखते हैं—

उपगमनभायान—उपरादिभिभूतय ,

मायात्रिष्वपि दृश्यन्ते, नातस्तमसि नो महान् ।

कि देवोपाशा आगमन, आकाश में चलना, चमर-
दुलना मिहोमन प्रादि विभूतिया तो मायाचारियों में भी
देखी जाती हैं । तथा शरीर आदि के स्वेदगदितपन आदि
महान् अभ्युदय भी देवों में पाये जाते हैं । तिम रागा
है जिनेन्द्रदेव । आध महान् आत्मा नहीं माने जा सकते
हैं । आत्मा या धर्मके महान्-आध्यायक जो अन्त्यन्तर तन्त्र हैं
वे अन्य ही हैं, स्वानुमन-सव्य हैं । देव के अनुकूल
होने पर उन प्रादि तुच्छ फलों को तो खन्व छोटे मनुष्य
भी दे सकते हैं । गढ़िया बकील या ट्रिस्टर या स्वार्थी
जज ही प्रेरणा होनेपर मुहदमा हो जीत सकते हो, किमी
सेठ या राजासे अथवा अन्याय (चोरी, टाका, ब्लेक) से
उन भी प्राप्त हो सकता है । औपवियो या वेद्यो करके
अथवा खन्व मन्त्र, तन्त्र, आदिक प्रयोगों से पुत्र प्राप्ति
की जा सकती है । गोगमी दूर किये जा सकते हैं । अनेक
मिन्गोर्दष्टि साधु या तारिक या इतर घोषी, महान् आदि
भी कितने ही कार्यों को साध देते हैं, ऐसा लोकप्रवाद है

हुझ भी हो या न हो मुझे यहा यद्द बताना है, कि अपत्य, पित, और उत्तरलोक की वृष्णाको उद्दाने के लिये त्रिलोकेश्वर जिनेन्द्र से भीख मागना अपनी और' उनकी अप्रतिष्ठा (तौहीन) करना है, घामी रोटी के टुकडे के लिये महान् राजा से अनुनय करना शोभा नहीं देता है ।

अष्टसहस्री म लिखा है कि—“यावन्ति कार्याणि तावन्त स्मभावभेदा ” किसी निवचित कारण से जितने कार्य हो जाते हैं वे स्मभाव और शक्तिया उम कारण मे उस्तुभूत टिकी हुई हैं । मृत्ति, मन्त्र, औषधि, यन्त्र आदि से जो कार्य होते दीख रह है उनके कारण ये हैं । हा धर्मात्मा पुरुष इन राग द्वेष वधरु, कर्मबन्ध के प्रकरणोम नहीं फसें । आत्मशुद्धि के प्रस्तावों को अपनावे ।

आज कल अनेक भाई अतिशय सेरो पर ही कुछ कामना खेर जाते है सिद्ध सेरोकी वन्दना ती वे कर्मक्षय या वराम्य का प्रयोजन रख कर ही करते हैं । लौकिक सुखों की कामना या साधना की अपेक्षा कर्मक्षय की अभिलाषा अच्छी है । हम बात को भी वे जानते है कि इच्छायग अतिशय सेरोको यात्रा करना यदि प्रवेशिनाकी परीचा है तो सिद्ध सेरो की भावपूर्ण वन्दना करना अतिम आचार्य परीचा है । अच्छा यही सही, किन्तु भाई क्या अत्र तरु प्रवेशिना परीचा म ही पड़े रहोगे ? वा आगेभी

सरफोगे । देखो धर्म स्वयं एक स्वतन्त्र देव है, श्री अर्हन्त या सिद्धो के समान नौ देवों में एक धर्म भी देव गिनाया है अतः स्वतन्त्ररूप से धर्म आदरणीय है ।

कई भोले भाले जैन आता कह बैठते हैं कि हमारा चित्त धर्म में लगता ही नहीं, उतावरो हम किस प्रकार निष्काम धर्म सेवन करें ? उन द्रव्य धर्मात्माओं के प्रति आचार्य महाराज ने कहा कि रात दिन पाप-पङ्क में निमग्न रहनेसे या आरम्भ परिग्रहकी तीव्र गमनाओं में लगे रहने से मिथ्यादृष्टि आत्मामें धार्मिक भाव जागृत नहीं हो पाते हैं । अधार्मिक प्रपञ्चों से ठमाठम भर रहे अस्तिष्क में धर्म्यक्रिया के लिये स्थान खाली नहीं है । एक जैन कवि ने लिखा है कि काले कुम्भल पर केसर का रङ्ग नहीं चढ़ सकता है ।

कालि दोष से इस युग के किमी किमी धर्मात्मा का हृदय भी निष्ठुर हो जाता है, प्रज्ञा, अज्ञान, परीपह साव हो जाती है, स्वल्प निमित्त मिलतेही अनन्तानुबन्धी जागृत हो जाती है, धर्म सेवन के साथ कुराये बढ़ जाती है । अन्न प्राण है फिर भी रोग में सा लेने पर पिप हो जाता है । जल जीवन है वही विकृत होकर जलोदर बन जाता है । पित्त अग्नि पचाती है फिरभी ज्वर, जीर्णज्वर (दिक) बन बैठती है । वायु प्राण है तो भी वात व्याधि, अधर्मा,

धनुर्मास, पीछाये उपजा दर्ता है। जगत् म अव्यक्त पाप
 ग्नु हो ग् है। नित्य निर्गोत्रिया जीव सैन से कर्ता
 या सहुरा थर्गणशद करता है। या प्रये निन्दन, माया
 वर, दान आदि करता है फिर भी आटा कर्मों को पाघता
 ग्ता है। आपु को निमाग म या अन्त म पाघता है।

रन्पुर ! एन, पृ, गीसायिर, लट, चीटी आदि
 जीवोंने व्यक्त अव्यक्त थये दृष्ट परिणाम होत रहते है।
 ग्नुत से तो स्वमरघ भा नहीं है। उनरी पाप करने की
 इच्छा भी नहीं है। क्या रर दुर्लन्दात्रों की फटकार से
 दुर्भाव उन ग्दते है। अत रतिषय ररमक्त वर्मात्माओं
 को स-ग ठेय धारिक रनना चाहिय।

जिमी जिमी धर्मात्मा म एक दो कदाग्रह (दृठ)
 भी लग बैठ है, व अनगिनार रिषय म भी अपनी मन-
 मानी चलाने है। रतिषय दान करने गले अपना नाम,
 यग, ग्नुत चाहत है। सस्थाओं म दानी अन्वानुमथी
 अपनी ही टेक चनात है। पठनक्रम, समय-निमाग,
 रिद्यालयके नियम रनानेम अपनी दाम थराते हैं रिद्वान्
 तो उनके नोकर ठगे, उनकी चलने नहीं देने है।
 ऐसे धानिकों के रमादाय जिमी जिमी मस्था ने सहोत का
 भी प्रग्ध रिषा है। वस तो यह बात है रि—

काव्येन ह्यन्यते शास्त्र तन्च गीतेन ह्यन्यते ।

गीत कायानुरागेण' सोपि रत्नतिसेवया ॥

ऐसी अनेक मुटिया जैनी मे घुम पडी है अतः राग द्वेष को छोड़कर पावन कार्यों को करो ।

प्रिय पन्धुओ ! हृच्छाओ, आपको, सङ्कल्प, विकल्पों, कपायों को पुरुषार्थ द्वारा घटाओ, इन्द्रिय-लोलुपता को न्यून करा, पुनः घोर प्रयत्न कर आत्मा को स्वकर्तव्यों पर झुका दो, त्रतवारण, इन्द्रिय-विजय, कपाय निग्रह करने पर पिल पडो, भोगो मे अनासक्ति रखी, तुम अवश्य धर्म मार्ग पर आरूढ हो जाओगे । मोठी जीवों को अपनी दिनचर्या बदलनी पड़ेगी ।

प्रातः काल त्र्यम्बूर्त्त या सूर्योदयसे पहिले सीधे करण्ट से उठो, पञ्चपरमेष्ठी का स्मरण करो, सिद्धो का आशीर्वाद तुम्हारे सिर पर है । चौबीस तीर्थकर और विदेह क्षेत्र क विद्यमान बीस तीर्थकरोंका गुणगान करते हुवे नाम उच्चारण करो, पुन शारीरिक शङ्काओं से निवृत्त होकर पश्चिम मुख दन्तधावन और पूर्वमुख स्नान करके उत्तर्मुख शुद्ध वस्त्र पहिनकर देव-दर्शन या देव-पूजन क लिये पवित्र जिन मन्दिर को जाओ, मार्ग मे यो विचार करते जाना कि यह दरिद्रता, धन-सम्पत्ति, कुटुम्ब-परिवार, सुख-दुःख, यश-अपयश, जीवन-मरण सब अज्ञित कर्मों का खेल हैं । पञ्चपरमेष्ठी या शुद्ध आत्मा का ध्यान करना ही उपादेय

है, मानव पर्याय पाकर स्वामात्रि यमोंको धारने के लिये ही मत्त प्रयत्न करते रहना चाहिए। जिन मन्दिरजी में तीन बार "नि सहि" कहते हुये घुमो, देव दर्शन करके विडचिडा श्रम वचलेर हो रहा निकाचित बन्ध भी टूट जाता है।

श्री जिनेन्द्रदेव का दर्शन करतेही कहो कि ह नाथ ! मेरा यात्र यत्न जन्म मफल हुआ, मेरे नेत्र आज सार्थक हुए, जिसे कि ह त्रिलोकी-पूज्य जिनेश्वर ! मैं तुम्हारे दर्शन कर रहा हूँ मेरा मन आज निरवधि सुखी है, जिस से कि मैं आपक गुणोंका चिन्तन कर रहा हूँ। [जिनेन्द्र की विगल, सुन्दर, शान्त मूर्तिको देखकर बड़ा आनन्द उपजता है। तेरहवें गुणस्थान में बालक, कुमार, युवा-स्वयं हैं उगपन नहीं है। तप करते कोई बूढ़ा भी हा गया होय तो बारहवें गुणस्थान के शान्त में परमौदारिक शरीर मन्त्रा से भी उड़कर हो जाता है भुरिया मिट जाती है तीस वर्षका सा पट्टा बन जाता है, फपोल भर जाते हैं चुडापा सर्था नहीं रहता। श्रवण बेलगोल (जैन उद्गी) के ग्राह्यजी की प्रतिमा ठीक उपमान है। मूछ टाढो सर्था नहीं, हा मिर पर बाल हैं सर श्रवण भरने हुये हैं, पिलपिले सिमुडे भुरे नहीं। तद्वत् सुन्दर सुडौल बालक का सा लारण्यमय पुण्ड्रन्त मुख हो जाता है।]

पुन श्रीजिनबिम्ब के सन्मुख शुद्धमात्रो से मन्त्रपूर्वक द्रव्य चढाते जाओ, दो तीन कायोत्सर्ग अवश्य करना अर्थात् धीरे धीरे देर तक लिपे जा रहे सत्तार्दम श्याम उच्छ्वासो मे नौ बार नमस्कार मन्त्रका उच्चारण करो, इससे ममीकरण मिथान हो जाता है उत्कट सगर होता है शब्द गोलते हुये अर्थ पर भी लक्ष्य रखो ।

“चउ कर्मकी त्रेसठि प्रकृतिनाग, आठ पहरकी चौमठ घडिया, मन्त्र जपो नमोकार, समोशरण, आब्दानन, श्री मन्दिर, जुगमन्दिर, श्रीमन्धु, सुरमन्धु, अरह, अर्घ, अक्षत पूजो श्री जिनराज, चिन्तनन, राष्ट्रीय, आधीन, धर्मध्यान, श्रेयासनाथ, जैमी” ऐसे अशुद्ध शब्दो का उच्चारण मत करो, प्रमादवश कर्मबन्ध हो जावेगा ।

हा इनके स्थान पर यथाक्रम से ‘कर्मन की त्रेसठि प्रकृति नाग, आठ पहर की साठिहु घडिया, मन्त्र जपो नमोकार, समोशरण, आब्दान, मीमन्धर, युगमन्धर, श्री मनु, सुरमनु, अर, अर्थ, अक्षत मो पूजो जिनराज, चिंतन राष्ट्रिय, अधीन, वर्म्यध्यान, श्रेयोनाथ, जैन इन शुद्ध पदोंका उच्चारण करो ।

हा कोई स्त्री होय तो वह अपने को जैनी लिखे । जैसे राक्षीगई जैनी सुन्दरी जैनी आदि । किन्तु बालक युवा, वृद्ध, पुरुषों को जैन ही लिखना चाहिए । जैसे कि

ऋषभकुमार जैन, अजितप्रसाद जैन आदि । यदि कोई पुरुष भाग्यवेद से स्त्रीपदी भी होय, तो भी वह कृष्णर अपने को द्रव्यवेद की अपक्षा जैन ही लिखे, पुरुषत्व या पुत्रिगण्य को नहीं छिपाये ।

हम "आज कल जैनियों की दशा ऐसी है घनी है जैनियों में परस्पर कलह है, विद्यायाँ सुमतिप्रसाद जैनी, जिनदत्त जैनी, विगारद पगीचा म उतीर्ण हुआ है" ऐसी अशुद्ध वाक्योंको सुनकर कष्ट होता है कि पुरुषार्थी, जान-घान्, साक्षात् जैन भावा स्वयं जैन होकर जैनी लिखने में नहीं संकुचता है खेद । बहुवचन में जैनों को या जैनों में लिखो । हा जैनी वाणी, जैनीपाता, जैनीभक्ति, सुलोचना जैनी, सीता जैनी ये वाक्य शुद्ध हैं, जैनी शब्दम स्त्रीप्रत्यय टीप् है तद्धित या इन् नहीं । मन्त्रोंका तो अवन्य ही शुद्ध उच्चारण करो बहुत लाभ होगा । अलम् ॥

यदि तुम्हागी भक्ति में शुभराग परिणाम है तो मन्दिरजी में घण्टा बजाओ, धजाये देखो, अष्टप्रातिहार्यों को चित्तारो, सपरसरण विभूतिका चिन्तन करो, जगत् क सुन्दर द्रष्टव्य माने गये खाई सरोवर कोट बगीचा, नाटक-शाला रत्नपुञ्ज आदि सभी पदार्थ सपरसरण में विद्यमान होते हैं ये सब वस्तुभूत हैं कल्पित या इन्द्रजाल नहीं, स्वर्ग से आते हैं । भाषा या मस्कृतम जिनेन्द्रकी स्तुति

पढ़ो जाप देखो, जोडा ध्यानमी करो। स्वाध्यायमे चरणानुयोग को अग्रय्य रखो अन्य अनुयोग भी श्रेयस्कर हैं।

सामायिक अग्रय्य करो इससे बडे जल्दी कर्म नष्ट होते हैं। हा प्रतिक्रमण भी यथायोग्य करना चाहिये किमी विद्वान् या त्यागी महाशय से सामायिक और प्रतिक्रमण की विधि सीख लो सामायिक करते समय मन म अग्रहन्त मित्रों के स्वरूप, गुणों का चिन्तन करो, मन को यहा रहा मत भटकाओ। सामायिक करनेके लिये ऐसी जगह बैठो जहा चित्त के व्याप्तेप के कारण न हो सत्रसे अच्छी राततो यह है कि अपने मनपर ही काबू रखना तुमको किमीने थड जोई ठेका नहीं दे सक्या है कि जो कोई मन्दिर जी म श्राये जाये उमकी पहरेदारी करो जैसे जि निमित्त जानीके कथनानुसार एक राजा ने अपनी लडकी के लिये उलदेव घर को दूढनेके लिये सरोवरपर दो विद्याधर नियुक्त कर दिये थे।

तुमने अपने मन को ऐसा ढीला कर सक्या है कि जो कोई लडका आता है उसको देखने लग जाते हो, कोई स्त्री आती है तो उसके भूपण मुख सौंदर्य आदिको आनखगिख निरखनेके लिये मनको उधर फेर देते हो अपने व्यावहारिक कार्यों में मन को ले जाते हो। मन्दिर म

कोई व्यक्ति तुम्हारी दृष्टि से शोभल नहीं हो पाता है मानु मन्दिर से निकलते ही तुम्हारी कोई परीक्षा लेगा कि मन्दिरमें प्रसूक स्त्री आई थी ? कैसे कपड़े पहिने थी ? आदि । मित्रो ! अपने ध्यान में दृढ रहो यदि कोई भ्रातृ पूछेगी तो तुम उही शैलीके साथ कह देना कि मैं जाप देने में सलक्ष था मुझे कुछ मालूम नहीं ।

थोड़ा ध्यान भी करो यद्योचित पाच दम मिनट के लिये पहिने हुये वस्त्र और शरीर मात्र के अतिरिक्त सर्व परिग्रह का त्याग कर दो ध्यानमें एकाग्र होकर पंचपरमेष्ठी को चितारो आत्मगुणों पर लक्ष्य दो सिद्धपूजा की जयमाला का अर्थ विचारो, त्रिनेन्द्र की आना और कर्मों का फल या लोक—रचनाका चिन्तन करो शान्त मूर्तियों मन्त्रपदों सप्तसरण आदि का स्मरण करो शुद्ध आत्मा में रमण करो ।

मन्दिरजी से लौटते समय धार्मिक पुरुषों की सेवा का भाव लेने आओ—उदनुसार किसी सम्घर्षी को भोजन कराकर पीछे स्वयं मोनन करो । खाने पीने में उचिन श्रद्धि रखो । पानी छाननेका लक्ष्य रखो कर्मभूमि के कुद्या नदी समुद्र यास बरफ में सरदार के सत्री पानी छानने योग्य है । पाच उदुम्बर गोभी यास हींग अचार मद्य मधु का सेवन न करो इन्द्रिय लोलुपता न

करो भोगोंमें आमक्ति न उठाओ । थोडा विश्राम कर
द्रव्योपार्जन के उपाय में लग जाओ ।

आजीविका करते समय अहिमा सत्य अर्चय अवचन
सतोष से काम लो, घोखेवार्जी को हृदय से निकाल दो ।
परोपकारी या साधर्मों भाईसे अल्प नफा लो, आदर से
बैठाओ इससे वात्सल्य अन्न उड़ता है । इस बातको भूठी
करदो कि सर्गफ मुनार वजाज दलाल प्रपने मा बाप से
भी नहीं चुरते हैं । जन पिद्वान् या त्यागी महाशय तुम
को अनर्थ अमूल्य तत्वों का धर्मोपदेश नि स्वार्थ देते
हैं । तो क्या तुम स्वल्प भी लोभ का सवरण नहीं कर
सकते हो ? । साधर्मों के साथ परोपकार के भाव जरूर
रखो ऐसे अन्नमर भी भाग्यसे ही मिलते हैं । गरीब जैनों
का आदर करो । यश को बढ़ाना अच्छा है । कपायों के
दास मत बनो कपायोंही तुम्हारे अन्तरङ्ग शत्रु हैं । इनको
पुरुषार्थ से कम करो ।

देखो अजैनों में तो जैनों के निन्दक भरभूर हैं ही
किन्तु बहुत दिनों से कतिपय जैनों में भी पण्डितों और
त्यागियों की निन्दा करना रोटी-दाल हो रहा है । ऐसा
लिए पिना पेट या मन भरता नहीं है । उन्को ने भले ही
वजाजीमें सैकड़ों मन चरनी लगा कपडा बेचा हो, चादी
सोने में सराफों ने हजारों तोले ताबा गिलैट मिलाया हो,

घनियों ने हज़ारों मा धुने गेहूँ, चावल, गन्ना हाथों से
 नेच दिया हो, माइसार अन्याय-पूरक थनाप सनाप
 थ्याज खा रहें हों, मिल चलारहें हों, ब्लैकगालों ने हज़ारों
 लारों रुपये कमाये हों, वे अमन्य मिथ्यात्व सेवन करें ।
 ऐसे वैश्यों की कोई निन्दा नहीं करता है । पद पद पर
 हिंसा, असत्य, दम्भ, तीव्र कषायों से जिन्दा मन सना
 हुआ है, लोभी लखपति, करोड़पति इनके समापति
 गने हुये हैं । इन परीवादकों ने श्री वीरशामन को धु धला
 कर दिया है । किन्तु यथ पुन-परिवर्तन हो रहा है, शीघ्र
 ही कपट व्यवहार नूर होकर या तो स्फटिकने समान स्वच्छ
 जैनधर्म चपरेगा अथवा जैन धर्मका स्वरूप विंगड कर
 अर्धमैत्र जावेगा “जैन जयतु शासनम्”

धर्मात्मा जनों के निन्दक की मिथ्यादृष्टि समझो ।
 ‘न धर्मो धार्मिके विना’ ऐसे अनन्तानुसन्धी के कार्य न
 करो । थाप पापमय आजीविका से उचे रहो । स्व-प्रशंसा,
 परनिन्दा गत बड़ा पाप है ।

अच्छा और सुनो-धर्म, अर्थ, काम को समयानुकूल
 और परस्पर अविरोध सेवन करो, धन उपार्जन को ही-
 पूर्ण लक्ष्यविन्दु मत मनाओ, आय में से छठे भाग को
 अमर्य वर्म ऋणों में लगा देने का भाव रखो ।

नमस्कारोंक प्रति विशेषतः यह कहना है कि मिथ्यात्व

अन्याय, अभद्र्यका त्याग करो, शुद्ध भोजन करो, दुकान पर ताश, चौपट, मत खेलो, ठलुआ, गप्पी मनुष्यों को मत बैठने दो, शिर खोलकर मत बैठो, जिनेन्द्रोक्त अर्थ पुरुषार्थ के सेवन में विनय रखना आवश्यक है। क्वचित् शिर खोल लेना शिष्टाचार मान लिया है। किन्तु भारतवर्ष में शिर ढरुना उपचार विनय है। इन्द्र, चक्रवर्ती, देव निघाधर स्त्रिया सत्र पगडी, मुकुट, साफा, चादर पहिन कर जिन दर्शन करते हैं। शिरको ढके रहना विनयका कारण है, बङ्गालियों की न्यारी बात है। यदि शिर में अधिक गर्मी हो तो घाल कम रखो, अधिक वालों की अपद्धा पतली टोपी लगाये रहना कहीं अच्छा है, राजवार्तिक में वालों को मलों में गिनाया है। स्त्रियों के समान वालों को काढ़ना या अन्य घना शृङ्गार करना, हर्मी, पिन्तगी करना, चाट, अचार खाना आदि से स्त्रीविद का भ्रान्त हो जाना बतलाया है। वीर पुरुषोचित कार्य क्रम, धर्म, अर्थ, काम, पुरुषार्थों के करने में सत्य, विनय, शील को पकड़े रहो। गृहस्थ के छः आवश्यक पालो, सम्यक्मनों का त्याग करो। सद्वा वीजरु आदि का व्यन्नाय चुग है, तीत्र राग-द्वेषों को बढ़ाता है इनम वाणिज्य का सन्तुष्ट ही नहीं घटित होता है। कुछ दिनों में तीर्थ-यात्रा अवश्य करो, तीर्थोंपर शांति मिलती है। सम्यक् मनाय रखनेका

भाय अथर्व्य स्वप्नो, जैन, जैन-विद्वान्, जैन-त्यागी, और मुनी ज्यों से उत्तरोत्तर निश्चय प्राप्त स्वप्न, भक्ति-भाव बढ़ाते रहो, विश्रामघात, वृत्तमत्वा न करो। हृत्तज्ञ, विनीत जने न्हो पार्षो से डरो। टनुआ या दुराचारी लोगों का सङ्ग न करो, नाटक, मिनेमा, राम, नौटंकी आदि के झगड़ न मत पड़ो। स्त्रियोंको भी न पढ़ने दो, मिनेमा आदि पड़ भयङ्कर हैं इनसे शारीरिक-शक्ति, उचित लोह और घट्टचर्म का पात हो जाता है। डरो इनप पडकर तुम लौकिक सुखोंमें भी वञ्चित हो जाओगे। यदि मदी आदत पड़ गई हो तो शनैः च ठोड़ दो।

धर्म के अलपार, कहानिया, उपन्यासां में अपने मृत्युवात् मस्तिष्क की शक्तिमें बरबाद मत करो, निरर्थक मूल्य विकल्पोंको न उपजने दो। कल्याणदान से आत्मा मृदु होती है। मायकाल को भी थोडा बहुत सामायिक करो। राहको पञ्च नमस्कार मन्त्र पढ़ो, पश्चात् जिनेन्द्र गुण स्मरण का मो जाग्रो, नींद न आये वो बीच में जग जाओ तो राह-भावनाओं का चिन्तन करो, स्तुति पाठ करो, प्रातः काल गीघ उठने के भाव स्वप्नो। शुभ भागों से आत्मा में शुभ शक्तिया प्रकट होती हैं, गद्दी पर लेटे रहनेकी भावनासे तदनुसार वैसे ही गद्दीपर लेटनेवाले बीमार हो जाओगे। क्रोध मान माया लोभ ईर्ष्या-हास्य, इनको

मन्द करो। कपायो को अत्यल्प करना सबसे बड़ा धर्म है। तीव्र राग को उड़ाने वाले और ब्रह्मचर्य को नष्ट करने वाले शृङ्गारी सिनेमा नाटक तथाशों को न देखने की प्रतिज्ञा कर लो, उड़े लाम में रहोगे, चमड़े की चीजों का उपयोग न करो।

जदा तक हो अपने समय पुरुषार्थ और धनको धर्म्य-कार्यों में लगाओ, देखें फिर तुम्हारे भाग धर्म में कैसे नहीं लगते हैं, अवश्य लगेंगे। देखो आत्मामें पाप की अपेक्षा धर्म की जड़ गहरी घुस रही है। अच्छा निमित्त मिलते ही भूट धर्म की बेलि हरी हो जायेगी। वार्षिक श्रावको ! आप उक्त क्रियाओं को करते ही हैं, और कोई कोई भाई इस से भी दशों गुने उड़िया धर्माचरण करते हैं। हा जो जैनकुल तथा पंचेन्द्रियत्व, जिनमन्दिर, विद्वत्पङ्क्ति, त्यागी-सम्बन्ध, यथेच्छ समय आदि योग्य परिष्कार पाकर भी आलस्य कर जाते हैं, उनके लिये मेरा यह धर्म-पालन का प्रावचन है। वे इस क्रम से छ महीने चर्या करेंगे तो अवश्य पक्के धर्मात्मा बन जायेंगे। सर्वत्र ऋग्वेद की मत लगाओ सामायिक, स्वाध्याय, जाप्य, ध्यान, जिन-पूजन, परोपकार, इन्द्रियजय ये मत्र पुरुषार्थ से ही होते हैं।

हा एक रात यह भी मोच लो कि मैं या गाय का

बच्चा घर जानेपर दूधरू बचनेवाले घोसी नरुली चमड़ेसे गने बच्चे को सामन रखकर भंस, गाय को फुमला लेते हैं। यह दम्भ का दृश्य देखकर हम लोग कहते हैं, कि देगो ये पशु कैसे मूर्ख हैं जो कि नरुली बच्चे को अपना बच्चा समझ बैठे हैं। परन्तु हम यह नहीं विचारते कि हम इनसे भी अधिक पोहजाल में फसे हुवे हैं। इसी प्रकार भोजरू गन्धरू लोग गाते हैं 'घन जोघन थर राज्य सम्पदा ये सय है सायन बदरा रे' इत्यादिक रूप से घन, लक्ष्मी, के शौगुन रखानते हैं, अन्य भी दौलतराम जी के वैराग्यमय भजनों को गाते रहते हैं। साथही वकाल किसी भानरू को देखकर पैसा दो पैसा मागने लग जाते हैं, ऐसी दशा में हम उनकी हसी उड़ाते हैं।

भाइयो ! यही अरस्था सभी मूर्खरवान् जीवों की हो रही है। 'ज्या शिष्य नाचत पे नहीं राचत' बच्चा देखा देखी नाचता है गाता है किन्तु अन्तररूसे तन्मय नहीं होता है। जैन भाई भी स्तोत्र, मिनती, पूजन, बुद्ध नीलत रहते हैं और चञ्चल मनुष्या न जाने कहाकी सैर कर रहा है। थव बोलो फल किन परिणामों के अनुसार क्या मिले ? जन कि 'भन एव मनुष्याणा कारणा बन्धमोक्षयो' यह सिद्धान्त है।

जैसे भारलिगी गुनियों से द्रव्यलिगी साधुओं की

सरया अधिक है। तद्वत् श्रावक श्राविकाओं, त्यागी, पण्डितों, श्रोताओं छात्रों, श्रुद्धकों में भी तद्वत्ताओं की सरया विपुल है। सच्चें मुनि वे हैं जो एकरूप मं अन्तर्मुहूर्त से अधिक निद्रा नहीं लेते हैं जगकर भट मा- त्तें गुणस्थान में ध्यानारूढ हो जाते हैं। यदि मुनि चल रहे हैं उपदेश दे रहे हैं भोजन कर रहे हैं तो आधा घण्टा पीछे पाच मिनट स्थिर ध्यान अवश्य कर लें, क्योंकि छठे सातें गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त है। सातें से छठे का इना है मुनित्व छोडकर चौबे में आ जाय तो न्यारी घात है। इसी प्रकार श्रावकमी अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्या- नापरण क्रोधमान माया लोभ का उदय न आने दर्वे, प्रगम, सवेग अनुकम्पा आस्तिस्य रखें। राग-द्वेष अल्प करें अभक्ष्य त्यागें सन्तोष दया दान पूजनका लक्ष्य धारें दूसरों की निन्दा घृणा नहीं करें। हममें अन्यथा प्रवर्तने वाला श्रावकामास है। सस्थाथो धारिण्य परोपकार दान पूजन क्षमा-प्रदर्शन भोजन का आदर किसीकी प्रगसा करना धनिकचाटुकार परस्त्री को न देखना ध्यान मुनि- मक्ति समवेदना दिखलाना इत्यादिक लौकिक पारलौकिक आचार विचारों में भी द्रव्यलिङ्ग भावलिङ्ग के दुष्ट चिपट बैठे हैं। यह कपट काठ की कसैली कम तरु चलेगी ? प्रतिक्षण किमी न किमी वस्तु की वाञ्छा रखने

वाले भाइयो ! आपने पुण्य मचय किया भी कहा है ? आज भी कोई कोई ज्योतिषी या राण्ड-अष्टाग निमित्त ज्ञानी यह बता सकते हैं कि पानी बरसेगा या नहीं बरसेगा धन किस स्थान पर गड़ा हुआ है । चांदी सोना गेहूँ रई अलसी आदि तेज या मन्दे जायेंगे अमुक छहर्त में यात्रा करने से लाभ होगा चोरी गई वस्तु इस दिशा में है । इत्यादि सब बुद्ध होते हुए भी आप एक पुण्य विना लाभ नहीं उठा सकते हैं चाणक्य भी कह देते हैं कि 'सफल पदार्थ या जग मांही पुण्य हीन नर पावत नाहीं' किमी २ घरमें दस-बीस पीड़ीसे धन गड़ा रहता है दरिद्री उम मरान म दु ए नोगता रहता है मरान की चिकी करते ही नाय खोदने समय क्रेता को धन मिल जाता है क्वचित् तो धन बचा देने पर भी नहीं मिल पाया है अब भी इस बसुन्धरा में लाया स्थानों पर पुष्कल-वन गड़ा हुआ है जिनके भाग्य म बदा होगा उसीको मिलेगा । धन्यरुमार चरित्र को पढ़ो ।

जनगुरु पद पद पर उपदेश देने हैं कि इच्छाओं को कम करो पुण्य-अनुसार हाने वाले धन पुत्र आदि मर परिग्रह जैनी तपस्या न विरोधी हैं । जैनों का अन्तिम लक्ष्य यदि मूर्च्छा म कम जाना होता तो तीर्थंकर इस परिग्रह का त्याग नहीं करते । जब कि जैनों की अपेक्षा

अजैनों के पाम आपकी चाहने योग्य चीजें बहुत हैं तब जैन-धर्मके माथ उन पखिड़ोक्री प्राप्ति का कार्य कारण भाव तो नहीं रहा । देखिये पारमी, भाटिया, भार्गव, चौहरे आदि जातियों में धन अधिक पया जाता है यमन आर्यसमाजी ईसाईजनो मे विवाह अधिक होते हैं अनेक अर्गलों के न होने से मन्तान भी बहुत पाई जाती है । प्रत्युत सम्राट, बादशाह, वाडसराय, गजनर, राजा, राष्ट्रपति, हाईकोर्ट के जज, महामचिप अन्य बडे र अफसर, हाकिम बड़िया बकील बैरिटर, महानिद्वान्, चारलर, वाइमचासलर कमाण्डर इन्चार्ज कमिश्नर, डी-आई-जी, आई जी, महामहापाध्याय इत्यादि उच्चपद भी आज किमी जैन को प्राप्त नहीं है । अपितु जैनोंम प्रकाण्ड देशनेता, राजानिक, व्यापारी, प्रकृष्ट वैवाकरण, ज्योतिरिद, मात्रिक-तात्रिक, वक्ता, लेखक, अभिनेता, गणितन, पोत-गणिक, स्थपति, मन्त्र, निषवेत्रमायुयान निर्माता, अर्थशास्त्रज्ञ, अभिरूप, उद्भट-धनाट्य, कलानित् इत्यादि वर्तमान मे कोई उच्च कोटि का नहीं है । छुट-पुञ्जियाओं को कौन पूछे ? तो फिर आप जैन-धर्म की शक्ति से छोटे छोटे मुरुहमा जीतना या तुच्छ मस्तुओं की प्राप्ति के लिये जिनेन्द्र से क्यों प्राथना करते हो ?

श्री जिनेन्द्रने तो यह दुकान पहलेसे ही उठा दी है । सर्गफ की दुकान से मन्दूक मोल लेना चाहते हो जिय कपाय

या स्वभाव का जो जीव होता है उसका ऐसे कप-यवान्
 या तादृश स्वभाव वाले से मेल खा जाता है। हाँ जिनेंद्र
 या उनके अनुयायी जैनोंके यहाँ अथ केवल महा-महिमा-
 न्वित मदाचार आत्म विशुद्धि, सवर, निर्लेश, सदादर्शन,
 मोक्ष-मार्ग ही पाया जाता है। मात्र इनका क्रय-विक्रय
 करो। हय उच्छिष्ट दुःख-मम्यादरु परिग्रहों का नहीं।
 वर्तमान में पुण्य-पाप का फल यथायोग्य होता रहने दो
 इष्ट अनिष्ट जुड़ि मत करो। जब कि अर्म सेवनने निमित्त
 न मत्तिक भावना प्रवाह दूसर ढङ्ग से ग्रह रहा है फिर अथ
 यह अमृता क्यों कर रह हो लात पागे क्षणिक महिम्न
 विभूतिदों पर, तथा साथ ही नाश कर दो उनके कारण
 राम द्वेष विभागों का। कम परिपूर्ण स्वतन्त्रता को प्राप्त
 कर लेने का यही मूलमन्त्र है। हा एक बात है कि
 अतिशय क्षेत्रों पर अनेक दर-देरिया दर्शन पूजन करने
 आते हैं। निमी जिनेंद्र-गुण वत्मल दवने, आपका कार्य
 भी बना दिया यह उचित है। जैसे
 ममन्तमद्रका मनोरथ पूर्णकर दिया
 श्री महागीर जी की स्तुति से ६
 पढ़ जाय नि १ मघ
 प्रीर सर्व ध्य १ ये नियम
 हनारों १ ५१

रहे हैं। यदि ऐसे ही ऐसे गैरे सत्र का कार्य बन जाये तब तो लन्दन, न्यूयार्क, जर्लन, पेकिङ्ग, टोकियो, मिनापुर, पैरिस, कोलम्बो, मुम्बई कलकत्ता, देहली आदि नगरों जैसी भीड़ उन्हीं अतिशयक्षेत्रों पर लग जाती। वष्ट निवारण चाहने वाले या आशावान् स्वार्थोञ्ज करोड़ों अरबों विद्यमान हैं कोई दरिद्र, रोगी, अल्पायु अयुक्त, आजीविकाहीन, विजित, मूर्ख रहने ही न पावे, सभी जीव सम्पन्न, नीरोग, बलाढ्य, ज्ञानवान् यशस्वी, विजेता, परीक्षोत्तीर्ण बन जायें। आर्य-समाजियों द्वारा सत्र, सत्र-शक्तिमान और दयालु माने गये ईश्वर का निराकरण करने वाले जैन विद्वान् इन युक्तियों का प्रयोग करते हैं। खेद, बन्धुओ ! आत्म-कल्याण की ओर झुको निस्तम्भ और त्याज्य अतिशयों का व्यामोह छोड़ो।

जिनेन्द्र की भक्ति से शुभ शुद्धोपयोगों को खरीदो। यदि फिर भी निभृतिया तुम्हारे मन में बसी हुई हैं तो वीतराग की भक्ति का दम्भ छोड़ो, रागी-द्वेषी देवों की उपासना करो। नामजैन या रूपटधारी जैन जनरल अनन्त-सत्कार को उढ़ाना उचित नहीं है। कुमङ्गल पडकर कुछ काल से जैनों में भ्रष्ट-जैनत्व आ घुसा है। उमका परिहार शीघ्र करदो। पीव (मगद) जितनी जल्दी निकाल दिया जाय उतना ही अच्छा है। तपाशा दग्ने की इन्तत

छोड़ो। मित्र ही मतिमन्द पुरख न जाने की गर्त पर ही बर्म छोड़ने को तैयार हो जायेंगे आज पचास रुपये मासिक नौकरी लग जानेकी होड पर अन्य धर्मोंमें खिसरने के लिये तैयार है। हजारों लोग केवल विवाह या प्राजीविता के लोभ से विधर्मी बन चुके हैं। क्या पूछने हो ? अनानी, मोडीजीव, जो कुछ कर बैठे वही धोडा है। एक पाप का दगाजा गुलब हा सनात सदश अनेक पाप पुम प्राते हैं।

आमक्त जीवो ! तुम भक्ति करना भी क्या जानते हो ? श्री ममन्तभद्राचार्य के बृहत् स्वयम्भू स्तोत्र को पढ़ो इनको रतीभरभी विषयों सुखोंकी आराधा नहीं है। सच्ची भक्ति यह है जो कि स्वल्प भवों में मोक्ष की प्राप्ति करा देती है। भक्तामर, कल्याण मन्दिर स्तोत्रोंके भक्तिरस पूरे प्रवाहित पद्योंकी उम्रैछायें, समासोक्ति, रूपक, चरनि, रम, अलङ्कार, श्रद्धा मन्त्रों पर गहरी दृष्टि डालो फिर अपनी श्रद्धा पूर्ण नीम्स भक्त्यामास की नि सारता जान सकोगे। कल्याणमन्दिर में लिखा है कि—

यशस्विनाय भद्रत्रि-सरोरहा

मस्ते त्रिमपि सत्

तन्मे त्वदे

हे भगवन् ! हम तो ये जानते हैं कि भक्ति का फल भविष्यमें कुछ होनेवाला नहीं है। वह आत्माकी तदात्मक परिणति है, जो कि तत्काल निर्मलता कर देती है। वहिरङ्ग कुछ लिया, दिया नहीं जाता है। प्रमाण का साक्षात्काल अज्ञान निवृत्ति है जैसे कि विषयी जीव को इन्द्रियों का भोग फल तत्काल सुख स्वरूप भामता है। फिर भी ह नाथ ! भक्तिका भविष्यफल यदि कुछ है तो हे शरण्य में भक्ति का फल यही चाहवा इ कि अगले भगों में भी तुम्हारी शरण ही ग्रहण करता रहूँ। इस रत्नय से ही मुझे भक्ति मोक्ष प्राप्त हो जायेगी 'मेरे न चाह कुछ और ईश न्नत्रयनिधि दीजे मुनीश' आत्माका ही धर्म और आत्मा में ही फल प्राप्त हो गया, यों बाह्य-फल की कुछ इच्छा मत रखो।

इमं कुरु दृष्टान्त यो समक लीजिये वैष्णवों के यहा ऐमा निषम है कि 'अहरह सन्ध्यामुपासीत' 'नित्य-नैमित्तिके कुर्यात्प्रत्यवायजिहासया' अर्थात् सन्ध्या उन्दन प्राणायाम तर्पण, प्रोक्षण, आचमन, द्वादशाङ्ग स्पर्शन को प्रतिदिन करो, वरने से फल कुछ नहीं मिलेगा, न करोगे तो पाप लगेगा। यों पापाभात्र ही फल हूया 'अकुरन् प्रहित कर्म प्रत्यत्रायेन लिप्यते' देखो माता-पिता अपने बच्चे को पालने शिवित करते हैं, मरने पर सब—स्वार्पण

कर देने हैं। इस क्रिया का फल कुछ नहीं है। यदि माता पिता अपना कर्तव्य न पालें तो अपयश या कुपात्र सन्तान—अन्य दुःख उनको अवश्य मिलेगा।

गवर्नमेन्ट म्युनिमिपैलिटी और पुलिस की नियमित धागड़ों या कानूनों को अवश्य पालो, कानून के पालने से सज्जनों, पण्डितों या प्रजासभ को कोई रायसहादुर भी आई-ई, ओ-री ई, सरनाईट, तर्क-पञ्चानन, पूज्यपाद, महाप्रहोपाध्याय, रादीम-मिह रायमाहवादि कदरिया सन्मान या बीस हजार पञ्चासहजार रुपया इनाम नहीं मिल जाता है हा राजनीति (क्रिमिनल कोर्ट या सिविल कोर्ट) की धाराओं का उन्लघन करा देने से दण्ड अवश्य प्राप्त होगा। दृष्टान्त के एक देश को पकड़ो इमी दृष्टान्त क अनुसार धर्म नहा पालने वालों को दुष्कर्म-अन्य लौकिक पारलौकिक अनेक नष्ट भोगने पडेंगे। हा धर्म-पालन करन से राक्ष-फल कुछ नहीं प्राप्त होगा केवल स्व-सवेद्य अम्पन्तर सुख और कर्मोंका मर निर्जरा हो जाना फल मिलेगा। आप धर्म पर अडे रहो, स्वकीय प्रयत्न से कैवल्य प्राप्त कर परमात्मा उन आश्रीते।

विदेह क्षेत्रों में आठ लाख अठ

कैवल्यज्ञानी विद्यमान हैं।

धर्मानुरागी रन्धुयो ! सध

का परित्याग करो, कोई अपने पेटके लिये आवश्यक आशा सेर अन्न अथवा शीत लज्जा-निवारणार्थ स्वल्प वस्त्र के लिए तो महावीरजी से धन मागता ही नहीं। हा लडका लड़की रिवाह मरान या मौज मारनेका प्रयोजन रखकर अधिक धन मागा जाता है देखो राग-द्वेषमय ये रिवाह मेल मसाला मौज मारना हवेलिया जनाना गरिष्ठ-भोजन सर्वा-आभूषण आदि तुम्हारे हित-स्वरूप नहीं है। ये सब आपके मोक्ष मार्ग को बिगाड देने वाले हैं।

श्री आदीश्वर महाराज ने सब जुटम्य विमन को लात मार दी थी उनके सुपुत्र भरत और गार्हपत्य ने भी परिग्रह का वृणवत् परित्याग कर दिया था आत्म-हितमें लग गये शान्तिनाथ फुलनाथ अरनाथ ने चक्रवर्तीपन की विभूतियों को छोड दिया था। और लग गये स्वहित भावना में। शांतिनाथ चक्रवर्ती के राज्य करने समय अमरग्यात देवोंका अधिपति इन्द्र डारपाल के समान छडी लिये हुवे दरवाजे पर खडा रहता था। उस नौ निधि चौदह रत्न चौरासी लाख हाथी आदि विभूतियों के त्याग का विचार कीजिये। यज्ञदन्त चक्रवर्ती को वैराग्य होते ही उनके महस्र लडकों की प्रशसा करो जिन्हों ने पिता के लाखवार आग्रह करने पर भी चढ रहे यौवन में राज्य विमन को एरुदम छोड दिया तब चक्रवर्ती को विनश होकर छह

महीने के पीते का राज्य-तिलक करना पड़ा क्षत्रिय पुत्रों ने तो पिता से प्रथम ही अष्टकर्म नष्ट कर दिये थे। 'नमोस्तु तेभ्य परमात्मभ्यः' यह है धर्म का प्रत्यक्ष फल। ढाई हजार वर्ष पूर्व बारिपेणने मरी युवावस्थामे राजविभूति और त्तीस सुन्दर स्त्रियों को छोड़कर वैराग्य धारण कर लिया था। पुष्पहाल के समान हम लघु जन व्यर्थमोह कृष्णा मे पड़े हुये हैं। श्री महावीर स्वामी के कह हुये ठोस धर्म व रहस्य को समझो। अत्यधिक आनन्द प्राप्त होगा।

अन्य धर्माचारों से जैन धर्मका मार्ग ही निराला है जैनधर्मी को प्रथम से ही वीतराग देव गुरु धर्मतत्वों की श्रद्धा रखनी पड़ती है आत्मा को परद्रव्य से भिन्न जानना पड़ता है। आटा दाल दूध लहू जल आदि की तीन दिन पाच दिन आदि की मर्यादा को पालना पड़ता है। जैन रात्रि-भोजन त्याग पानी छानना आचार मुरब्बेका त्याग इनका विचार रखता है। जुथा माम मद्य चालित रस की आसखी दरता है। जैन धर्म मे-क स्याद्वाद आकिंचन्य नि वैराग्य सम्बेग प्रशम पाये जाते हैं। किसी दुष्टों को जानसे मार दे-

में तो जिनेन्द्र भगवान् दुष्टों को मोक्ष-मार्ग में लगा देते माने गये हैं। जैनों को ईश्वर-वाद अभीष्ट (पसन्द) नहीं है। शुद्ध आत्म-ध्यान द्वारा म्यागलम्भ से ही मुक्ति होती है। देव, गुरु निर्ग्रन्थ हैं। रागी-द्वेषी देवों के ही स्त्री सपारी, लडका, गहना, कपडा, निग्रह करना हो सनता है कृतकृत्य दिग्गम्भर जिनेन्द्र भगवान के नहीं।

अहिमा उच्चक्रोति की जैन-धर्म में ही है एवेन्द्रिय जीव या चित्रलिखित, मुर्गा, मछली आदि का मारना दोष माना गया है रोग के कीटाणुओं को भी सङ्कल्प से जैन नहीं मारते हैं जब कि अन्यत्र रोगों के कीटों को मार टालने का ही लक्ष्य रखा जाता है नक्षत्र कहे जैन-धर्म की एकएक बात अनुपम रत्न है, अन्यत्र दुर्लभ है। महान् भाग्य से हम जीव ने मानव पर्याय और जैन-धर्म पाया है अतः त्रियोग से धर्म-साधन में जुटे रहियेगा।

बन्धुभ्रा ! जीवों की दया पालना भी श्रावक का मुख्य धर्म है। स्वर्गों में नरकों में त्रिकलत्रय जीव नहीं हैं। इनका मास-स्थानीय पदार्थ प्राप्त है वटा पानी छाना नहीं जाता है हा मध्यलोक में ये पाये जाते हैं। अतः कहा शरदर निगोद है ? कहा त्रिकलत्रय है ? कहा सजी, असजी पचेन्द्रिय है ? कौन धोनिस्थान है ? इन बातों का ध्यान रखो। अचार, मद्य, मास मर्यादा-

चलित पदार्थों का नहीं खाना पीना ये मत्र जीव रक्षा के
 लिये हैं। प्रस्राव, प्रसृष्टाव से प्रचाथो हिमा धर देनेमे
 रक्तमय विगड जाता है। यहा टार्ड द्वीप म जितने जीवित
 द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुर्गिन्द्रिय पञ्चेन्द्रिय आणविक शरीर-
 गरी जीव हैं। या उनर मृत अङ्ग उपाङ्ग हड्डी, मांस,
 चम आदि अत्रय है उनम प्रम जीव विद्यमान है।
 प्रस्रावार्ता भोगभूमियों में भलेही बाहर प्रिचरने वाले लट
 चीटा भीरा आदि विकलत्रय न पाये जाय किन्तु वहां क
 तियच या मानसों में हड्डी, मांस, रक्तमय शरीर म प्रम
 अवश्य हैं। गदर निगोद भी हैं। इनका मांस या रक्त
 प्राप्त नही है। तीघरने शरीर में भी गर्भ, जन्म, कुमार
 गज्य, तपस्या अवस्थाओं में प्रस जीव पाये जाते हैं। हा
 रप्रलान अस्थाम नहीं है। आहारर शरीर, परमौदा-
 रिक शरीर, पट्टी अणु तेज वायु तथा देव नारकियों के
 शरीरोंम न प्रम है, न गदर निगोद है। सूत्रम निगोद
 तो सत्र जगड ठमाठम भरा है उमकी हिंसा होती ही नहीं
 है। यों विकलत्रय और गदर निगोद से रहित हो रहे
 एरेन्द्रिय पट्टी जल तेज वायु कायिर मजीव धातुओं से
 या एरेन्द्रिय में भी रहित निर्जीव आ
 या मुनियों की लौकिक शुद्धि
 मुनि अचित पदार्थ ७

एतान की न्यायी गत है ।

कर्म-भूमि की माननी स्त्रियों क गोपनीय अवयवों में लब्ध-पर्याप्त मनुष्य भी पाये जाते हैं । जो कि स्वाम के अठारद्वय भाग कालमें मरजाते हैं । कभी २ जिनदृष्ट अर-रधाने क्यों का अन्तर भी पड जाता है अर्थात् करोडों अरबों क्यों तक कर्म-भूमि की किसी भी स्त्रीके कक्षा रुचा-वस्तनभाग, नाभि, योनि, त्रिगुलि में एक भी लब्ध अपर्याप्त मनुष्य नहीं पाया जाता है—“सयज सर्गित्”

मुनिराज के पादतल के चर्म में त्रिकलत्रय जीव है और मन्दिर में जडे हुये पत्थर के चक्रामों में पृथ्वीकायिक जीव हैं । पक्कना, ई ट, सीमिन्टम नहीं । यह रयाल रचना कि पृथ्वी कायिक जीव की अगगाहना घनागुल का अस-ख्यातना भाग है यानी मोटर कभ के पीछे जो धूल उडती है उसके एक कणसे भी छोटी है, तर तो पार धरते ही चरण की उष्णता से तथा कठोर पत्थर के दनाम से स्थावर नस हिसा हो जाना अनिर्गम्य है । मुर, जीम, तालु से, उष्ण जल, भोज्य का ससर्ग हो जानेसे यक्वा रगड लग जाने से यों सयमी को भी जीव-मध करनेका प्रसङ्ग आता है । ताली मजाना, चूतड टेकना, चुटकी चटका देना, चलना, मोलना आदि चेशाय भी सायध क्रियाय हैं । किन्तु प्रमाद योग न होने से पापासन नहीं हा पाता है हा अत्यल्प होता

है। "परद्वय जिषद्वय जीवो" "विद्यग्नीचिने लोने" । यह जैन भिद्वात है । हा परमोदारिक गरीम र्थाग आहारक शरीर से यह दोषापत्ति नहीं है इमी ही कारण पण्डित-विशुद्धि मयम गालों को भी चतुर्मास म एक स्थान पर योग धारने का नियम नहीं है ।

आताथो ! आप कल दिपाळ धर्म-पालन अधिक है यश क लिये धर्म-दायों म भी पिपाद सादि क समान पुड दोड हो रही है । बीतगम मगदानके उपासक आज राग-द्वेष के पचढो में ललक रहे है । एक परिचित जैन भार्द ने मुझ से उहा कि पण्डित जी मैं पाचमार अभीष्ट काय-मिद्धि के लिये जिनेन्द्र स्मरण और मगदान की आराधना करके गया, मेरा इष्ट कार्य नहीं मधा । एकरार मैं जिन-स्मरण या नमस्कार मन्त्र बोले बिना ही चला गया तर मेरा कार्य ठीक हो गया- बोलो ऐसे बममे क्या रक्खा है ? । मैंने उन्हें इम चट्टिकोणसे ही पण्डित मगभाया कि पढले अन्तगय कर्मका तीत्र उदय वा । अत कार्य नहीं बना और पीछे के कार्य मे तुम जिनेन्द्र स्मरण करके जात तो वह कार्य और भी अधिक उड़िया सिद्ध होता ।

मित्रवर्य ! कर्मों का उदय रिमी को नहीं छोडता है व मरी जात को मान गये, किन्तु धूर्त-
क कार्य-कारण भाव म वे अन्वय

उठाने में नहीं चूके। परन्तु भर्मात्मा होते तो ऐसी छोटी बात मन पर कभी न लाने, मातृगीगर फिर महावीर का नाम लेकर गये तब मर्षोत्कृष्ट-कार्य सम्पन्न हो जाने पर वे मन्तुष्ट हुये। भाइयो! धर्म इतना कठिन नहीं है कि जितना हम लोगोंने दौवा मान रखा है। विषय-वासना म फसे रहने के कारण कठिन प्रतीत हो रहा है। आपको जब धर्माचरण का आनन्द आ जायेगा, तो आप लौकिक भक्तों में उलझने पर भी नहीं लगोगे, समाधितन्त्र में लिखा है कि—

व्याहारे सुप्तो य, स जागत्यात्मगोचरे।

जागति व्यहारेऽस्मिन् सुप्तश्चात्मगोचरे ॥७८॥

भावार्थ—जो खाना, कमाना, पिनाद करना, भोग, उपभोग, उत्थान-क्रीडा प्रयोग करना आदि व्यवहार के कार्यों में सो रहा है वह आत्मा के विषय में खूब जग रहा है और जो बहिर्लोक व्यवहार प्रकरणां में जागृत है वह अन्तः-आरम्भी जन प्रात्मीय धर्म-कार्यों में गाढी नींद ले रहा है।

जैन भ्रातायो! आप धर्म शास्त्रों का अध्ययन करो 'पुराण-ग्रन्थ से सम्बन्ध अनन्तगुणा बढ़िया है, रुढ़ा समाज मार्ग और रुढ़ा मोक्ष मार्ग? शून्य से एक अङ्क को कितना गुणा बढ़ा कहा जाय। आपके प्रधान 'दर्शन'

है। “मरदुव जियदुव जीवो” “निधग्जीवचिते लोने” । यह जैन मिथ्यात है। हा परमोदारिक शरीर और आहारक शरीर से यह दोषापत्ति नहीं है इसी ही कारण परिहार-विशुद्धि समय मालों को भी चतुर्मास में एक स्नान पर योग धारण का नियम नहीं है।

आतामो ! आज कल दिखाने धर्म-पालन अधिक है यश के लिये वर्ष-गायों में भी विवाह आदि के समान गूड दौड़ हो रही हैं। धीतराग भगवान् के उपासक आज राग-द्वेष के पचडो में ललभ रहे हैं। एक परिचित जैन भाई ने मुझ से कहा कि परिहित जी में पाचवार अभीष्ट काये-सिद्धि के लिये जिनेन्द्र स्मरण और भगवान की आराधना करके गया, मेरा इष्ट कार्य नहीं मथा। एकवार मैं जिन-स्मरण या नमस्कार मन्त्र पोलो बिना ही चला गया तर मेरा कार्य ठीक हो गया- बोलो ऐसे वर्षमें क्या रक्सा है ? मैंने उन्हें इय दृष्टिकोणसे ही बहुत समझाया कि पहले अन्तराय कर्मका तीव्र उदय था। अतः कार्य नहीं मथा और पीछे के कार्य में तुम जिनेन्द्र स्मरण करके जाते तो वह कार्य और भी अधिक बन्धिया सिद्ध होता।

मित्रवर्य ! कर्मों का उन्ध जिनी को नहीं ओड़ता है वे मेरी बात को मान गये, किन्तु धर्म और काये-सिद्धि के कार्य-कारण भाव में वे अन्तराय व्यतिरेक व्यभिचार

उठाने में नहीं चूके। उसके बर्मात्मा होने तो ऐसी छोटी बात मन पर कभी न लाते, सातगीशर फिर महावीर का नाम लेकर गये तब मर्षोत्कृष्ट-कार्य सम्पन्न हो जाने पर वे मन्तुष्ट हुये। भाइयो! बर्म इतना कठिन नहीं है कि जितना हम लोगोंने हौना मान रखा है। विषय-वासना म फसे रहने के कारण कठिन प्रतीत हो रहा है। आपको जब धर्माचरणका आनन्द आ जायेगा, तो आप लौकिक भ्रमों में उलझने पर भी नहीं लगोगे, समाधितन्त्र में लिपसा है कि—

व्याहारे सुप्तो य, स जागत्यात्मगोचरे ।

जागति व्यग्रहारेऽस्मिन् सुप्तश्चात्मगोचरे ॥७८॥

भार्य-जो खाना, कमाना, विनाद करना, भोग, उपभोग, उद्यान-क्रीडा प्रयोग करना आदि व्यवहार क शायों में सो रहा है वह आत्मा के विषय में खूब जग रहा है और जो पहिरङ्ग व्यवहार प्रकरणों में जागृत है वह बहु-प्रारम्भों जन आन्वीय धर्म-कार्यों में गाढी नींद ले रहा है।

जैन आताओ ! आप धर्म शास्त्रों का अध्ययन करो पुण्यग्रन्थ से मन्त्र अनन्तगुणा बढ़िया है, कहा ससार मार्ग और कहा मोक्ष मार्ग ? शून्य से एक अङ्क को कितना गुणा बढ़ा कहा जाय। आपके प्रधान 'दर्शन' तत्त्वार्थाधिगम में सत्रकी उड़ीमारी प्रतिष्ठा मानी है तथा

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य स्वरूप धर्म द्वारा "सम्यग्दृष्टि-
 श्रावकप्रिगतानन्तप्रियोजक" इत्यादि श्रा से दस स्थानोप
 असरपात गुणा कर्मनिर्जरा का होना उतलाया है । पुन
 "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्याणि मोक्ष-मार्ग" इस सूत्रानुसार
 सर और निर्जरा हो जाने पर मोक्ष की प्राप्ति अनिवार्य
 है । हमसे अधिक और धर्म से आप क्या चाहते हैं ?
 त्यागी लोग तो पुण्यग्रन्थ को पसन्द नहीं करते हैं ।

मैं ने एक बार अतिरुद्ध त्यागी प्रभुदयाल जी से
 बातों बातों में यों कह दिया, कि त्यागी जी आप तो मर-
 कर स्वर्ग ही जायगे, एक भयतारी लौकान्तिक हो जाना
 तो कठिन है । वहा आप को अनेक भोग भोगने पड'ग,
 कतिपय दायगनाये मिलगी । औरभी मैंने स्वर्ग की विभूति
 का या सैर सपाटा करने का अभिराम बर्खान किया । उस
 महिमा को सुनकर उन्हो ने नाक, मुह इतना सिकोडा
 जितना कि एक दन दो तोला लाल मिर्च खा जाने पर भी
 नाफ, मुह नहीं सिकोडा जाता है । वे बड़ी कातर
 अरुचिपूर्वक दृष्टि ने मेरी ओर देर तक देखते रह और
 कहने लगे, कि पाण्डित जी हम इन भक्तों का सर्वथा
 नहीं चाहते । कहा यह वैराग्य और कहा वह श्रृ गार ।

श्री समन्तभद्राचार्य, अरुलङ्क देव, नेमिचन्द्र सिद्धा-
 न्त चक्रवर्ती, बडूकर जिनसेन आदि महान् आचार्य कहा

गये और स्वर्गों में आज कल क्या कर रहे हैं ? लौकिक मोज भोग रहे हैं । इनमें से कोई तो निकट में मोक्ष जाने वाले हैं ।

“अद्भुत हरी राम पडिहर चविक चउव तहेय उलभदो ।
सेडिय मयन्तभदो तित्थयरा होन्ति शिगमेण” ।

त्रिलोकेश्वर में सात्यकि पुत्र महादेव को भविष्य चौरीमी में अन्तिम तीर्थङ्कर (अनन्त वीर्य) हो जाना कहा है । ये तीर्थङ्कर पूर्व जन्मों में असंख्य जीवों का उद्धार हो जाने की भावनाएं भावते हैं । ये वैमानिक देवों से आते हैं या प्रथम द्वितीय तृतीय नरक से भी आते हैं नरकों में छ' माम प्रथम इनका दुःख-निवारण हो जाता है स्वर्गों में इनकी माला नहीं घुंझाती है कान्ति और आज्ञाका भङ्ग नहीं होता है

कर्मों को जीतने वाले जिनेन्द्र के भक्तपुत्रों ! आप

प्रश्ना ध्येय उच्च प्रनाइये इम निरुष्ट पचम कलि काल
म हम हीन सठनन, अल्पज्ञानी, मयमहीन, जीव क्या भक्ति
कर सकते हैं ? क्या भाव लगाओगे ? और आप द्रव्य
भी हितना चढाओगे ? थोडासा द्वादशाग-वेता सौधर्मइन्द्र
की सरागभक्ति पर लक्ष्य दीजिये, जो कि महत्प्रनाम या
अन्य स्तोत्रों द्वारा भगवान की भक्ति में तन्मय हो जाता
है, मणियों मोतियों से भरे थाल चढ़ाता है एक साथ
१२॥ करोड राजों के साथ जिनेन्द्र भक्ति के गीत गाता

हैं उनकी यात्रा से अनेक दण्डियों व थराडे नाचते हैं
 मद्रास पर धम मचा कर पुनः शीघ्र पाचों मेरुओं की
 वन्दना कर मुराव पर दूसरा शब्द मिट् रजाता है। इन्द्राणी
 भी वृत्त करती हुई भगवान् के गुणानुवाद गाती हैं। ये
 इन्द्र, इन्द्राणी, कोई पुत्र, यश, सुन्दमा जीतना, आजी-
 रिका लग जाना आदि की चाह नहीं रखते हैं
 नि स्वार्थ हो कर चित्तेन्द्र भक्ति द्वारा मम्यदर्शन को पृष्ट
 करते हैं। मात्र मुक्ति को चाहते हैं तभी तो सौधर्म इन्द्र,
 इन्द्राणी, दोनों ही एक मंत्र लेकर मोक्ष प्राप्त कर लेते
 हैं। यही महावीर पूजा का सचा फल है। एक
 इन्द्र की उम्र में चार कोटा-फोटी यानी चालीस नील
 इन्द्राणिया भ्रम से मोक्ष चली जाती हैं तब इन्द्र नर
 पर्याय लेकर मुक्ति को प्राप्त करता है।

पाठश्रवण ! कोई आश्चर्य न करें सन् १९११ म
 हुय दिल्ली दरबार व समय मेरी आसों दरती पात है
 कि जिस समय सम्राट् पचम जार्ज महोदय न रेलगाड़ी से
 उतर कर देहली मे स्टेशन पर पाव रख्या, उमी समय एक
 सैक्रिन्ड म डेन्लार्य रन्ड्रो की यात्राज द्वारा वादगाही
 सलायी दीगई, साथ ही अनेक तोषो व मगन-भेदी शब्दो
 द्वाग इन्द्रप्रस्थ व्याप्त होगया वा हजारे नजे एक साथ
 गजे थ। सम्राट् व दरबार म आते ही छह ती देशी

राजाओं और ५४ लाख दर्शकों ने युगपत् त्रिनयत्रिया की, यी । शामन द्वारा स्थायतीकरण (कन्ट्रोल) अर्थात् होना चाहिये इससे भी अधिक मन्दूकों, तोषों या राजों के शब्द एकत्रण में किये कराये जा सकते हैं ।

इन्द्र के असुरय देवों पर हो रहे शासन की तो महिमा ही नहीं रुडी जा सकती है । इन्द्र के साथ तीस कल्प वासी इन्द्र, चालीस भवन-वासी इन्द्र, पत्तीस व्यन्तर इन्द्र, तथा अमरुष ज्योतिष्क इन्द्र तथा इनका परिवार अमरुषातासुष्यात ये सब एक साथ पचास नमस्कार, अष्टाग प्रणति, मिर पर हस्त-कुट्पल लगाना आदि क्रियायें करते हैं । पूजन का पद्य बोलते ही जल, चन्दन, अन्न, पुष्प, मुक्ताफल आदि को सब युगपद् चढाते हैं । मोतियों, मणियों के थाल भर भर के चढाये जाते हैं ।

हम चार, सोलह, चौसठ आदमी मिलकर पूजन करते हैं, चारों ओर वेदिथा बना कर ठाठ से विधान रचते हैं तब ही बडा आनन्द आता है, चतुर्मुखपूजन म तो भारी आल्हाद होता होगा, अष्टान्हिका पर्यं म तिसी प्रकार चारों निकायो की असख्य ढनिया देन दो २ पहर चारों ओर के क्रम से नन्दीश्वर द्वीप म जाकर जिनार्चन करते हैं । उस समुदित पूजन क आनन्द को एक चर्म जिह्वा से नहीं कहा जा सकता है । हमने महानगपुर मे

मजान के अवसर पर अन्तिम शुक्रवार को जुम्मा मस्जिद
 के सामने प्रथमी हजार मुसलमानों की युगपत् नमना,
 उठना, पुन अर्द्ध नम होना, हाथों से उल्टी से लगाना,
 घोट्टों से चुपटाना, कान छूना आदि प्रियाय एक साथ
 होती जाती है। अब आप शरभ्य देव, देवियों की भक्ति
 चेष्टा का अनुमान कर लीजियेगा। हम आप भी असत्य-
 वार देव देवियों की पर्याय में हम आनन्द को लूट चुके हैं।
 हा भाव भक्ति नहीं कर सके अन्यथा भव भ्रमण में क्यों
 रहते अनन्तर मुनिनिद्रा धारण कर उपरिम गैवेयक तक
 जा चुके हैं।

यह बात अवश्य है कि मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि देवों
 की अपेक्षा श्रावक या मुनियों की जितनी भक्ति बढ़िया है
 वह उदियापन गन्त्रय की वृद्धि का ही पराडा जायेगा
 अन्य गगद्वेषमय कामनाओं का नहीं। कोई २ तीरारी
 सुब पुरष धरखेन्द्र, पद्मावती, चक्रेश्वरी, ज्वालामालिनी
 ४ माराधन, रत्न या सावना में भी अनुगम करते हैं
 और कुछ लौकिक प्रयोजनों को माध भी लेते हैं किन्तु
 वे सब दुधारी तलवार हैं, इनकी मिट्टि में अरुण्ड प्रद-
 र्चय की आनन्दरसता है। निष्णात गुरओं का हृत्मग
 चाहिये। पहिले महारको ने मंत्रों से शक्ति से जैन धर्म
 की प्रभावना कायी। यदि वे नरनारी, जितेन्द्रिय,

परमविद्वान् भद्राङ्क मन्त्र, तन्त्र शक्तियो से काम न लेते तो स्यात् ही जैन धर्म का अनुयायी आज भारतवर्ष में कोई दृष्टिगोचर होता । यन्त्र, तन्त्र, मन्त्रों में भारी शक्ति है । देव भी अनेक कार्यों को साध सकते हैं इसका मैं निषेध नहीं करता हू । रात्सल्य और प्रभावना के लिये उक्त कार्य प्रशस्त है ।

जगत् में सभी प्रकार के मनुष्य हैं । परन्तु सुष्ठु पुरुषों को उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भन, मारण मन्त्रों के प्रयोग में तो कथमपि नडा पड़ना चाहिये । ये तो सर्वथा निषिद्ध हैं ही । हा काय मन्त्र भी रागरद्दक होने से हेय माने गये हैं । मध्यजोगों ! पवनपस्कार मंत्र का ही आराधन करते जावो । शुद्धमन से निष्काम होकर अपराजित मंत्र को जपा जाय, वह बड़ा भारी पुरुषार्थ है । नमस्कार मंत्र की स्तुति करते हुये कहा गया है कि—

“आकृष्टिं सुरसम्पदा विद्धते मुक्तिश्रियो वश्यता-
मुच्चाट, विपदा चतुर्गति-श्रुवा विद्वेषमान्मैनमा ।
स्तम्म दुर्गमन प्रति प्रयत्तितो मोहस्य सम्पोहन,
पापात्पच-नमस्क्रियाक्षर-मयी साराधना देवता ॥

भावार्थ—नमस्कार मंत्र ही आराधना करने योग्य देवता है वस कर्म क्षय का लक्ष्य रम्यो । श्रावक धर्म या मुनि-धर्म का पारकर मात्र सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और

सम्यक्चारित्र रूप आत्मनिशुद्धि को उद्वाने का प्रयोजन रखती, अन्य सर प्रयोजन रही है वे प्रयोजन उन्ध के कार्य और उन्ध के ही कारण हैं। आत्म स्वरूप रत्नत्रय से उन्ध कथमपि नहीं होता है। अमृतचन्द्रचार्य ने पुरुषार्थसिद्धि-धुपायमें लिखा है -

‘येनाशेन सुदृष्टिस्तेनाशेनास्य उन्धन नास्ति,
 येनाशेन तु रागस्तेनाशेनास्य उन्धन भवति ॥२१२॥
 येनाशेन ज्ञान तेनाशेनास्य उन्धन नास्ति,
 येनाशेन तु रागस्तेनाशेनास्य उन्धन भवति ॥२१३॥
 येनाशेन चरित्रं तेनाशेनास्य उन्धन नास्ति,
 येनाशेन तु रागस्तेनाशेनास्य उन्धन भवति ॥२१४॥

भावार्थ - यह है कि रत्नत्रयस्वरूप धर्मसे पुण्य और पाप निम्नी का उन्ध नहीं होता है। उन्ध तो रागद्वेषों से होता है “मिथ्यादर्शनाभिरतिप्रमाद-कषाय-योगा उन्ध-ह्वय” “जोगा पयडिपदमा ठिदि अणुभागा कमायदो होन्ति” कषाय और योगों के साथ कर्मउन्ध हो जाने का अन्वयव्यतिरेक है। समन्तभद्राचार्य ने कहा है नाशानाद्धी-तमोद्धत फिर ज्ञानसे तो उन्ध क्या होगा मोहरहित अज्ञान से भी उन्ध होने का निवेध किया है। सम्यग्दर्शन चारित्र, तो कर्म उन्ध के प्रदान शत्रु हैं। सम्यग्दर्शन होने के पूर्व ही से सातिशय मिथ्यादृष्टि को अपूर्वकरणा

अवस्था से ही कर्मों की असरयात गुणी निर्जग, स्थिति-काण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात, गुण सक्रमण, होने लग जाते हैं । सम्यग्दर्शन हो जाने पर तो कर्मों की तीव्र कटाकटी होने लगती है । सम्यक्त्व का अचिन्त्य माहात्म्य है, भावों को शुद्ध रखिये ।

क्षपक-श्रेणी में सम्यक् चारित्र के द्वारा बड़े वेग से कर्म बन्ध का नाश कर दिया जाता है । इस युद्ध में सम्यक् चारित्रपरिणामों से हुये कर्मों के क्षय का राजवा-र्तिक में उड़ा अच्छा प्रतिषादन किया है । रत्नघात्मक पुरुषार्थों का जब हम विचार करते हैं तो उमक सन्मुख जीवों के सभी यत्न फीके मालूम होते हैं, एक मल्ल या जज जीवन भर में जितना शारीरिक या मानसिक पुरुषार्थ करता है उममें कई गुने पुरुषार्थ को आत्मध्यानारूढ़ मुनि एक क्षण में कर डालते हैं और उसी प्रयत्न से कर्मों का ध्वंस कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं । यत्न करते हुये यति को कर्म क्षय करने में भारी यकान हो जाती है अत आचार्यों ने वीच २ में प्रियाम ले लेना कह दिया है । जिन वाणी में उक्त सम्पूर्ण सिद्धान्तों का स्पष्ट निरूपण किया गया है । अथ निकृष्ट कषाय और योगों का त्याग कर समीचीन धर्म पुरुषार्थ में मलग्न हो जाना तुम्हाग काम है ।

एक ग्रामीण दृष्टान्त है कि एक आतुर तत्काल

विवाहित पुरुष किसी ज्योतिषी परिदत्त के पास जाकर पूछने लगा कि महाराज मेरे पुत्र क्या होगा ? ज्योतिषी ने पचास देसकर कह दिया कि तुम्हारे दो वर्ष पश्चात् पुत्र जन्म होगा, उस घर आते ही वह पुत्र के लिये धन उपार्जन की आवश्यकता का अनुभव कर देशान्तर की चला गया। दो वर्ष में पुष्कल धन पैदा कर घर लौटा, स्त्री से पूछा कि लड़का कहाँ है ? वह बेचारी लज्जावश चुप हो गई, दीढ़ा हुआ ज्योतिषी के पास गया और फटकारने लगा कि तुमने दो वर्ष पीछे लड़का होना कहा था मैं उमी दिन देशान्तर को धन कमाने चला गया था आज आया हूँ किन्तु अभी तक लड़का नहीं हुआ, तुम्हारा शास्त्र झूठा है। परिदत्तजीने टका सा उत्तर दिया कि तुम हमारी बात पर ही रहे कि उस के लिये गाठ का कुछ पुर्यार्थ भी किया, भाई पुर्यार्थ बिना देव और दैव भी, बेचारे क्या करे ? दो का योग है।

रत्नत्रय के तीनों गुण एक से हैं फिर भी इस युग के जैनों में निश्चय सम्यक्त्व और ज्ञान का इतना आदर नहीं जितना कि व्यवहार चारित्र्य का है बेचारे तत्त्व ज्ञान की तो धनक कारण भी रलाघा नहीं। विचारक बन्धुओं जैसे “चारित्तं खलु धम्मो” अलापत हो जैसे “दो दसणमूलो धम्मो, तम्हाणाम हि सुद्धत्त्वा” ऐसे भी अनेक कुन्दकुन्द

वाक्य है। जैनातिरिक्त सभी सम्प्रदायों में ज्ञान का इतना निरादर नहीं 'जो जैमा करेगा जैमा भरेगा'। अत्र ठोस विद्वान् उपजना ही उन्द हुआ जाता है। विद्वान् गुरु के विना कोरे स्वाध्यायकर्ता का ढोंग बना कर चालीस वर्ष तक पहली कक्षा में विद्यार्थी ही बने रहो अच्छे स्वाध्यायी तो मौ में पाच है। चारित्र-गारियों का भी नान-प्रचार में योग क्रम है। पण्डितजन अपनी दुपची उजाये जायों जत्र तरु निभे तपी तरु सही। आजकल जैनों को जैन विद्वान् का वेतन भी खटकरता है, पण्डित ने वेतन ले लिया मानो तीमरे नकर जाने का घृणित कार्य कर दिया, क्योंकि एक लाख का माल एक रुपये में बेच दिया यह अपराध क्रिया। जत्रकि अन्य सम्प्रदायों में ज्ञानका मृत्य सौ गुना है तत्र जैनों में मौमें भाग है। विगेषज जैनों और अजैनों के ज्ञान में अत्रिभाग प्रतिच्छेदों को तोलिये तत्र आपको सिद्धात मर्मज विद्वानोंकी व्युत्पत्ति का पता चलेगा। क्षत्रिय-वृत्ति के लोगों से तुलना, डाडी मारने वालों से नहीं। कृतिपय त्रैयों को तो व्यसन व्यय, और व्यर्थ व्यय के मामले पण्डितों को रुपया देने में व्यर्थ व्यय दीर रहा है। उचट में मद भी नहीं है। यश तो गृहस्थ पण्डितों को मिलता नहीं।

देखो तीम करोड पैप्यों में दो करोड जाक्षण ।

विवाहित पुरुष मिमी ज्योतिषी पण्डित के पास जाकर पृष्ठने लगा कि महाराज मेर पुत्र कब होगा ? ज्योतिषी ने पचाग देखकर कह दिया कि तुम्हारे दो वर्ष पश्चात् पुत्र जन्म होगा, वस घर आते ही वह पुत्र के लिये धन उपार्जन की आवश्यकता का अनुभव कर देशान्तर को चला गया। दो वर्ष में पुष्पल धा पैदा कर घर लौटा, ली से पूछा कि लड़का कहाँ है ? यह बेचारी लज्जावश चुप हो गई, दौड़ा हुआ ज्योतिषी के पास गया और फटकारने लगा कि तुमने दो वर्ष पीछे लड़का होना कहा था मैं उमी दिन देशान्तर को बन कमाने चला गया था आज आया हूँ किन्तु अभी तक लड़का नहीं हुआ, तुम्हारा शास्त्र झूठा है। पण्डितजीने टका सा उतर दिया कि तुम हमारी बात पर ही रहे कि उस के लिये माठ का बुद्ध पुरुषार्थ भी किया, भाई पुरुषार्थ बिना देव और दैव भी बेचारे क्या करे ? दो का योग है।

रत्नत्रय के तीनों गुण एक से हैं फिर भी इस युग के जैनों में निश्चय सम्यक्त्व और ज्ञान का इतना आदर नहीं जितना कि व्यग्रहार चारित्र्य का है बेचारे तत्व ज्ञान की तो धनके बराबर भी श्लाघा नहीं। विचारक बन्धुओं जैसे "चारित्तं खलु धम्मो" अलापते हो वैसे ही दसलामूलो धम्मो, उम्हाणाख हि सुद्धत्त्वा" ऐसे भी अनेक कुन्दकुन्द

क्य हैं। जेनातिरिक्त सभी सम्प्रदायों में ज्ञान का इतना
 रादर नहीं 'जो जैसा करेगा वैसा भरेगा'। अत्र ठोस
 ढान् उपजना ही मन्द हुआ जाता है। विद्वान् गुरु के
 ना कोरे स्वाध्यायकर्ता का ढोंग बना कर चालीस वर्ष
 ह पहली कक्षा के विद्यार्थी ही बने रहो अच्छे, स्वाध्या-
 तो मौ मे पाच हैं। चारित्र-वारियों का भी नान-प्रचार
 याग क्रम है। पण्डितजन अपनी ढपनी बजाये जाओ
 व तक निमे तमी तक मठी। आजकल जैने तो जैन
 ढान् का वेतन भी सटकता है, पण्डित ने वेतन ले लिया
 तो तीमरे नरक जाने का घृणित कार्य कर दिया, क्योंकि
 ह लाख का माल एक रुपये में बेच दिया यह अपराध
 या। जनकि अन्य सम्प्रदायोंमें ज्ञानका मूल्य सी गुना
 तब जनो में मीमें भाग है। त्रिपेश जैनों और अजैनों
 ज्ञान क अत्रिभाग प्रतिच्छेदों को तोलिये तब आपको
 द्वात-मर्मन विद्वानोंकी व्युत्पत्ति का पता चलेगा। चरिय-
 । के लोगों से तुलना, डाडी मारने वालों से नहीं।
 तब पैग्यों को तो व्यसन व्यय, और व्यर्थ खर्च के
 नि पण्डितों को रुपया देने में व्यर्थ व्यय दीस रहा है।
 ट म सट भी नहीं हैं। यश तो गृहस्थ पण्डितों को
 ता नहीं।

देना तीस करोड़ वैष्णवों में दो करोड़ ब्राह्मण

पण्डित हैं। दम रगोड यरनो म चालीग लाम मौलमी
 हैं तभी इनम स्वपत की अटूट थदा वनी हुई है। इन क
 हजारों विद्यालय, मदरसे हैं। गृहस्थ जन बड़ी शक्ति से
 गृहस्थ पण्डितों या मौलवियों की तन मन धन से सेवा
 कर रर को कृतार्थ समझते हैं, गिन्तु धीम लार जनों म
 छोट बड़े पाच मा पण्डित भी ररक रहे हैं। अपनी
 अध्यापन-आर्जापिना से उगम होरर वे दूमेरे ध्यरमायो
 मे ररमकते जा रहे हैं अतएव अपनी सन्तान को धार्मिक विद्या
 नहीं पदा रह है। अभी तो हजारों पण्डित नरीन वने तर
 कही वैष्णव यरनो के अनुपात से जनों म श्रद्धान, ज्ञान
 क्रियायें डट पाव। वस्तुत पण्डित ही थदा (मम्पन्व) को
 स्थिर रख सकते हैं मोहरक वन नई। तभी तो वैष्णवों म
 वेदों की, ईश्वर की भारी भक्ति है। यरनो म अन्लाह
 श्रद्धान दीन, ररभ्रावृत्व बहुत बदा हुआ है। आज कल
 क धाताररण को दखर अनुमान होता है कि धुरन्धर
 विद्वानों के न होने से अन्पसरयक समाज बहु सरयको
 मे गरु हो जायेंगे, कुछ हो भी चुके हैं। धिग् दु पमा
 कालरात्रिम् (विद्वद्वय आशाधरजी)।

जैनोंम हजारों धन-शक्ति हैं वे एर दो विद्वानों को अवरय
 रखैसे कि सर सेठ हुमुमचन्द्र जी, सर सेठ मागचन्द्र जी ला०
 प्रधुनन्मुमार जी कई विद्वानोंको रखते हैं। जैनों मे अभी

हजारों पाठशालायं सुनने की आवश्यकता है तभी रत्नत्रय धर्म व्यापक हो सकेगा ।

अन्धे जैन विद्वानों के रखने से ही बनिफो या स्थानीय पचायत का धर्मपालन अक्षुण्ण बना रहेगा तभी मन्तान प्रतिमन्तान तरु यह लक्ष्मी परम्परा अनुस्यूत रही आवेगी 'पुण्यानुमारिणी लक्ष्मी, कीर्ति दर्शनानुमारिणी।

अभ्यासमारिणी विद्या, बुद्धि, कर्मानुमारिणी ॥

इस नियम को पक्का ममको । धर्म विना ये भोग या लक्ष्मी चिरकाल तरु नहीं टिक पावगे । इसके उदाहरणों की प्रति दिन भ्रमण दीख रही है ।

यह श्रद्धा ज्ञान चारित्र की न्यूनता जो हा रही है उस का उत्तर दापित्व जैनो पर ही है । जो स्व का आडर नहीं करता है वही निज-वर्ग का घातक है । जेनों में कलाश्यों का कुछ आदर है, पाण्डित्य का नहीं । जितना बड़ा विद्वान् होगा उतना ही अधिक उमका निरादर होगा, अधिक मजूरी भी करनी पड़ेगी तब मामान्य स्थिति का गृह-निर्वाह होमकेगा । सागरका "न्यायोपात्तधनः" प्रथम गुण है अर्थ पुरुषार्थ है, जो कमाते नहीं वे पौरुषहीन हैं अन्याय से उपार्जन भी निषिद्ध है ।

अधिगत-परमार्थान् पठितान् मात्रमस्था.,
वृणामि च लघु लक्ष्मी, नैव तान् सरुणद्धि ।

मधुसर- मदनैराम्लान, - मण्डम्यलानाम,

न भवति विगततु-रगिण वाग्दानाम ॥

मर्तुद्धरि-जो कि पीछे से अपने घट भाई श्री शुभ-
चन्द्राचार्य के उपदेश से पाग्ल मिद्धि जो स्नात मार पर
दिगम्बर मुनि होगय थे । "नमोस्तु स्नत्रयाऽगमगुण्य ।

पुत्र कलिकातरा भी दोष हैं सालरी मिद्धातप्पारया
यह है कि "द्व्यपरिग्रह स्वो जो मा फलो दवइ ययहारो"
गीत, उष्ण र्पा आदि अतु-परिवर्तन, नियत कानों में
न्यायी २ आम, अमरुद, रुडा, इपली, आयला लुकाद,
आलूपुखार, रेला चम्पा, गत की रानी आदि वनस्पति-
यों का फलना फलना, नियत काल म रुतों गर्धों को
यौवतोन्माद आना । गेहू, चना, मू ग आदि धान्य का
नियत समयों पर ही उपजना यह मर कुय व्यवहारवालों
क कार्य हैं । फाल द्वारा जीव पुट्टल यानी ममारी आत्मा
वायु भूमि, जल आदि म अनेक विभार परिणाम होते रहने
हैं । कारण के पेट में घोर कर सद् भूत शक्तिपा घृ म दी
जाती हैं तर वे रायों को उत्पन्न कर्त हैं । बिना ढाटे
कौन कार्य कर । जीव पुद्गल द्रव्यों का विभिन्न परिवर्तन
ही तो व्यवहार काल है । ऐसा श्री नेमिचन्द्र मिद्धान्त
चक्रवर्ती ने कहा है । मुख्य काल क घतना कार्य द्वारा
यह कारण द्रव्यपरिवर्तन-स्वरूप व्यवहार काल विशिष्ट

कार्यों को करता रहता है। बहुत से कार्य तो आप के ज्ञान गम्य भी नहीं है। यो इस निकृष्ट काल में शिष्ट मानव क्लेशपन्न है। सज्जनो का अन्यद्वारा दुःखापहरण न्यून हो चला है।

भातृवर ! लगे हाथ इस बातका भी निर्णय कर लो कि जैन सिद्धांतों में कोई अतिशय ठोस कार्य कारण भाव से खाली नहीं है। मज्जला या पृच्छ से मनुष्य उत्पन्न होजाना ऐसे पोले कार्यकारण-भावहीन चमत्कारो को स्वीकार नहीं किया जाता है। बीज बिना अकुर नहीं उपजता है चाहे स्वर्ग हो या नरक हो, भोग भूमि हो, मोक्ष स्थान भी हां या प्रलय हो चुका हो निमित्त नैमित्तिक भाव का भग नहीं होना चाहिये प्रलय काल में अनेक बीज या मनुष्य स्त्री, घोडा घोडी, चूहा चूही, कनूतर कनूतरी, नौला नौली आदि जीव देशांतर में चले जाते हैं पुनः आ जाते हैं। देव त्रिधाधरभी इनको ले जाते हैं गर्भज घोडा हाथी गाय, मम, लडका लडकी कभी माता पिता के संयोग बिना नहीं जन्म ले पाते हैं। तीर्थङ्कर भगवान् के गर्भ, जन्मों में करोडों रत्नों की वर्षा होती है। लम्बी चौड़ी नगरी बनाई जाती है। स्वर्ग से भोज्य सामग्री, वस्त्र, भूषण आते हैं। वैश्व ज्ञान होजाने पर सम्प्रसरण उनाथा जाता है। उस में कोट, खाई, जलमयी धाराडिया, ध्वजायें, उपवन, रत्न-

गज, शूद्र मछली सेभी मोती उपजे सुने जाते हैं। इनको इन्द्र
अहमिंद्र नदी उना सकता है। नकलीको कौन पूछे। ईश्वर-
वाद को मत फैलाओ।

प्रिय विचार शील ! दूध वाले दूध भी होते हैं।
कोई देव जगली गाय भैंसों से भी दूध प्राप्त कर लेता होगा।
कोई अशक्य नहीं जातिसे अवगम करो, नियत दीन योनि
कुलों को न भूलो।

हजार योजन मोटी चित्रा पृथिवी से नीचे और नि
न्यानने हजार चालीस योजन ऊंचे उठ सुदर्शन मेर से
ऊपर मानव शरीर या गाय भैंस घोंडे नहीं जा सकते हैं।
किन्तु स्वर्गों में या भवनवासियों के यहा दूध मोती रत्न
गोहू तो यहा से ले जाये जा सकते हैं। 'अमम्भयद्वाघस्त्वात्
सत्वसिद्धि' वाधक प्रमाण न होनेसे पदार्थका सद्भाव निद्र
हो जाता है। यां यवार्थ सञ्भूत हो रहे समस्त जिन
नगरी जिनेन्द्र पूजा द्रव्य को अपने निश्चय में रखो।

कल्प वृक्ष भी परिमित नियतजीवोंको ही देसकते हैं।
तभी तो महापुराण में लिखा है कि कालक्रम से कुलकर्णों
के समय कल्प वृक्षों की शक्ति मन्द पड़ गई थी। ला०-
प्रद्युम्नकुमार जी के वाग में २५ वर्ष में हमारे देखते अनक
आम्र-वृक्ष फल फूल कम देने लगे हैं। किमी पेड़ पर तो
मात्र चार छद् ही आम लगते हैं। इसी कारण अनरु वृक्ष

भी न पाया। ये कार्य ठीक है नरनी (निम्न) नदी।

अमेरिका का ६४ मिनट का प्रायः, कच्छ में
 हुगली नदी पर बीच में खम्भा टिपे बिना २०० मी मज
 लम्बा बना पुन, या आरू के मन्दिर के मर कार्गंगे ने
 ही बनाये हैं रिमी बाजीगर ने नदी दिना टिपे हैं। एक
 पहने म बनने योग्य पुल टिपे टागर का टागर निम्नने
 के लिये अत्यावश्यक हो रहा लार्डर ३६ जीनियर ने एक
 दिन में बना दिया था। कुत, प्रमत्त बाटमगय लार्ड
 हाटिप ने उम कार्गंगे को बहुत उदाहरण टपादि दी थी।
 गुणों और कृताओं का आदर न करने से न टाले किन्ने
 रत्नाय भारत से नष्ट हो चुकी है। यम अर अनुनाप
 करते रही। अच्छा मुनो हगों में नदी, परत सुगार, बन
 उरान, अकृष्ट-पच्य घान्य, फल फल, धुव, वनमानिपून, दृष्ट-
 दुग्ध वास्तविक होने हैं। भ्रमोंमि गाथ, भंग बदरी टिपे अथ
 जीव नदी है। यहा भी परनों, जंगलों में लागों रनम्प-
 तिया, थापधिया बिना खेत जोते धोरे, अपने नियत जीनों
 से उपजती निनशती रहती हैं। मजे ही टनरा टपयोग
 नदी होये। कमठकर टप ने मगपान पाप्यनाथरु टप
 पृथगलोसे मने हुये मेह, मिजली, धनपोर गट थादि वस्तु-
 भूव पदार्थों से उपमर्ग किया आ-डा अचिन् मनु-प-मृ-ट-
 माला, मुग से थाय २

गन्ध, शूकर मछली सेभी मोती उपजे सुने जाते हैं । इनको इन्द्र अहमिद्र नहीं बना सकता है । नकलीको कौन पृच्छे । ईश्वर-वाद को मत फैलाओ ।

प्रिय विचार शील ! दूध वाले वृक्ष भी होते हैं । कोई देव जगली गाय भैसों से भी दूध प्राप्त कर लेता होगा । कोई अशक्य नहा ग्रातिसे अवगम करो, नियत बीज योनि कुलों को न भूलो ।

हजार योजन मोटी चित्रा पृथिवी से नीचे और नि-
न्यानयै हजार घालीस योजन ऊंचे उठे सुदर्शन मेरु से
ऊपर मानव शरीर या गाय भैस घोड़े नहीं जा सकते हैं ।
किन्तु स्वर्गों में या भवनवासियों के यहा दूध मोती रत्न
गोहू तो यहा से ले जाये जा सकते हैं । 'असम्मनद्वाधकत्वात्
सत्त्वसिद्धि' वाधक प्रमाण न होनेसे पदार्थस्य सद्भावमिदं
हो जाता है । यों यथार्थ सद्भूत हो रहे सम्बसरण जिन-
नगरी जिनेन्द्र पूजा द्रव्य को अपने निश्चय में रखो ।

कल्प वृक्ष भी परिमित नियतबीजोंको ही देसकते हैं ।
तभी तो महापुराण में लिखा है कि कालक्रम से कुलकरो-
के समय कल्प वृक्षों की शक्ति मन्द पड गई थी । ला०—
प्रद्युम्नकुमार जी के चाग में २५ वर्ष में हमारे देखते अनेक
आम्र-वृक्ष फल फूल कम देने लगे हैं । किसी पेड पर तो
मात्र चार छद् ही आम लगते हैं । इसी कारण अनेक वृक्ष

काट दिये जाते हैं ।

गुरुवर्य न्यायवाचस्पति स्याद्वादगारिधि महाविद्वान्
प० गोपालदास जी ज़रिया कहा करते थे कि पहिले कल्प-
वृक्ष ये ही जनस्पति-कायिक आम अमरुद केला से
नास नासपाती अनार के ही वृक्ष ये जो कि अनादि अनंत
बीजाकुर परम्परा से जनित जन्यमान जनिष्यमाण है ।
ये ही भोग-भूमि काल में योग्य खाद्य दीपक दत्त चाजे
घर वर्तन भूषण दे दिया करते थे सो ठीक जचता है । मेरे गुरु
प० गोपालदास जी थे इनके गुरु प० बलदेवदास जी
आगरा थे इनके भी गुरु छत्रपति थे आगे की गुरुपरम्परा
ज्ञात नहीं हो सकी अस्तु उद्भट पण्डित भी आदेश देसकते
हैं । इन कल्प वृक्षों को प्रथम, द्वितीय, तृतीय कालों में पट्ट-
कुलाचल के कमलों या जम्बूवृक्ष के समान पृथ्वीकायिक
मान लेना पुन चिरस्थायी रत्नमय न मानकर काल दोष
से इनका क्षय स्वीकार करना असह्य त्रिष्ट कल्पना है ।
हा देवों के यहा अधिक से अधिक दस हजार वर्ष की उम्र
वाले जनस्पति-कायिक तथा चिरकाल-स्थायी पृथ्वी
कायिक दोनों जाति के कल्पवृक्ष हैं । (सुरपुष्प-वृष्टि)
“मन्दारकुन्दकमलादिवनस्पतीना पुष्पैर्यजे” ।

जगत् के सभी पदार्थों में परिमित शक्तियाँ हैं । अम-
र्यादित नहीं । चक्रवर्ती सब याचकों को किमिच्छक दान

देकर 'कल्पद्रुम' पृजन करता है इस पूजा में आज कल की
ए कल्याणक प्रतिष्ठा से भी मैकहों गुणा विधि ३३ विधान
प्रिया जाता है । यहा वाञ्छकों को योग्य देय पदार्थ ही
घाटे जाते हैं चक्री अपनी स्त्रिया, माम्राज्य, चौदह रत्न, नौ
निधिया नहीं दे टालता है मन्नाट् इन वस्तुओं को दे भी
नहीं करता है ।

विचार ! इसी प्रकार कल्पद्रुम भी कार्य कारण भाव
का अतिक्रम नहीं कर स्वयोग्य परिमित वस्तुएं देते हैं ।

भोजन भाजनाङ्ग वादित्र गृह दीप भूषण वस्त्र वाहन
अङ्ग आदि दस प्रकार के कल्पद्रुम माने गये हैं । ये बने
रनाये खीर कलानद पिस्ता की लौज मोतीपाक इमरती,
मसालेदार तरकारी चाट रिम्फुट आदि, रिपनदान घाय-
सैट रुमेंडी रुन्ईदार अटोगदान चमचा घुरादागदी गिलास
स्टोग आदि, गामोफोन रेडियो प्याना हारमानियम सारङ्गी
बला सितार आदि, ताजमहल होटल चीन की दीवाल रि-
डला मन्दिर आरू क जैन मन्दिर अजमेर के सोनी जी
की नमिया कुतुब मीनार आगरा फोर्ट चितौरगढ़ आदि,
मर्चलाइट फलटलाइट गैम हन्डा लालटेन फानूम आदि,
हुस्मी, नैरुलैम, आर्मलेट, मोहनमाला, वैट ऐण्ड वाच,
दम्तरन्द छद्म, गज्जर, जजीर, पाजैय, अनोखे आदि, कोट,
पागसी घालर, छटर, अचरन, फैन्ट कैप, कमीज, चास्कट,

अगरसा, ग्वालियरी पगडी, जोवतुगे साफा, गाधो टोपी,
जरी का दामन, माडी, मिलनार, फिराकू आदि, ग्थ चौ-
कडी, मोटरकार, पेट्रोलवायुयान, साईकिल आदि तथा
आचार्य परीक्षोत्तीर्णता, टीलिट् मी पटवी सर राय बहा-
दुर को उगारिया, पूरे जन्तुद्वीपका साम्राज्य अपनी स्वर्ग
प्राप्ति, गनु को नरक भेज देना, लडकी का लडका बना
देना प्रभृति कर्तृदैव जन्य कार्यों को वे कल्प वृक्ष नहीं दे
सकते हैं। आप इन वस्तुओं को लेने की आपक न करें।
आपकी प्रेम्मा न्यर्थ जायगी। हा वृक्षोचित, खाद्य, मादक
पेय, भाजन, वसन, घा, भूषण आदि की प्राप्त कर
सकते हैं। परोक्ष पदार्थों का विगेष अध्ययन प्रत्यक्षज्ञा-
नियों से करें। मैं तो आगमदृष्ट या गुरु-परम्परा-श्रुत
विषय को ही कह सकता हू। विगेष ज्ञानी अविश्व प्रकाश
टोलें मुझे कोई हठ नहीं है। आगम और सद्बुक्ति का
लक्ष्य रसियेगा। कुतर्क, कुत्रोध, उपहास करना पाण्डित्यमे
रहिभूत क्रिया है। श्री प्रभाचन्द्र आचार्य ने तो प्रमेय-
कमलमार्तण्ड की आदि में लिखा है कि—

त्यजति न रिदधान कार्यमुद्विज्य धीमान्,

सलजनपरिवृत्ते स्पृष्टते म्मिन्तु तेन।

सलजनों के वर्तवि से उद्वेग में प्राप्त होकर बुद्धि-
मान् पुरुष कार्य को छोड़ नहीं देता है किंतु कार्य करने की

अधिक स्पर्धा करता है ।

श्री आदीश्वर महाराज के दीक्षा ले चुकने पर राज्य मागने के लिये आये इनके माले नमि, विनमि को धरणेन्द्र ने विजयार्द्ध का राज्य दे दिया था यानी रजताद्रि के तत्कालीन छोटे २ राजाओं को धरणेन्द्रने स्वशक्ति से दया दिया, ममम्हा दिया, किसी शक्ति को दण्डित भी नर दिया । जैसे कि चमरन्द्र अनेक उदण्ट कल्कियों को वज्र आयुध से मार डालता है । यों सब राजाओं के ऊपर नमि-विनमि को दोनों शरणियों का महाराजा बना दिया । क्या हुआ ? आज भी छोटा राज्य देने में ऐसा किया जा सकता है, किसी २ महाराजा ने किया भी है । जयपुर के महाराज माधवसिंह जी की जीवनी पढ़ो । अन्य धरणेन्द्रने जिन-भक्ति पर प्रमत्त हो कर रावण को अमोघ शक्ति राण (राज्य) दे दिया । अर्थात् अनेक दविया उसके वश म थीं । शक्ति की अधिष्ठात्री देवी को रावणके प्रहार कार्थार्थ निपुक्त कर दिया । ये सब धरणेन्द्रकी शक्ति के मी-तरक काय है । नाग लोक का राज्य तो किसी को भी नहीं दे दिया था । किसी को सौधम इन्द्र तो नहीं बना दिया नमि विनमि को अपने मनो म ही ले जाता । आस्ताम् ।

गन्तुयो—यह रयाल रयना कि देव या इन्द्र सम्प-
गृष्टि इन सिधई, मगई सिधई, श्रीमन्तोसे नद कर रबमय

विम्बों को स्वर्गीय ऋरीगों से बनवा कर परमार्थ सद्-द्रव्यों से जिनेन्द्र की पंच-कल्याणक प्रतिष्ठायें करते हैं। सामान्य पूजन भी करते हैं। सभी देव उच्चगोत्री होते हैं। आप लोगो से देव मन्मथ, सबल, ज्ञानी, शुद्ध हैं। सौ-धर्म तो द्वादशाश्वेत्ता है इन्द्र के परिवार के महाद्विरु देवोंमें बृहस्पति (ज्योतिषी बृहस्पतिन्यारा है) पुरोहित, गुरु, उपाध्याय सद्य देव भी गिनाये हैं। ये बड़े प्रतिष्ठा-कारण के ज्ञाता हैं। मन्त्रत्रिधि क्रिया करानेमें अतीव निपुण हैं। तभी तो आप प्रति दिन पूजा के अन्त में कहते हैं कि—

“शास्त्रोक्तत्रिधि पूजा महोत्सव सुरपती च ही करै,
हम सांग्रिखे लघु पुरुष कैसे यथात्रिधि पूजा करै”।

देवों करके इन्द्रध्वज पूजन भी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा पूर्वक ही मन्मथ की जाती है। अन्यत्र भी सौवें पाच मौवें लाखों, (लक्षण समुद्र के भीतर भी) चाहे जहा द्वीपों या समुद्रों में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा समारोह रचा जाता है।

आप भी तो पंच कल्याणक प्रतिष्ठा करते समय हिंसी प्रतिष्ठाचार्य विद्वान् या प्रतिष्ठा कराने वाले धनी में इन्द्र की स्थापना (इन्द्र प्रतिष्ठा) कर लेते हो। अन्यो को कुवेर या लौकान्तिक बना लेते हो। कन्याओं को श्री धृति-आदि छप्पन कुमारी थापते हो। स्वर्गों या भवनरामी, व्यन्तर ज्योतिषियों के यहा तो सब सामान यथार्थ (असली)

विद्यमान रहता है । सुमेरु पर्वत पर भगवान् का स्तूपन देव ही कर सकत है । इन्द्रधनु विम्बप्रतिष्ठा म सुमेरु गिरि पर चाह जहाँ या सोलह नृत्यालया में था नवा स्वर्ग म ही पाण्डुक शिला स्थाप कर जन्माभिषेक कर लेते हैं । फिर इन्द्र प्रतीन्द्र सामानिक द्वारा नवीन प्रतिमा घटाने म ही क्या आपत्ति आ गई ! ये प्रतिष्ठा के पीछे आगतमाइयो को लड्डू नहीं घांटते हैं । हाँ धार्मिक देवों का खूर स्वागत, सन्मान सत्कार करते हैं विशिष्ट चर्चाये करत हैं । अपार आनन्द मानते हैं । प्रतिष्ठित प्रतिमा की प्रतिष्ठा नहीं करते हैं किन्तु गान पर जाकर विधि विधान कर वहा से रत्न-पापाण लाते हैं । स्वर्ग म अमरग्यात योनों लम्बे चौड़ लाखो विमान हैं । अनेक पहाड और खानें हैं । पश्चात् पापाणो म मनोव प्रतिमा जी को छेनी से उभरते हैं, तब मन्त्र प्रयोग क्रिया विधान शास्त्रोक्त करते हैं । ये सब क्रियाये परमार्थ सत् है ।

अब आप कहो कि तुम असरा कार्य करते हो कि इन्द्र ? आज भी वीसपन्थ सम्प्रदाय के जिन मन्दिरों म बवनवासी, व्यन्तर देव देवियों की मूर्तियें स्थापित हैं । ये सब जिनशासन रक्षक देव माने गये हैं । यहा जम्बूद्वीप से अमरग्याते द्वीप समुद्रों तक तिरछे चलकर परली ओर के द्वीप समुद्रों के नीचे बच्चा आदि पृथ्वियों म बवन वासि-

यों के भवन हैं। प्रत्येक भवन के मध्यवर्ती छोटे से पर्वत पर अकृत्रिम जिन मन्दिर गोमता है। ढाई द्वीप या इनसे चिपटे सैकड़ों हजारों द्वीपों के नीचे कोई भी जिन मन्दिर नहीं है जिनकी कि उपरिम आप लोगों से अप्रिनय हो सके। आ नरकों के उनचाम इन्द्रक मिले जम्बू द्वीप के ठीक नीचे अवश्य है। यों श्रावक अपने आद्य यात्रयक कृत-व्य जिन-पूजन को करें, कराये जायों। वस्तुत आप लोग नकल करते हैं और इन्द्र या देवता ही मुख्य अस-ली कार्य करते हैं। इन्द्र या महाद्विक देव जो इन्द्रध्वज पूजन, पचरुन्यासक प्रतिष्ठा, नन्दीधर द्वीप में अष्टान्हिका पूजन आदि धार्मिक कृत्य करते हैं वे कोई दिराऊ, इन्द्र-जाल, कल्पित दृष्टिबन्ध, मायाजाल, छूमन्तर नहीं हैं, किंतु परमार्थ सत् हो रहे सुकृत कृत्य हैं।

इन्द्र के समान हम आप क्या पूजन कर सकते हैं ?
 नम मौन रखिये। देवों को जिन-पूजन का तीव्र अनुराग (शांक) है। लघु रत्नत्रय-मय जिन-पूजन को छोटा धर्म न समझना। मात्र मानव शरीर से दीक्षा, मोक्ष, जिनजन्म, मुनिदान हो जाने की गोली पर ही मत कुप्पा हो जायों। अन्य भी धार्मिक कृत्य अनेक हैं। नगर के प्रदाधनी सेठ और उमके कर्जदार उमी नगर के हिज हाइनेम की शक्ति को परखो। मदीय स्नेही उन्धुयो ! सौधर्म इन्द्र उडी भक्ति-

चाय से जिनार्चा करता है। कभी २ तो मुझे भी वैसा पंच कल्याणक करने का निदान मा हो जाता है निदान में भोगा काचा रहती है यहा भोगेच्छा नहीं "दु सक्खउ म्मवउउ, समाहिमरण च जोदिलाढो य" के समान सज्जाति, सद्गृहस्थत्व, पारित्राज्य, सुरेन्द्रता, तीर्थङ्करत्व, इन परमस्थानों की मानना करना गृहस्थ का अनुचित निदान नहीं है। शुभ कामना की साधना है।

प्रतिष्ठा-विधि में पूजन के लिये मम्यगृष्टि देरों की अनुषण आवश्यक हो रहे नैवेद्य का बनाना भी कोई कठिन नहीं है। कच्चा सामान विद्यमान है। विफलत्रयों की उत्पत्ति का भय नहीं। यदिया पक्का बनाने लिये जाते हैं। यहा भी तो अयोध्या में भगवान् की माता की सेवा श्री आदि देविया करती हैं ये भोजन, पेय, वसन, दर्पण, वीजना आदि सभी का प्रबन्ध करती हैं। तीर्थङ्कर की माता के आहार है निहार नहीं।

कच्ची सामग्री नगरी में है स्वर्ग से भी असली आती रहती है। कुशल देविया भट बना लेती हैं। अन्य रसो-इया, भृत्य भी अनेक हैं। इन्हीं दत्त देवियों की उपमा आप क घरों में भी किसी चतुर गृहस्थ वक् को दे दी जाती है। अत एव पट्टरानी को मुख्यतया देनी कहते हैं।

(सम्मति सत्य)

जलरुल्लग के दिन भी आप इन्द्र बनाकर गाजे बाजे के साथ उछाह निकालते हैं अथवा प्रति दिन अभिषेक पूजन करते समय मुकुट लगाकर स्थापना इन्द्र बनजोते हैं।

पहिले बाहुवली स्वामी की प्रतिमा सत्रा पाच सौ धनुष ऊंची बनी थी। उस प्रतिमा की नरुल जैन-प्रद्वीम व्यालीस हाथ ऊंची बनाकर की गई। पुन इन प्रतिमा जी की भी प्रतिमायें बनाकर आरा आदि में सहर्ष पूजी जा रही हैं, यहा सहारनपुर में भी है। यह स्थापित की स्थापना पर पुन स्थापना चल रही है। नमन पूजन, अभिषेक, उछाह नृत्य आदि में द्दम देवों की ही नरुल कर रहे हैं। नरुल की चक्राचोध में असल को भूल जाते हो। सुवर्ण, मोती, सिलवर, घृत, आटा, सफेद मिर्च, सानू-दाना, घड्डियों नैवेद्य दीप, पुष्प, शशलोचन, तैमर, कस्तूरी, शिलाजतु शिष्टाचार आदि में सर्वत्र नरुल ने असल को छिपा दिया है। कोई २ व्यापारी तो नरुल को पकडकर असल की निन्दा करने लगे हैं। वन्य है महाशय जी!

मित्रवर्य ! अभ्यन्तर की आरतें खोलकर पर्यवेक्षण कीजिये तब वस्तुतत्त्व प्राप्त हो जायगा। भक्त पुरुषों आज कल अहिंसा, मत्त, स्वाध्याय, ध्यान, नियम, आरुढी, सामायिक, आक्रिञ्चन्य, भोगोपभागपरिमाण विनय वैयावृत्य, व्युत्सर्ग, परीपहजय, ब्रह्मचर्य, देशव्रत, अनशन

विरिक्त शय्यामन आदि सभी गृहस्थ घर्षों का निचोड़ नि-
मेलमात्र भक्ति पूर्णक क्रिया गया जिन पूजन है ।

“सुतादो त मम्म दरमिज्जत्त जदा एण मद्दहदि,
सो चेण हवइ मिच्छाण्डी जीवो तदो पट्टुदी” ।

(गोम्मटमार)

श्याम से पुष्ट कर देने पर भी जो हठमग्न श्रद्धा नहीं
करता है वह मिथ्या-दृष्टि है । अतः पूजन व्याख्याय करते
या ध्यान करते समय इन उपर्युक्त वस्तुओं को अन्यून-
नतिरिक्त यथार्थ विचारो । और अधिक क्या कहें ?

देव सुमेरु से ११२१ योजन दूर अस्थिर स्थिर
ज्योतिर्वक्र से चक्रर सामान ले आते जाते हैं ताराओं के
तिरछे अन्तराल स्थान एक घटे मात्र कोम से लेकर हजार
गुंडे योजन तक के हैं । इनमें से आदीधर भगवान् ४ सम-
वमरुण कलिये आवश्यक होरही अडतालीस छोटे कोस लम्बी
चौड़ी गोल चपटी नीलमणि की शिला डेढ़ गज ऊपरसे मुल-
भता से आ जा सकती है । महागौर स्वामी की समा के
लिये केवल चार कोम की शिला आवश्यक है जिस पर पूरा
ममयमरण देव स्थपतिया करके बनाया जाता है । विद्या-
धर या नागद अथवा श्रद्धि वारी मुनि भी परतों, लगण
जलधि जलो और ज्योतिरिमानों से चक्रर ढाई द्वीप के
क्षेत्रान्तरो को आते जाते हैं ।

वैक्रियिक शरीर वाले देव स्वशरीर या अन्य भूषण, वस्त्र, राद्य, रत्न वृष्टि, पुष्प वृष्टि, पूजन योग्य पदार्थ, गा-जा आदि को ज्योतिष्क विमानों में घुसकर भीतर से भी अच्युएण ले आ सकते हैं। धरणेन्द्र, चमरेन्द्र, असुर आदि देवता यहाँ हजारों योजन मोटी, चित्रा, वज्रा आदि ठोस पृथ्वियों के भीतर होकर सामान सहित आते जाते हैं। जैसे कि स्थूल विजली का करेन्ट नमी, उष्णता, शीतत्व धीस मरानों या लोह मय तिजोरियों के भीतर भी घुम जाते हैं। जन्म कल्याणक में एक लाख योजन का हाथी इन्द्र विमान, नृत्यमार, नादित्र आदि परिकर सभी ज्योतिष चक्र के भीतर से भी निरापद आते जाते हैं। दोनों को कोई कष्ट नहीं। जन सूक्ष्म औदारिक ही न रुकता है, न रोकता है तो वैक्रियिक शरीर-वारी देवों के सामान को कौन रोक सकता है। अत्रगाहनशक्तिका गम्भीर अध्ययन कीजिये। नरलोक और मानवों की मत्ताईम या उनतीस अंकप्रमाण सरया का भी दृष्टि-कोण में रखना क्या बात है ? तीन लोक में नादर अनन्तानन्त पुद्गलों की निद्वेन्द्र स्थिति निर्वाध हो गयी है।

हा इन्द्र देव हाथी पर गोद में बैठे बाल भगवान् की इन आकारको से बाल २ उचाये रखते हैं। अतिक्रम तर्क करने की टेव अच्छी नहीं, आगम-ग्रन्थ भी कोई सार

वस्तु है ।

जर्मनी, रूस, अमेरिका के भीषण युद्ध या पश्चिमी पजार की अनातिमूर्ख पाष क्रिपायों को क्या सभी ने आसा से दखा है ? अपने सभी अङ्गो उपाङ्गो भीतरा अययों या उठी हवेली रसनगर को ही पुराणीत्या जव नही देख मफ हो तो आयेखण्ड, मगत क्षेत्र अथवा लरुही न तगते सटण रत्न प्रमा या तीनों लोको की गतों की इन हीन शक्ति परोक्ष इन्द्रियों से जाननेके लिये क्या भगव गह हो ।

यदि किसी अन्य की देखी और दूसरे की सुनी हुई बातों को प्रमाण मानते हो तो सर्वत्र दृष्ट, गणधराद्या-चाय परम्भा-प्राप्त तत्त्वों को भी मरिनय स्वीकार कर ली-नियेगा । मयार्थ वक्ता तीर्थङ्कर-भाषित आगम पर श्रद्धान कीनिये उताग्दापित्व आचार्यों पर धर दीजिये । अपने माक्षा के प्रायश्चरु परिमित तत्त्वार्थों का श्रद्धान कर घोडा मम्परज्ञान यद्गत हुये आत्म-स्थिति द्वारा नि श्रेयस प्राप्त कर ला "रुद्र थे योतिचचिनाम्" ।

अपनी इन्द्रियो या मन से तो अनन्तरें भाग पदार्थों को भी नहीं जान मज्जे हो । मैं स्वय अनेक गूट प्रमेयों को पर्मांतरमच्च या युक्ति उदाहरणो द्वारा मयमाने में अगक्य ह । हा इन्द्र, लौकान्तिक, अहमिन्द्र अवस्थाओं

म बहु त्त्वज्ञान प्राप्त कर आप सूक्ष्म तत्त्वज्ञप्ति से परि-
 त्त हो जायेंगे । वहा के प्राप्य कार्यों के लिये अभी से
 क्यों अकुल रहे हो । सतोपधैर्य से काम लो । मोक्ष के लिये
 ममी सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वों का विवेचन आवश्यक नहीं है ।
 त्व स. मा स को तुष माम भिन्न या "कडसि पुण्णुण खेममि
 यों अशुद्ध बोलने वाले अत्यल्प ज्ञानी भी भाव-लिङ्गी महा-
 प्रती श्रद्धिधारी बन गये हैं । मिथ्यात्व रहित कषाय मट
 होने चाहिये । "एषो अरहताण" मात्र इतना रट रहा
 सुभग-नामक गाला मरकर सुदर्शन सेठ होकर पटना से
 मोक्ष गया, रद्द ग्यारह अग नौ पूर्व पढ़ गया तो क्या हुआ ?
 "ज्ञानस्तोकाद्धि मोक्ष स्यात्" मोक्ष रहित सूक्ष्म ज्ञानसे ही
 मोक्ष हो जावेगी, ऐसा समतभद्र आचार्य विधान करते हैं ।

सूक्ष्म जिनोदित तत्त्व हेतुभि-नेव हन्यते,
 आज्ञा सिद्धन्तु तत्र ग्राह्य नान्यथावादिनो जिनाः ।

यदि चाकृ बुगने वाला छोकडा माता द्वारा प्रोत्साहन
 पाकर कालान्तर में पक्का डारू बन जाता है । तो निज
 स्वमान ज्ञान पर निसर्गाधिकार (मौरूसी हक) रखने वाला
 पहिले सूक्ष्मज्ञानी भी पुरुषार्थ द्वारा पीछे द्वादशागवेत्ता
 होकर कैवल्य प्राप्त कर ही लेगा । विकामके क्रम नियत हैं ।

ध्यान और ध्यानतर्क

आजकल ध्यान करना सर्वोत्तम धर्मपालन है । आर्त

रौद्र तो तिर्यञ्च नरक गतिने वास्तव है। इस युगम शुद्ध ध्यान हो नहीं सकता है हा धर्मध्यान विषय ही एक देश ध्याया जा सकता है। ध्यान के लिये ऐसा एकान्त स्थान उपयोगी है जहा पशु पक्षी स्त्री बालक छिटाडी भू-पण खाद्यमामग्री नृत्य गीत वादिन भगड कलह हिंसा व्यभिचार पद्यसेवन घृत पाप-रथा आग्भ परोपरोध गाली मिह सर्प आगन्तुक कीट आदि का प्रमग नहीं होय। अधिक गर्मी अतिशीत भी नहीं हाय तीक्ष्ण वायु आतप वर्षा के उपद्रव से रहित होय। तथा शरीरको राधा नहीं करने वाले शुद्ध-स्थल पर सुख-पूर्वक मौन बैठकर या रुद्रगामन ध्यान लगाये। थोडा सुख नमाये रये ना-साग्रदृष्टि रये दान्तों आरों को अधिक खोलै भी नहीं चलाकर भीचै माचै भी नहीं सुखको प्रमन्न रये। नादवा आलस राग अरति गोक काम भय हास्य ग्लानि को छोड कर ध्यान करै पाचों पापोंका त्याग करै। ध्यानके प्रथम-अनुकूल मामग्री धनाने का लक्ष्य रये। हा ध्यान प्राग्भ कर देने पर तो पुन' भले ही वज्रपात मिहआक्रमण, घोर उर्षा परीफह कैसे भी उपसर्ग उपस्थित हो जाये उन को समता परिणामों से सहे भले ही सन्यासपरख हो जाय।

“यो वज्रपातेपि न जात्प्रपैति” ।

ध्यान करते समय इस

नहीं करो निज को निज परको पर पहिचानो । चित्त को स्थिर बनाये रखो । तपश्चरण दान और ध्यान करने में स्व-शक्ति का लक्ष्य रखो शक्ति अनुमार ही योग निरोध करो शक्ति का अतिक्रम करोगे तो मस्तिष्क हृदय और इन्द्रियो की क्षति उठाओगे । बलाढ्य नागयण कोटिशिलाको उठा लेता है किन्तु नगण्य निमित्तसे रुदली-वात परण को प्राप्त हो जाता है । इन्द्र जम्बू-द्वीप को पलट सकता है दार्द द्वीप को नहीं । अनन्तरीर्य मुनिने इन्द्रको शारीरिक बल में हरा दिया था । शक्तिया परिमित हैं । हा मन अत्रिक न लगे तो परमेष्ठीराचर मन्त्रों की जाप्य दो अथवा पंचपरमेष्ठी के गुणों का चिन्तन या गारह भग्ननायें भाजो । इन्द्रियों को कम करो आत्मा में आत्मा स्थिर होकर रमण करै ऐसा प्रयत्न करो । मन वचन काय की प्रत्यचिन्तन सोलना, चेष्टायोंको न कर द्रव्य स्वभाव का चिन्तन करो ।

“एयदत्रियम्मि जे अत्थपञ्जया त्रियणपञ्जया चाप्ति,
तीदाणागदभूदा तापदिय त हवदि दच्च” ।

एक द्रव्य में जितनी अतीत अनागत वर्तमान पर्या-
यें हैं उतना ही नियत लम्बा चौड़ा गह्र अखण्ड परि-
पूर्ण द्रव्य है । जीव पुलद्ग आदि सभी द्रव्य इन भाव
अभाव शक्तियों से तदात्मक गुम्फित हो रहे हैं । स्वपरा-
दानापोहन-व्यवस्थायाध खलु उस्तुनो वस्तुत्त (राजवा-

तिक) प्रत्येक वस्तु को स्वयंशों का उत्पादान और परकीय श्रमों का त्याग करना ही पडता है । ममी पदार्थों मभार श्रमाय धर्म भरपूर लद रहे हँ । चैतन्य सुख चारित्र वीर्य सम्यक्त्व रूप रस गंध स्पर्शद्वय गतिहेतुत्व आदि भावात्मक गुण हँ । इमी प्रकार अव्याघाध अमूर्तत्व नास्तित्व प्रागभाय ध्वस अत्यन्ताभाव अन्योन्याभाय आदि अभावात्मक धर्म हँ ।

हमारे आपके सिर पर मुह म सिहाभाय सर्पाभाय आदि अनन्त अभाव लद रह हँ तमी इम निरापद चैन से हँ । एक अभाव का भी तिरस्कार कर देने से उती समय सर्प या व्याघ्र सिर पर लड़ा हो जायगा । इसी प्रकार ती वर्ष आगे पीछे के प्रागभाय ध्वस अभावो की उपज्ञा कर दोगे तो असख्य पशु कीट मनुष्योंके मर कर उठ बैठने से या प्रथम जन्म ले लेने से आजकल के जीवित मनुष्यों को खाने की एक दाना और ठहरने की एक अगुल स्थान नहीं मिलेगा । श्री समन्तभद्राचार्य ने आत्म मीमासा मे 'कार्यद्रव्यमनादि स्यात् प्रागभावस्य निन्दव' आदि श्लोकों द्वारा इस सिद्धान्त को बहुत बढ़िया ढंग से पुष्ट कर दिया है । ध्यान मे लोक-व्यवस्था का भी चिन्तन कर सकते हो ।

ध्यान यद्यपि चेतना गुण की ज्ञान
है तो भी ध्यान मे चारित्र गुण की

का
६

हो रही है जैसे कि कषाय और योग का मिश्र परिणाम लेण्या है। आत्मा के सम्यक्त्व, चारित्र, चेतना, सुख, धीय इन पाच गुणों की ही तो मंगल अथवा मंगल में विभाव परिणति हो गई है। शेष अस्तित्व, उत्तुत्त आदि गुणों की ता विशुद्ध स्वाभाविक पर्याय हो रही है। शुद्ध आत्मा में चारित्र गुण की क्षमा, मार्दन, ब्रह्मचर्य, अहिता, शौच, चारित्र आदि स्वरूप स्वाभाविक सत्कर परिणति हो रही है। धीर्यगुण का चायिक दान, लाभ, नल, भोगोपभोग रूप सत्कर स्वभाव परिणाम है। चेतना का केवलदर्शन, केवल ज्ञान मिला हुआ परिणाम है। ये गुणों के स्वाभाविक वैभाविक एक मिश्र मन्त्र पर्याय शक्ति-रूप से अनेक जाति के परिणामन होते रहते हैं।

जैसे हिंसा कृत-नता, विश्वासघात, मायाचार शि-कार खेलना, व्यभिचार आदि भावरूप दोष प्रसिद्ध हैं ही, तद्वत् ब्रह्मचर्य, प्रतिमावाग्य देवदर्शन, क्षमा, गुरु-प्रशसा आदि गुणों का न करना भी ये अभाव रूप दोष हैं। एकेन्द्रिय विकल्पय जीवों के ऐसे गुणाभाव रूप दोषों से पापास्रव होता रहता है। भले ही ये विचार-शून्य जीव दर्शन महोनीय के आस्रव का कारण माना गया केवली, शास्त्र, सध का भावरूप अर्थवर्णनाद कष्टोक्त नहीं करें। फिर भी केवली, सध, शास्त्र और धर्म की पूजा, स्तुति, ध्यान

न करना भी अर्थवाद है। यो विव्यात्व कर्म वधता रहता है। तत्रार्थों का श्रद्धान नहीं करना गजवातिन आठवें अध्याय प्रथम सूत्र की वार्तिक में विव्यात्व विभाव रहा गया है देख लो। इसी प्रकार अभाव रूप अतिरिक्ति भी वध का कारण नित्य-निगोदिया या एकन्द्रियों में है ही। कपाम प्रमाद और योग तो भावस्वरूप ही विद्यमान हैं। ये भी माया लोभ करते हैं कोई पृथ्व चालाकी से फीटों को पकड़ लेता है उन, खाद्य, पेय का शोभ जड़ें फैलाता है।

सत्त्वियों द्वारा अन्यत्रों की प्रशंसा करने पर अजना चुप रह गई अजना ने पवनजय की प्रशंसा नहीं की इसी अभावरूप दोषकी मासपर पवनजय कुमार आग बसुला हो गया था और अजना को शर्म वर्ष तक पति वियोग का दुःख सहना पड़ा। "मौनमर्ष सम्पति" ऐसा नीति वाक्य भी है।

इसी प्रकार एकेन्द्रिय के ज्ञानवानों की प्रशंसा, सत्कार पूजा, सन्मान, विनय आदि नहीं करना रूपप्रदोष, निन्दव, मात्मर्ष, सदा पाये जाते हैं यों उनके ज्ञानावरण वधता रहता है। जल वायु, पापाण, अग्नि, वनस्पति ये एकेन्द्रिय जीव विचारे भूत या त्रितियों पर अज्ञात अनिच्छा पूर्वक मन्द अनुकम्पा और दान करत ही हैं। पसारी टोला, धान मण्डी, तरकारी बाजार सब प्रासुरु अग्रामुक एकेन्द्रियों से

भरे पडे हैं। यों उनके साता वेदनीय दंड जाता है। ये दुख भी दंते हैं। पानी प्राणियोंको डुबा कर मार देता है आग जला देती है यो इनमे असाता वेदनीय का आसन्न हो जाता है। स्पर्श, परग्रशसा न करने से नीच गोत्र कर्म आ जाता है। एकेन्द्रिय विरुलत्रय प्राणी अनेक विघ्न भी करते हैं ये अन्तराय के आसन्नक हेतु है। श्री तन्वार्थ सूत्र छठे अध्याय के छठे सूत्र मे अज्ञात भागो से भी कर्मसिद्ध होते रहना कहा है। अज्ञातकृत्य भी कर्मबन्ध करा देते हैं। एकन्द्रियों के स्थिति बन्ध अत्यल्प होता है इसका कोई महत्त्व नहीं है। नीतिवान् राजा के जाने बिना कोई अज्ञात व्यक्ति अभय प्राप्त कर ले। सुराज्य मे चाहे जहा निर्वृन्द तीर्थयात्रा या व्यापार करे। सरकारी "गफा खानों या पचायती औपधालयों से चाहे कोई अनजान व्यक्ति औपधिया प्राप्त करले, प्रकृष्ट देशनेता भले ही जनता के अज्ञात, अनिच्छ रूप से लोकोपकार कर रहे हों। यदि बिना जाने आपक रचित गेहुओं को चूहे, गिलहरी, बन्दर या जाय या क्रिमान के खेतों मे से अनेक पत्ती, पशु अन्न घास खा जाय अथवा नि.स्वार्थ विद्वान् से अज्ञात व्यक्ति ज्ञान दान प्राप्त करले तो मित्र ? राजा, पचायत नेता किसान विद्वानों को जोडा सा तो पुण्यबन्ध हुआ मान ही लो। 'अज्ञातों पर परोपकार कर रहे उन्हें पुण्य बन्ध

नहीं होगा' ऐसा तो न बटो। तदन्तु एतन्द्रियो के अनात
 भावों या क्रियाओं से पुण्य या पाप होने से मान लीजिये-
 गा। राजा आदि दृष्टान्त गरी हैं एतन्द्रियों से मन नहीं
 है यों रह देने से अज्ञात क्रियाओं में विष्णु अन्तर न पढा
 अच्छा कुछ समती आसव होगा, थावे ० पर निर्णय (कंस
 ला) करलो, या सही, "मर्मनाशे ममृपन्ने अर्थ त्यजति
 परिहृत"।

एतन्द्रियो म अमार-रूप तोव भी अनेक पाये जाते
 हैं जैनों क यहा तुच्छ अमार नहीं माना गया है किमी का
 भी अमार प्रतिपत्त रा भाव म्यरूप है या आधार रूप है
 कदाता रा अमार कृतज्ञता है जीत का अमार उष्ण
 घोरी रा अमार अर्चौर्य और मूर्च्छा का अभाव आरि-
 अन्य धर्म है। तभी तो जिनदर्शन न करना, जिनपूजन
 न करना मयम न पालना, अष्टमी चौदशकी हरी न छोडना
 इन्द्रिय विजय नहीं करना, पानी न छानना ये भी बड़े भारी
 दोष माने जाते हैं। इमार और आप के भी इन अभाव
 रूप दोषों से अनेक दुष्कर्म आते रहते हैं। लोक में भी
 उपार्जन न करना, बच्चों को न पालना, न पढ़ाना, परो-
 पकार न करना कृतव न बनना ये बड़े दोष माने गये हैं।

यति सारक "विमर्ग विगध विमान विलोम विमाय
 विनाय विशद विशोभ अनाकुल विदम्भ विवृष्ण विदोष

पिनिद्र, विहार विराग विरग विमोह" इत्यादि अभाव स्वरूप अपनी आत्मा या सिद्धों का चिन्तन करने से पुण्यास्रव हो जाना थाप मानते हैं तो त्रतधागणीभाव, मयम पालना-भाज, क्षया अभाज, ब्रह्मचर्य अभाज आदि अभाजों से एकेन्द्रिय विकलत्रय जीवोंके पापास्रव हो जाना भी सुघटित है। द्रव्य गुण पर्यायें सभी भाज और अभाव से गुम्फित हो गयी हैं किसी जैन ने यदि परिग्रह-परिमाण नहीं किया है हरित कायिक या रसों की अथवा देश दिशाओंकी मर्यादा नहीं की है तो भले ही वे वाहर की वस्तुओं उमके उपयोग में नहीं अर्थात् किन्तु अविरतिजन्य पापास्रव होता ही रहेगा अभाज बड़ा काम करते हैं इसे भूलना नहीं। सम्पूर्ण पदार्थों में परस्परापेक्ष अन्योन्याभाज पडे हुये हैं। नास्तित्व धर्म अगुरुलघु गुण भी है। तभी तो वर्तमान के प्रत्येक मनुष्यों, स्त्रियों, बालकों, देवों, नागकियों, घोड़ों मकरियों, कबूतरों, चूड़ों, मक्खियों घुनों अन्य विकलत्रयों जुओं गेहूँओं मृगों राजराजों अमरुदों केलों आदि की सम्पूर्ण स्रतें मूरत न्यायी २ हैं। गस गन्ध भी मित्र २ हैं यही सर्व-यापी मेद भूत, मविष्य-कालीन सभी उक्त पदार्थों में केवल-व्यतिरेकी रूप से श्रोत श्रोत प्रविष्ट हो रहा है। "सर्वात्मक तदेक स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे" ।

(देवागमस्तोत्र) ।

यदि भेद को न माना जाये तो सर्पदार्थों की मिल कर एक चटनी बन बैठे तथा च चालिनी न्याय से सब का मटियामेट हो जावेगा । स्वकीय अस्तित्व ही नहीं टहर । सप्त-भङ्गी में पडे हुये कल्पित अस्तित्व धर्म से वस्तुभूत अस्तित्व गुण न्यारा है । अच्छा मुनिये—

विरुल्लय जीव अनेक उपकार भी करते हैं । छोटा बडा गेंडुमा किसानों का महोपकारक है । खेत की भूमि को नरम करता है छोदता है उन छेदों में अकुरों की जड़ सरलता से घुस जाती है मर कर खाद बन जाता है कोई भोले किसान गेंडुओं को भगवान् रुह देते हैं । सीपे अत्रात भाव से मोती को पैदा करती है । तीतर का खाद्य हो रही दीमकें सर्पों को अपना बना बनाया घर (ऊँची कोठी) दे डालती हैं । पहाड़ी विषधर बिच्छू पत्थर में डक मार मार कर उसको बढ़िया विष बना देते हैं जिससे शुद्ध कर विषगर्भ तैलादि उत्तम औषधिया बनाई जाती हैं । मधु पक्षिकाये मधु (शहद) बनाती है । मधु सेवन से जिम रोगी को लाम हुआ है उसके पूजर्तों माता वेदनीय पुण्य का उदय ही है । हा अमर्त्यमक्षण से वर्तमान मयाप कर्म भले ही बन्ध जाय । जिस चोर को जाने ही भट माल मिल जाये, परस्त्री-गामी को नबोटा या सुन्दर बेश्या प्राप्त हो जाये शिकारी के सन्मुख बघ्य पशु पक्षी आजाय, डाँके

वाले को निधान हाथ लगजाये, मासभची को आमिप दीख जाय, चटोरा को चाट दही, चडे, जलेपी विस्कुट दे दिये जाय तो उम समय इन पापियों के पूर्व-सचित पुण्य का उदय समझा जायेगा ।

हा इन कुकृत्यों से तत्काल तीव्र दुष्कर्मों का वध हो जाना अनिवाय है । आघात काल और अचलावलि के बाद पाप फल भोगना ही पड़ेगा । उदीरणा के कारणों अनुमार पहिले भी भोग सफोगे । काष्ठाङ्गार को पुण्य से राज्य मिल गया । हा विश्वास-घात करने से कठोर पाप बन्ध कर नरक गया । तत्काल लौकिक सुख अनुभव रगने वाला पुण्य और दुःख वेदन कराने वाला पाप है तमी स्मृश आदि चार पिंड प्रकृतिया दोनो मे गिनी है । परघात तिर्य च आयु पुण्य है उपघात तिर्यग्गति पाप है । हिंसा, भृठ, चोगी, कुशील, परिग्रह अमत्स्य सेवन आदि अनेक पापों का साथ एक विश्वासघात है । चारित्र गुण के विमान सङ्कर परिणाम भी हो जाते हैं । लोभ, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद तथा पाच पाप सप्त व्यसन या अन्य दोषों मे भी मिली एक सङ्कर पर्याय हो रही है । कभी एक चाग्नि मोहनीय स्त्री परम प्रधानता से और इतर कर्मों का प्रदेशोदय हो जाने से असङ्कर पर्याय हो जाती है ।

अर्धचक्री बड़े पुण्य योग से जनते हैं यहा तब कि तीन नरकों से निकल कर जीव तीर्थङ्कर हो जाते हैं । (भक्षणतिष्ठेण्यथ, तित्थयर) किन्तु अर्धचक्री नरक आंग भवनत्रिक से नहीं आते । वर्तमानमपुण्योदय को भोग रहे ये हिंसा परस्त्री-हरण बहु आरम्भ परिग्रह व रुद्र परिणाम करने से अधोलोक को जाते हैं ।

देखो चार भग हैं (१) पाप उदय है और जीव पुण्य को उपजाता है जैसे परीपह उपसर्ग सहना स्वयं सेरकत्वम विघ्न सहना । (२) पुण्य जन्य कार्य है और पाप जनक है । भोज्य होते हुये भोग भोगने की शक्ति राज्यसम्पदा नीरोगअदरिद्र यौवन मद कठोरविकार । (३) पुण्य से उत्पन्न पुण्य ही का उत्पादक भाव । जैसे थावर मुनियोंकी दान शरणाथियों को भोजन, वस्त्र, गृह, आजीविका, धन देकर सहायता करना, मारने वालों से बर्ष, चूहा, कुत्तों, पक्षियों बलिपशुओं को बचाना, परोपकार, विम्व प्रतिष्ठा कराना, चैत्यालय बनवाना, पर कल्याण, (स्व कल्याण तो सबर जनक है) (४) पाप का ही बड़ा पाप का ही बाप जैसे भिखारीपन मुहचिड़ापन, तीखीकूपणता, शोक, अनुताप, आक्रन्दन, ईर्ष्या, परनिन्दासक्ति अभीच्छा-रोगित्व, गुणी की अपनीति करना, धर्मविरुद्धाद, चिर दरिद्रता, नीति रहित राजा के राज्य में रहना, मूर्खपुत्रत्व

कई बार टोटा आदि।

ये द्वीन्द्रिय आदि जीव स्वयत्न से ज्ञात अज्ञात महान् अपकार भी करते हैं मच्छर मन्सी राटमल टिट्टिया रोग-कीट, दाद प्लेग के कीड़े ये अनेक पशु मानवों को भारी कष्ट पहुँचाते हैं। जुआ खाया गया जलोदर करता है। मरुही कोढ़ को उपजाती है, बर्रै या ततैया विच्छू कातर उस घृणा के कीड़े काट कर हम आप को दुःखित कर रहे हैं। इनका कुज्ञान न्यून नहीं है। हम आप अपने रक्त को नहीं पहिचानते हैं परन्तु मच्छर राटमलों जोंकों को रक्तपरीक्षा (ब्लड टेस्ट) करना अच्छा थाता है वहा नदिया स्नादु अल्पश्रम माध्य रक्त है यह सो रहा है या जाग रहा है ? इन बातों को वे भट जाच लेते हैं। योग्य समय पर ये डाका डालने के लिये निकलते हैं।

एकेन्द्रिय निकलत्रय जीवों के इन्द्रिय-लोलुपता कपा-यभाव विषय-गृद्धि अधिक है चींटिया चींटे सेरों नाज को इरुद्धा कर अपने घरों में गुप्त रख लेते हैं कोई भी चींटी वर्षा में नहीं भीगती है। वे प्रथम से सी मेढ, आधी का परिज्ञान कर अपने सुगन्धित घरों में पहुँच जाती है। भले ही प्रमादी पुरुष या पशुओं के देखे बिना टट्टी पेशान करने में सैकड़ों चींटिया मर जायें क्योंकि अदृष्ट मृष्ट मल उत्सर्ग करने वाले जीवों ने चींटियों को धोका दिया है। इसमें

चींटियों का अपराध नहीं है। इन्हे हुये बुद्ध राघ को पारकर एक चींटी अपने सग की हजारों लाखों चींटियों को इकट्ठा कर लेती है। चींटियों की पक्ति आते जाते अपनी निरादरी से ममेत द्वारा घाते कर लेती हैं। स्टोरदान ग धीस गज इ पर मिष्टान्न रखा है उसमें छोटी जाने आने योग्य मन्द भी है। स्टोरदान पानी के मिले या छींके के गढ़ पर धरा है। वह गम्य है या अगम्य है इन सब घातों को वे कुश्रु तज्ञान से जान लेती हैं चींटियों को ऐसे प्रति-ग्रन्थो का नान प्रथम से ही अपने कुश्रु त से हो जाता है वे घर से ही नहीं निफलती हैं। श्रु तज्ञान से कुश्रु तज्ञान तीव्र होता है। अविधिज्ञान से विमद्ग चट है। श्रीन्द्रिय जीवनी उल्लूट आयु ४६ दिन और चीन्द्रिय की ६ मास है। जघन्य श्वास के अठारहवें मास है।

चींटिया अपने सम्मूर्द्धन अण्डोको घनानेके लिये न जाने कहा २ से सफेद द्रव द्रव्य लाती है। बुद्ध देरके मलम उपन गई चावल के हजारों भाग छोटी २ लठों को मृ ह से पुरुड कर पुन मारकर गोल अण्डा सा बना लेती हैं उन अण्डोको विलक्षण रासायनिक प्रक्रिया से सेवती हैं कमी अण्डों को हवा में रख देती है। सात दिन मे वे अण्डे काली चींटिया उन जाते है। लाल काले चींटे भी श्रु तों के पत्र कु ड में या भूमिच्छेदों में ऐसी ही जनन प्रक्रिया से सम्मूर्द्धन चींटों

को बना लेते हैं। ये चीटा चींटियों के अण्डे कोई मिथुन सयोग-जन्य पेट से नहीं निकलते हैं। इनका अण्ड जन्म नहीं, किन्तु सम्मूर्द्धन जन्म है।

ततैया, धर भी इसी प्रकार मक्खियो या अन्य कीडों को घातकर अपने छतोंम लाकर बड़ी रासायनिक प्रक्रिया से कुछ दिन बन्द रखकर पतला लेप लगाकर छोड़ देते हैं। दस पाच दिन में वे सब ततैया धर बन जाते हैं। भौंरी (अजिन यारी) बड़ी गवेपणा से भौंगुर को परुडकर डक से मारकर अपने स्त्रनिर्मित बड़िया चीरनी मिट्टी के निरुपद्रव घर में घर देती है। जनन रसायन प्रक्रिया करती है पुन गर्मस्थान का मुख अण्ड लेप देती है कुछ दिनोंम वह भौंगुर का मरा हुआ शरीर ही अजनियरी का सम्मूर्द्धन काय बन जाता है। मधु मक्खी के जन्म, देशान्तरगमन, मधु अन्वेषण रक्षण या कुपतिज्ञान जन्य कुश्रुत ज्ञानों स्मरणों धारणाओं अथवा लोभ, क्रोध, के कृत्य तो बहुत दिनों तक पठन की सामग्री है।

मकड़ी छत्रिया मरीखा चारों ओर ठीक नाप का जाल पूरती है। दूसरी जाति की चौहन्द्रिय मकड़ी दो भाँति की सद में योनि स्थान बनाती है, न जाने कहासे स्वापत्यशरीर योग्य नौ लाख फुल कोटि पदार्थों में से छेक कर क्या २ रसायन लाती है उमके ऊपर पाच पी के लड्डा से भी रूढ़

चींटियों का अपराध नहीं है। इन्हें दूधे कुछ राध को पारकर एक चींटी अपने मग की हजारों लाखों चींटियों को इकट्ठा कर लेती है। चींटियों की पक्ति आते जाते अपनी रिगदरी से मनेत द्वारा बाँट कर लेती हैं। कटोरदान म तीस गज दूर पर मिष्टान्न रक्खा है उसमें छोटी जाने आने योग्य सन्द भी है। कटोरदान पानी के तिले या छींके के गड़ पर धरा है। वह गम्य है या अगम्य है इन सब बातों को वे कुश्रुतज्ञान से जान लेती हैं चींटियों को ऐसे प्रति-पन्थो का ज्ञान प्रथम से ही अपने कुश्रुत से हो जाता है वे घर से ही नहीं निकलती हैं। श्रुतज्ञान से कुश्रुतज्ञान तीव्र होता है। अनधिज्ञान से विमङ्गल चट है। त्रीन्द्रिय जीवनी उद्भूत आयु ४६ दिन और चौरन्द्रिय की ६ मास है। अधन्य श्वास के अठारहवें भाग है।

चींटिया अपने सम्मूर्द्धन अण्डोंको बनानेके लिये न जाने कदा २ से सफेद द्रव द्रव्य लाती हैं। कुछ देरके मलमे उपज गई चावल क हजारवें भाग छोटी २ लटों को मुह से पकड़ कर पुन मारकर गोल अण्डा सा बना लेती हैं उन अण्डोंको विलक्षण रासायनिक प्रक्रिया से सेरती हैं कभी अण्डोंको हवा मे रख देती हैं। सात दिन मे वे अण्डे काली चींटी-या बन जाते हैं। लाल काले चींटे भी घृचो के पत्र कुड म या भूमिच्छेदों में ऐसी ही जनन प्रक्रिया से सम्मूर्द्धन चींटों

अपने सजातियों को बना लेते हैं। हाँ, हमारे सम्मूर्द्धन जीव जैसे छोटी-० मच्छलिया, मेंढकिया, मक्खिया, घुन, गिडार, मच्छर, चौमामेकी रात्रि या दिन में उपजे अमरुज्य जीव तो स्वयोग्य कुल योनियोंमें निज कर्मपत्र मात्र अपने शरीरों को बना डालते हैं स्नापत्यो को नहीं। ये जीव सम्मूर्द्धन हैं इन्द्रा वशा स्नापत्य शरीरोंको नहीं बना पाते हैं।

श्रोता जी ! अनन्तानन्त जीव प्रतिक्रिया मर रहे हैं वे कर्मयोग द्वारा नोरुमोंका आकषणकर पुनः अन्य योगों द्वारा कर्म नोरुमों को संचरकर स्वपर्याप्तियों से अपना शरीर तैयार करते हैं। जीव-शरीरों की सृष्टिके ढंग कई प्रकार के हैं। द्वादशाङ्ग में इन की उत्पत्ति प्रक्रिया अतीव विस्तृत गूथी होगी। कभी उमरका भी अध्ययन करेंगे। भावना ऊंची रखो।

भाजार्थ-पथरी, सँघन, जनाश्रि, वात्या, निगोदिया, फठफूला, काई, साधारण, अमरुबेल, शर, मीप, चावल की लट, जुआ, लीस, इन्द्रगोप (राम की गुडिया) सड़ी कचौड़ी, सडे अमरुदके जीव, फोड़ेके कीट, मास रक्त जीव तदुल्ल रावण मत्स्य आदि अपने शरीरों को तत्काल तैयार कर लेते हैं अर्थात् योग्य कुल योनिस्थान मिलते ही भट उनका आहार कर स्वकीय योग पर्याप्तियों का मरण शक्ति

रुग्ण मरुच्छ, शुक्र रोगम ननाम्बर खत्र कमरर उडादेती है स्वय वाहर चली जाती है । कुछ काल पीछे उस गर्भागार में से दमो मरुडिया उपज कर राहर था जाती है ।

गोम्पटमारम इन योनि थीर कुलों का वर्णन क्रिया है । मैंने इम जीवगरीरोत्पत्ति प्रक्रिया का कुछ स्वमनसा अध्ययन किया है । यहां इस गृहस्य को लिखने का तात्पर्य यह है कि ऐसी करतूनें, मायाचार तीत्र लोम, ताप क्रोध, सन्तानोपार्जन, गृहनिर्माण कला, स्वइष्टोपाय टूटना राधमग्रह, मिलकर शत्रु पर चढ़ाई करना ये सर्व प्रयत्न एकेन्द्रिय विरलत्रयोंक पाये जाते हैं । ये सब उन अनन्तानुबन्धी कपायो के कार्य हैं जिन कपायों क साथ व्यक्त अव्यक्त, अज्ञात रूप से प्रदोष, निन्दर, केवलि अवर्णवाद मध अयर्गवाद, नि शीलत्र, योगयमता, परनिन्दा, विघ्न करण आदि दोष पाये जाते है यो एकेन्द्रिय और विरलत्रयों क सनातीय कपाय योगो द्वारा अष्ट कर्मों का चतुर्विध बन्ध होता रहता है । कर्मों म स्थिति न्यून पढती है अनुमाग तीत्र पढता है । अनुमाग ही कवा बन्ध है इनका कुज्ञान अपेवाकृत न्यून नहीं है बडा बढ़िया है ।

कोई उच्च बतानिक या थाविष्वाक हजारो यंत्रों या पुद्गलों की सहायता से इन जीवित शरीरों को नहीं बना सकता है । कतिपय एकेन्द्रिय, विरलत्रय जीव तो स्वय

अपने सजातियों को बना लेते हैं। हा दूसरे सम्मूर्द्धन जीव जैसे छोटी २ मछलिया, मेढकिया, मक्खिया, घुन, गिडारें, मच्छर, चौमासेकी रात्रि या दिन में उपजे असख्य जीव तो स्वयोग्य कुल योनियों में निज कर्मपश मोन अपने शरीरों को बना डालते हैं स्नापत्नों को नहीं। ये जीव सम्मूर्द्धन हैं इन्द्र वण स्वागत्य शरीरोंको नहीं बना पाते हैं।

श्रोता जी ! अनन्तानन्त जीव प्रतिक्षण मर रहे हैं वे कर्मयोग द्वारा नोकर्मोंका आरूपेण कर पुन अन्य योगों द्वारा कर्म नोकर्मों को खंचकर स्वपर्याप्तियों से अपना शरीर तैयार करते हैं। जीव-शरीरों की सृष्टिके ढंग कई प्रकार के हैं। द्वादशाङ्ग में इन की उत्पत्ति प्रक्रिया अतीव विस्तृत गूची होगी। कभी उमरु भी अध्ययन करेंगे। भावना ऊची रखो।

भारार्ध-पथरी, सेंधर, वनाग्रि, वाल्या, निगोदिया, कठफूला, काई, सावारण, अमरबेल, शर, सीप, चावल की लट, जुआ, लीस, इन्द्रगोप (राम की गुडिया) सही कचौडी, मडे अमरुदके जीव, फोडेके कीट, मास रक्त जीव तदुल्ल रावण मत्स्य आदि अपने शरीरों को तत्काल तैयार कर लेते हैं अर्थात् योग्य कुल योनिस्थान मिलते ही भट उनका आहार कर स्वकीय योग पर्याप्तियों का मरण शक्ति

से प्राण मन चित्त काय इन्द्रियोंकी समृद्धि न बना डालते हैं । ये स्वकीय जाति वाले थपत्यो के शरीरों को नहीं रचते हैं मात्र अपना मात्र बनाया करते हैं ।

प्रति समय अनन्त जीव मरते हैं । वे उमी दूसम योग्य योनियों में जन्म ले रहे हैं । कार्मणकाययोग के एक दो तीन समय भी चालू इसी उम्र में गिने जायगे । इन सूक्ष्म तत्वोंका घर्षण गोम्पटमार में है । अन्य विशाल शास्त्रों या प्रति-पत्तिक्रम अथवा द्वादशांग में अतीव विस्तृत प्रतिपादन किया गया होगा । ओं नम द्वादशांग वाच्यै सरस्वत्यै ।

इस प्रकार भाव अभाव परिणामोंका पर्याप्त विवेचन हो चुका है । आप प्रयोधकर चुके होंगे अभावको छोड़ा और आगम प्रमाण से समझ लो ।

अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे-न दैन्यं न पलायनम् । (उक्तव्य)
अर्जुनकी दो ही प्रतिज्ञायें थीं दीनता न करना और युद्ध से भागना नहीं । 'अप्रादुर्भाव उल्लु, रागादीनाम् भवत्यहिंसेति ।

(अमृतचन्द्र सूरि) -

राग आदि नहा उपजना ही अहिंसा है,
अहिंसा भूतानाम् जगति विदितं ब्रह्म परम ।
न सा त्वारम्भोस्त्येषु (श्री समन्तभद्राचार्य)
अणु आरम्भ से भी रहित हो रही अहिंसा परमब्रह्म

स्वरूप ही है ।

अतिरौद्र-परित्यागस्तद्धि सामायिक प्रत,
इन्द्रियवृत्तिनिरोध, जीवमथ अभाव, - स्वरूप समय के
साथ आतेरौद्र ध्यानों का नहीं करना सामायिक है ।

क्रोधानुत्पत्ति क्षमा कालुस्याभावः क्षमा ।

(राजवार्तिक)

क्रोध या क्लृपता नहीं उपजाना क्षमा है,
कार्योत्पाद क्षयो हेतो । (आप्त-मीमांसा)
उपादान कारण मानी गई पूर्वपर्याय का क्षय हो
जाना ही उत्तर पर्याय का उत्पाद है ।

भिक्षुका नैव यार्चति बोधयन्ति गृहे गृहे,
दीयता दीयता लोका, अदानात् फलमीदृशम् ।

(नीति)

कवि कहता है कि भिक्षारी लोग मागते नहीं हैं किंतु
घर २ में जाकर लोगों को समझाते हैं कि हे मनुष्यो दान
करो, दान करो, देखो दान नहीं करने से हमारे सदृश
दीन, दुःखी, दरिद्र, रुग्ण, दयनीय अवस्था हो जावेगी ।
द्वार २ भीस मागते फिरोगे ।

दुर्वार नरकान्वरूपपतन, जिनार्चा न रचयन्ति तेषा ।

(सूक्ति मुक्तावली)

जिन पूजन नहीं करने से अन्धरूप नरक में पतन
होना अनिवार्य है । अज्ञानी जीव अनिरति, अग्रत्याख्यान,

अत्रलक्ष्म, अलक्षारम्भाभाव, अन्य परिग्रह अभाव इन से प्रथम नरक जाता है ।

राजरातिक्रम छठे अध्यायमे-आचार्य उपाध्यायके अनु-
कूल न चलना, श्रद्धा अभाव, नास्तिक्य अनुकम्पा अभाव,
अनुत्सेक, नि शीलत्व, कर्मानुपलक्षि, अग्निसम्वाद, अभि-
वादनभाव, द्रव्यापरित्याग, प्रशस्तक्रियाओं का न करना,
अनिष्टति, अप्रत्याख्यान क्रिया, निर्दयत्व इन अभारों से
भी कर्मसिद्ध होते रहना बताया है ।

कोऽसौ द्रव्यार्थिक इति पृष्टास्तच्चिन्द्रमाहुराचार्या ॥५६७॥

व्यवहार प्रतिषेधस्तस्य प्रतिषेधरुथ परमाथे ।

व्यवहार प्रतिषेध मयनिश्चयनयस्य वाच्य स्यात् ॥५६८॥

व्यवहार स यथा स्यात्सद्द्रव्य ज्ञानराश्व जीरो वा ।

नेत्येतान्मात्रो भवति स निश्चयनयो नयाधिपाति

॥५६९॥

(पंचाध्यायी)

६०२, ६०४, ६०५, ६०७, ६०८, ६०९ वीं गाथाओं
को भी पढ़ लो । इनका प्रस्तुत ऐदम्पर्य यही है कि व्यव-
हार, नय के विषय हो रहे सभी विधानोंका निषेध करना ही
निश्चय नय का विषय है । वह नय ज्ञानाभाव अनुपयोग
(तुच्छ) नहीं किन्तु अर्थाकार लम्बा, चौड़ा विकल्पज्ञान है ।
चपक श्रेणी में कर्मों, को काटता है ।

इस प्रकार सर्वत्र भाव अभावका व्यापक साम्राज्य है। चारित्र गुण की एक समय-वर्ती पर्यायमें भावाश्रय अभावराश रूपसे रली मिली परिणति को तो देखो, मुनि के अठारह मूल गुण चारित्र गुण के परिणाम हैं। आचार्य की तीन गुस्त्रिया अभाव-प्रधान हैं। साधु की पाच समितिया भाव-प्रधान हैं। अहिंसा (अभाव) सत्य (भाव) अचौर्य (अभाव) ब्रह्मचर्य (भाव) अपह्निग्रह (अभाव) पाच इन्द्रियों का निरोध अभाव रूप है पट् आवश्यक भाव-रूप हैं। सात स्फुट मूल गुणों में भ्रूषण, लोच, एक भक्त, उद्धमृक्ति (एडे आहार लेना) ये भावाश्रयों को लिये हुये हैं। अज्ञान, अदन्त धामन, अवस्त्रय ये अभावों को परुड़ बैठे हैं। इमी प्रकार दशों धर्मों, वाह्यतपो और चौरासी लाख उत्तर गुणों में या शौल के अठारह हजार भेदों में भी भाव, अभाव से सस्कृत परस्पर सहोदरत्व (भाई बारा) को लिये हुये एक रली मिली पर्याय हो रही है। सिद्धों के आठ मूल गुणों में भी सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य ये चार भावात्मक हैं। और सूक्ष्मत्व (अमूर्तत्व) अवगाह, अन्यावाध, अगुरुलघु ये चार अभावात्मक हैं। जन्म और मृत्यु का समय एक है।

देवदत्त की आयु यदि साठ वर्ष है उस इरुसठिमें वर्ष के प्रथम समय उसका मरण है तमी अग्रिम पर्याय का

जन्म है। उसी का उत्पाद उसी का व्यय एक समय में नहीं हो सकता है, विरोध है। सौंफ, चादाम, काली मिर्च, इलायची, घूरे की टण्डाई नामक एक चन्ध पर्यायमे मिला हुआ एक चित्र रस है और रासन प्रत्यक्ष भी सकीर्ण है। तभी तो पूरा कम है मिर्च अधिक है, यो उता देते हो। पेट में जाकर पित्ताग्नि, मस्तिष्क, आँख, हृदय, आदि न्यारे २ अवयवों में जीव-पुरुषार्थ से इन का बटवारा हो जाता है। पाचों रंगोंके मिश्रण हो रहे चित्ररूप और त-ज्ज्ञानमें भी यही विचट्टी दशा है। सौ गज दूरसे मेलाफा शब्द सुनिये, अनेक शब्दों के मिश्रण और ध्यान प्रत्यक्ष में भी यही छूत घुस रही है। सर्वत्र ज्ञान, ज्ञेयों में चित्रता श्रोत प्रीत रम रही है।

एक माध्यमिक दार्शनिक ने तो अकेला चित्राद्वैत तत्व ही स्वीकार कर लिया है। उनका अनुभव है कि—

“किंस्यात् सा चित्रतैकस्या न स्यात्तस्याम्भतायपि । यदीदं ह्ययसर्थेभ्यो रोचते तत्र के वपम् (प्रमेयकमलपार्तण्ड)।”

व्यग्र या प्रसन्न होकर माध्यमिक बौद्ध कहता है कि यह चित्रता अकेली बुद्धि में भी घुम रही है। अर्थों में भी प्रविष्ट हो रही है। सभी प्रमेय प्रमाणों को यह चित्रत्व बड़े आनन्द से रच रहा है तो इस सिद्धान्त में हम क्या कर सकते हैं ? हमें कौन पूछे ? जैसा है वैसा कह दिया

है। "तवानुस्था परमार्थनत्व" (श्री महाविद्वान् धनञ्जय)
हे जिनेन्द्र नियत अवस्था नहीं होना ही आपके मतमें
सर्वोत्कृष्ट तत्व माना गया है।

अब आपके सद्बिचार में यह सिद्धान्त स्फुरित हो गया
५. होगा कि एकेन्द्रिय, नित्यनिगोदिया विकलनय असती
लब्धि अपर्याप्तक और मरकर विग्रह-गति में पाये जा रहे
जीवों में भी युक्त्यागमोक्त इन भाव अभाव रूप दोषों से
अष्ट कर्मस्त्रिप्रति-क्षण होता रहता है। विग्रह गति में
यात्र आयुष्य कर्म का आसन नहीं होता है। अन्य मातों
कर्म आते रहते हैं। जो मूर्च्छित, रोगी, समाधिस्थ, मत्त,
सन्निपाती, त्यागी, श्रावक मुनि, जी रहे पर रहे गृहीत
मिथ्यादृष्टि, अगृहीत मिथ्यास्त्री, अज्ञानी, चतुर्गति के जीवों
यानी प्रथम से ले कर दसवें गुणस्थान तक सभी समारियों
के सतत कर्मस्त्रि होता रहता है। कारण डट रहे हैं। कार्य
होगा ही। समझाना लम्बा हो गया है। मैं भी थक
गया हूँ।

जीवोंकी शरीर-रचना पर यह परामर्श और भी करना
है कि प्रति-क्षण मर रहे असंख्य जीव उन बरों आदि कर
के बनाई गई या कारणा अनुसार बन बैठों योनिस्थलियों
में यथोचित जन्म ले लेते हैं। भाग्य-तीन लोक में
अगणित स्थानों पर अनन्त योनि-स्थल बन रहे हैं। मर

गये जीवों के अनन्त कर्मों का उदय था रहा है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मामूली पात्र तमा कर्मोदय फल दे बैठता है। जीव चौरामी लार नाति की योनियों म से यथोचित एक योनि में जन्म लेना योग्य कुल, कोटि-आपन्न पुद्गलों का आहार कर लेता है। जैसे कि कोई द्विदलभन्नी जन दही, घेमन, लार न योग मिला देता है यश बहा मर रह असख्य जीव भट बहा तस जन्म ले लेते हैं।

कर्मों के फलोदय हो जानेम मात्र स्थिति पूरी हो जाना ही कारण नहीं है। योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भी मागण हैं। "द्रव्यादिनिमित्त-वशात् कर्मणाम् फलप्राप्ति-रुदय" (श्री अरुलङ्कदेव)।

किसी जीव के मरते समय तिर्यञ्च आयु और तस कर्म का उदय है। उम अतसर पर कहीं द्वीन्द्रिय क योग्य कुल या जाति खाली पड़ी है वम बहा ही बह जीव जन्म ले लेगा। भले ही उस जीवक पश्चात् त्रम व्याप्य त्रीन्द्रिय कर्म का भी उदय काल प्राप्त हो गया हो वह कर्म दत्र जायेगा या सक्रमण हो जायेगा, प्रदेशोदय हो जायेगा तथा उसे अग्रिम जन्मों म पुन कमी समाल लेंगे। कर्मों की उदय के समान उत्सर्पण, अपसर्पण, सक्रमण, उदीरण, उपशम आदि दशार्थ भी हो जाती है। कर्मों में असख्याते

वर्षों की स्थितिया पढी हुई हैं । आज ही कोई ऐसी आवश्यकता नहीं पढी है जो कि अनिर्गम्य फल उदय हो ही जाय । जिन प्रकृतियों का फलोदय नितान्त आवश्यक है उन का फल भोगना ही पडेगा । आयु का उदय अत्यावश्यक है । उसकी अविनाभागी प्रकृतियों का भी । देवोंके असाता और नारकियों के साता का भी उदय रहता है । किन्तु योग्य क्षेत्र न होने से फल नहीं दे पाता है ।

कदाचित् यदि कोई उच्चगोत्र, मनुष्य आयु, प्रशस्त साता, आदि पुण्य प्रकृतियों के उदय वाला जीव जन्म ले रहा है तब किसी धनाढ्य भाग्यशाली के घर में यदि योग्य गर्भाशय खाली नहीं है तो किसी कुलीन गरीब के घर में वह जीव जन्म ले लेगा । गरीब को ही महा धनमान् निहाल कर देगा अथवा गोद चला जावेगा (धन्यकुमार) इसी प्रकार किसी उच्च आत्मा धनिक के पुण्य-हीन जीव जन्म ले, उठे तो धनिकको दरिद्र कर देवेगा (नल) । तभी तो क्वचित् धनिकों के निर्धन और निर्धनों के धनिक या पण्डितों के भ्रूख, भ्रूखों के पण्डित तथा धर्मात्माओं के पापी और पापीके धर्मात्मा लड़के हो जाते हैं । द्रव्य आदि अनुमार अनेक परिवर्तन होते दीख रहे हैं । कथमपि प्रसंग न मिलने पर उत्कर्षण निधि द्वारा कर्मों के उदय भविष्य काल में सरका दिये जाते हैं । शीघ्रता क्या पढ़ी है तत्काल

क्रमण भी हो सकते हैं।

खाया गया या उन्मत्त कुत्ते का शिप भी इ जैकशना द्वारा निर्विष कर दिया जाता है। छोटी सी अपने रक्त की बनी हुई कुन्सी विषाक्त होकर प्राण ले लेती है। थर्ड ग्राम की टिकिट लेफर कोई सैन्टिगड ब्रास की गाडीम बैठ जाता है। कमी फस्ट ब्रास की टिकिट सुरीद कर तीसरी ब्रासके डिब्बे में बैठते हैं। कमी अत्यधिक भीड़ हो जाने से एक दो दिन पीछे भी प्रवास करना पड़ता है कारणों अनुमार प्रवास नहीं भी कर पाते हैं।

कई प्रकारों से ऊमोंका बटारा, समझौता कर लिया जाता है। ऊमों का उन्ध करके तुम्हीं उनके मोक्ता हो। तत्काल भोगने का आग्रह छोड़ो। कुछ कर्म नहीं भी भोगने पड़ते हैं। दखो सेठ राजा धनपति मानव जितने गरिष्ठ माल मेरा घी दूध पकाओ खाते पीते हैं किन्तु क्या सब का साग निकल कर शरीरमें रम जाता है? नहीं, जो थोड़ा सा रम भी जाता है उस शरीरिक शक्तिका भी क्या सत् उपयोग होता है। कदाचित् गिरनार सम्पेद शिखर की यात्राओं में कुछ उपयोग हुआ सम्भव लो।

एक चावल क चार सौ परतों में न्यारे २ चार सौ स्वाद हैं। भात के एक कौर में खाये गये दो सौ चावलों में से कितने चावलों के भीतर बाहर का स्वाद थाप ले

सकते हैं ? कौर के मात्र ऊपर चिपटे बीस चावलोंका एक थोर का कुछ स्वाद आया, 'रह भी घी, दाल, बूरे ने मिगाड दिया। शेष तो स्वाद लिये बिना यों ही पेट में ढकेल लिये जाते हैं। आपके वस्त्रों की शीतापनोद, लज्जानि-वारण शक्ति का कितना सफल उपयोग हो रहा है ? जिनके पास बढ़िया कपडे बहुत हैं वे उत्तर दें।

यात यह है कि जगत में पुष्प, फल, अन्न, वस्त्र, कितानें, पत्र, जङ्गली औषधिया, भूमि, पर्वत, जल, चिन्तायें, विमर्ष आदि बहुभाग व्यर्थ जा रहे हैं। ससार नाम मात्र है वस्तुतः सब असार है। भेद-ज्ञान बिना ससार ही निरर्थक है। एक डाक्टर ने कहा था कि एक घार प्रवी-चार के द्रव द्रव्य से पाच सौ स्त्रिया गर्भवती हो सकती हैं। एक मनुष्य पर्याय में वह कितना सफल होता है ? कितना व्यर्थ जाता है ? सोच लो। तद्वत् कर्म फलोदयमें भी लगा लो। अकाम निर्जरा और प्रदेशोदय को आप समझते हैं। तथा तप के द्वारा हुई अनन्तानन्त कर्मों की अवि-पाक निर्जरासे अन्त मुहूर्त्त में मोच हो जानेकी चर्चा को आप जानते ही हैं। अत्र दूसरी बात सुनिये।

असरण्याते प्रकारोंके नाम कर्मके उदय से वर्नीमानवों की न्यारी २ सूरतों का धार्मिक, लौकिक क्रियाओं पर भी प्रभाव पड़ता है। कोई २ मनोज्ञ जाति के मुनि इतने

सुन्दर होते हैं कि उनके नग्न शरीर को देखने के लिये स्त्री पुरुषों की भीड़ें इकट्ठी हो जाती हैं। छंजे टूट जाते हैं ऐसी दशा हो जाने पर कदाचित् आचार्य उस मनोवृत्त का आहारार्थ नगर में जाना रोक देते हैं। शरीर की सुन्दरता शुभ सस्थान, सहनन का आत्मा पर भी प्रभाव पड़ता है। तभी आद्यसहनन वाले को ही मोक्ष होना पड़ा है। सातवें नरक जानेका तीव्र पाप भी वही कर सकता है। हा छऊ सस्थानों से मोक्ष हो सकती है।

यहा लौकिक कुनड़ा ठँगना, कुञ्जरु वामन का अर्थ नहीं है किन्तु अत्यल्प अगस्य, अदरय कुञ्जरु या वामन मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है जो गठरिया कुनड़ा है या दो ढाई हाथ का वामन है उसे तो आचार्य दीक्षा भी नहीं देते हैं। लघुग्रीव, ठँगना, काष्ठा, पगु पुरुष जिनदीक्षा नहीं ले सकता है। अष्टाग निमित्त-ज्ञानी आचार्य महाराज शरीर के गुण दोषों को पहिचानते हैं। ये शारीरिक गुण दोष आत्मा पर भारी प्रभाव डालते हैं। आप स्वयं समझ लेना। अलम्।

सुई के अग्र भाग पर जितना जल आता है उसमें तीनों लोको के सम्पूर्ण व्रस जीवों से भी अधिक जल-कायिक जीव हैं। अर्थात् कर्म भूमियों में चातुर्मास में चाहे जितनी सम्मूर्द्धन व्रस राशि उपज जाय उसमें जितने

जम जीव है या अन्यत्र घर्षा के ऊपर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय हो तथा मध्य लोक के मानव या पंचेन्द्रिय तिर्यंचो के शरीरों में जितने भी विकलत्रय जीव भरे होय अथवा विकलत्रय शरीरों में भी पुनः जिनदृष्ट अनन्यस्था-क्रात अमरुपाते विकलत्रयान्तर हो चालीसवीं, पचासवीं कोटि पर जाकर पूर्वजती त्रसों का काय ही तदाश्रित त्रस-त्रों का शरीर उन बैठेगा। यों अनन्यस्था टूट जायगी। इस दोष को तो हटाना ही है।

एवं चार्गे गतियों के पंचेन्द्रियों को भी मिला लिया जाय इन सब त्रसों से एक जल विन्दु में असख्यात गुणें जलकायिक जीव हैं। स्थरेणु से भी छोटे एक निगोद शरीर में तो अनन्तानन्त एकेन्द्रिय जीव हैं। जो कि निगोद के अतिरिक्त सभी छह काय के असख्यातासख्यात जीवों तथा इनसे अनन्तगुणें सिद्धों से भी अनन्त गुणें हैं। अतीत कालके समयसे भी। उन सभी जीवों के कर्म नोकर्म विलसोपचय सब कुछ उमी रेणुस्थानमें निर्वाध ठहर रहा है “धन्या अग्नाहशक्ति अचिन्त्यप्रभावा”।

ये सब अपने शरीरों को स्वयं बनाते हैं। इन सब जीवों में शक्ति रूप से सिद्ध परमात्मत्व विद्यमान है। जीव स्वपुरुषार्थ से यदि मोक्ष प्राप्त कर लेता है फिर स्वशरीर बनाना तो सर्वथा तुच्छ कार्य है।

किमी मनुष्यके मूत्राशय में पथरी रोग हो जाता है । उस पथरीमें पृथ्वी कायिक एकन्द्रिय जीव हैं मनुष्य काय में पूरा एक मनुष्य पञ्चेन्द्रिय जीव है मनुष्यके मासमें तथा रक्त में अनेक निकलनय और बाहर निगोद जीव भरें हैं । तत्काल के मूत्र में कोई जीव नहीं है प्रासुक है । यदि सड़ जाय, विकारी हो जाय तो मूत्र या लार में भी जीव उपज जाते हैं ऐसे तो रोटी, दाल, पूरी, लड्डू, अमरूद, केला के सड़ जाने पर भी इनमें निकलनय हो जाते हैं । उदर रोगसे किसी २ के पेट में ही मल में सुई सट्टा या पड़े भी फीड़े उपज जाते हैं । इसका हम क्या करें ?

द्रव्येषु पुरीषादिषु विचिञ्जित्सा नय करणीया" (असृत्तघट्ट)

तभी तो सागारधर्मासृत्त में उगाल, मूत्र, रक्षेष्म आदि को अनुपसेव्यों में गिनाया है, प्रसघात में नहीं । यों मूत्र प्रासुक होते हुये भी असेव्य है शिष्ट संप्रदाय में निंद्य है । अरूपूरय है अशुद्ध है । शुद्ध्यर्थ अपना मूत्र भी बाहर पड़ गया तत्काल धो देने योग्य है । यों तो चढ़ाई जा खुकी सामग्री उच्छिष्ट भोजन (मूठिन) मर्द्दा का धर्तन, मानवके लिये लहगा करिया, चूडियां, गजर, स्त्रीके लिये कोट, अग-रखा, टोपी तथा छाट के बने कुत्ता, बिन्ली, मुर्गा, आदि भी प्रासुक हैं किन्तु अनुपसेव्य है अतः त्याज्य है । तीव्र भाव हिता भी है ।

रत्नकरण्डश्रावकाचार की संस्कृत टीका में श्री प्रमाचन्द्र आचार्य ने भी मल मूत्र लार आदि को प्रासुक माना है। वृक्ष में अनसृष्टिकायिक जीव है किसी २ वृक्ष में चार पांच गज लम्बी, चार पांच इंच चौड़ी, एक घंटे आठ इंच मोटी पथरी, (गामा-ग्रावा) उन बैठती है इसमें असख्य पृथ्वी कायिक जीव हैं जैसे कि मिट्टी मिले गंदले पानी में पृथ्वीकायिक, जल कायिक दोनों जाति के जीव हैं। तद्वत् गाय शरीर में पचेन्द्रिय स्त्री वेदी, गर्भज एक जीव है। उनके मांस तथा दुग्धाशय में असख्य विकलत्रय हैं किन्तु दूध मर्नथा अचित्त है। इसी प्रकार सीप का मोती भी प्रासुक है। प्रासुकत्व और शुद्धता की व्याप्ति नहीं है "प्रगता असरो यस्मात्" दूर हो गये हैं प्राणी जिससे वह प्रासुक है प्रासुक होते हुये भी उगिलन, लार, भूटा छोड़ दिया भोजन अशुद्ध है। प्रासुक नहीं होते हुये भी हाथ, करम, (पँचि से लेकर बाहरला छोटी अंगुली तक मांसल भाग) शुद्ध हैं हाथ के रक्त मांस चर्म में विकलत्रय जीव हैं ता भी हम अपने हाथों से प्रतिपा स्पर्श, मुनिदान, भोजन करते हैं। करमसे लोटा उधकाकर पेशाबके हाथ धोलेते हैं। यह वस्तु स्थिति है घृणित पदार्थके प्रचारका भाव नहीं है।

जो जीवित शरीर का अनयन उन बैठे, वह सजीव है। वहिःकेश, पके नख, यद्यपि मूल शरीरके अव-

यत्रपन से त्र हो गये हैं । अतः मूल जीव उनमें नहीं रहा है फिर भी अन्य विकलत्रयों का आधार होनेसे मज्जीव है, अशुद्ध है । दूध या मोती में यह चर्चा लागू नहीं होती है बृचका सूखा पत्ता, पकाफल, प्रासुक है । कोई २ वनस्पति प्रथम अत्रस्था में अप्रतिष्ठित प्रत्येक रहती है फिर सप्रतिष्ठित हो जाती है । पुनः सुखा देने पर, तपा देने पर, प्रासुक हो जाती है "सुकरुपक तत" हा तस्यशरीर वर्तमानमे कथमपि प्रसुक नहीं हो सकता है । तस्य शरीर का मास भी पर्यायान्तर धारण कर शुद्ध हो जाता है । विकलत्रय या पचेन्द्रिय जीव मर कर उनका शरीर कालान्तर मे शुद्ध पुद्गल बन सकता है । कायस्थिति का अवसर टाल दीजिये । खाये गये शुद्ध रोटी, दाल आक, दही, घी चार या पांच घण्टेमें ये मास बन जाते हैं यवनों या चिन्ली आदि द्वारा खाया गया मास भी चार छ. घण्टे में निर्जीव मल, मूत्र बन जाता है मस घन्चा गाढ़ दिया जाता है घोड दिनों में मिट्टी हो जाता है सुनते हैं कि अगूमें म रक्त का खाद लगाया जाता है किन्तु द्राघा तो शुद्ध है । तत्कालीन पर्याय पर भक्ष्य, अमक्ष्य व्यरस्था अवलम्बित है । पहिली, पिछली पर्यायों को न चितारो । माम, टट्टी, पेणार, चर्चा, हड्डी, गूथ सब खाद होकर दस दिन में तोरई, लोका, रकडी, सीरा बन जाते हैं । तोरई लोका खाया जाकर छ घण्टेमें

मांस हो जाता है।

अर्चय, स्पर्शी-सन्तोष, व्रतोंमें भी तत्काल की पर्याय का लक्ष्य रखो। हमारी चीजें जन्मान्तरों में दूसरोंकी हो जाती हैं उनको उठा लेनेमें चोरीका दोष लगेगा। तब हम अन्यकी वस्तुओंके स्वामी बन जाते हैं परिणीता स्त्री दूसरी पर्याय में उद्वन बन सकती है। मा बेटी भी जन्मान्तर में स्त्री बन सकती हैं। बाप बेटा बन जाता है यद्वा तक कि स्वयं आप अपना बेटा बन जाता है। भक्ष्य भोजन को गले से उतरते ही स्वपर के लिये अभक्ष्य अवस्था हो जाती है। मुख भरते ही दूसरे के लिये अभक्ष्य पर्याय हो जाती है। शहर का सब मल, मूत्र, कीच, मास, रक्त, सड़ी मोरिया उहकर म्यूनिस्पैलटी द्वारा निकटवर्ती खेतों में डाली जाती है। वे कुछ दिनों में सुन्दर सरस फल, शाक, पुष्प, अन्न आदि स्वाग-घर के त्रतियों या मुनियोंकी आहारदान सामग्री बन बैठती है। साभरकी स्त्रीलमे पड़गया कोई भी पदार्थ लक्षण बन जाता है। यो आचार शास्त्रके अनुसार वर्तमान पर्याय पर शुद्धि अशुद्धि व्यवस्था समझ ली जाय। यदि घृणा होय तो कुछ पूर्व की अवस्था अनुसार त्याग कर दो। यों आचार शास्त्र, स्वेन्द्रियज्ञान, सूर्य आलोक से प्रकाशित वर्तमान शुद्ध पदार्थ का भक्षण करना चाहिये वैधों ने तो मल को जीवनमूल मान गया है।

“मलायत द्विजीवन” (योगरत्नाकर)

“तित्थयरा तृप्पयरा इलघर च्छाय वामुदेनाय,
पडिनामुदेन भोमा आहारो णत्थिणीहारो” ।

तीर्थङ्कर और उनके माता पिता तथा बलभद्र चक्रवर्ती

नारायण, प्रतिनारायण, भोगभूषिा इनके आहारहें नीहार (मलमूत्र) नहीं है। यह सिद्धान्तकी बात है। किंतु रोगों ने आधुनिक मानव के जीवितव्य में मल सद्भाव को कारण माना है। कुछ मल (विषा) मलाशय में रहना चाहिये। पूरा मल विसर्जित जाने पर जीवन सन्तुष्ट हो जाता है।

अत एव सूक्तमनिगोदिया अर्थात् से लेकर केवल-ज्ञानी तक सभी जीवों के ज्ञान, सुख, लाभ, बल, भोग आदिमें धीरान्तराय कर्म का चयोपशम या क्षय हो जाना आवश्यक घटाया है।

“वीर्यायुत बल पुसा” (यो० २०) आज पुरुषों के पुरुषों को बल वीर्याधीन माना गया है- कोई विरोध की बात नहीं है। पुरुष के शरीर में धातु रूप वीर्य और स्त्री शरीरमें रस रहा शोणित सचित हैं किन्तु गर्भाशय में पहुँच गये शुक्र और शोणित अचित्त हैं, ऐसा सरीथसिद्धि और राजगोर्तिक में योनि सूत्र की टीका में लिखा है। माता की गर्भ थैली में तो माता का पचेन्द्रिय जीव और मृन्ते विकृत-लनय विद्यमान है अत सचित है। जीवित गर्भाशय में

पहु चरु पृथक् हुये शुक्र शोणित दोनों भट्ट अचित्त हो जाते होंगे पुनः उत्पद्यमान जीव करके अहरियमाण हो जाने पर सचित्त हो जाते हैं। तावे के तारमें त्रिजली का करैण्ट अचित्त है। गटन दया देने पर तन्त्र में भट्ट असख्यात अग्निऋाय के जीव उपज जाते हैं। दियासलाई अचित्त है गूढ देने पर तत्काल अग्नि ऋयिक असख्य जीव जन्म लेलेते हैं। तुम्ह जानेपर सब मर जाते हैं। सूखे पके प्रासुरु का भी नहीं खाने में बड़ा इन्द्रिय-सयम पलता है।

“रामादि प्रभवश्चिन्न कर्मण्धानुरूपत,
तच्च कर्मस्व हेतुभ्यो जीवास्ते शुद्ध्य शुद्धित”।

आत्मा के पुरुषार्थ और कर्मों की गति विचित्र है। कदाचित् वैराग्य है, और बहुभाग राग परिणति है। देवोंके समान निकट भव्य सम्यग्दृष्टि नारकियों के भी कभी २ ऐसी भावनाएँ उपज जाती हैं कि कन मनुष्य जन्म धारण कर सयम पालन करूँगा ? श्रेणिकुचर महापद्मभावी जीवके तो अनेक बार ऐसी भावनाएँ हा रही होगी। सम्यग्दर्शन के साथ सम्बेग, निर्वेद गुण लग रहे हैं। सम्यक्त्री मोगोरु समान दु स वेदनाओंको भी कर्मफल जानकर उदासीनता के साथ भोगते हैं। आत्म-तत्त्वपर लक्ष्य पहुँच जाता है।

नारकियों का वैक्रियिक शरीर मात्र नरकायु वाले एक पंचेन्द्रिय जीव का आधार है अब जेपरीत्या अचित्त है

नरको में एकार, पीर, चर्बी, मेद, चूहे, गधा, ऊट कुत्ते का सडा मास आदि मरीछा घिनामना पुडल भरा है, जिमम कि इतनी दुर्गन्ध आती है यदि वह यहा मनुष्यक्षेत्र म डाल दिया जाय तो दो दो, चार चार, दशदश कोप क जीवों को मार डालेगा । तथा अन्य वहा नरकोम तपायी हुई कड़ाई या उष्ण लोह से भरी हुई डेगें हैं ।

तथा वैतरणी नदी मे जो मलिन दुर्गन्ध द्रव वह रहा है ये सब अचित्त हैं इनमें कोई चादर एकेन्द्रिय या त्रिकल-त्रय जीव नहीं है । नरकोम पचेन्द्रिय जीव या एकेन्द्रियजीव ही हैं । नरकों मे भेडिया, रघेरा, कुत्ता, सर्प, बिच्छू, लट, कातर, फलीला, षौआ, उन्लु आदि भयकर जीव पाये जाते हैं अथवा भाला लोहखी, तलवार, बर्छी, घन कोल्हू चाकी, कीलकशय्या त्रिशूल आदि जीव या अस्त्र शस्त्र पाये जाते हैं । ये सब नारकियों के किये गये एकत्व (अपृथक्) विक्रिया के शरीर हैं । उनम वैक्रियिक समुद्घात कर रही केवल एक २ नारक पचेन्द्रिय जीव हैं अन्य सभी प्रकारों से अचित्त हैं नारकियों की अकालमृत्यु नहीं है । पृथक् विक्रिया नहीं कर पाते हैं ।

इसी प्रकार देवोंके क्षेत्रों म भी बढ़िया पृथ्वी सुगन्ध-द्रव्य, उत्तम जल, नीरोग वायु पर्वत, नदी, खेत, वाग, सरो-वरों म मात्र एकेन्द्रिय जीव है या अचित्त पदार्थ है । देवो ।

के यहाँ भी एकेन्द्रिय या पंचेन्द्रिय जीव ही पाये जाते हैं। देवता अपने शरीर से भिन्नरूप से अश्व सिंह हाथी भ्रमर महल मंडप कूप वावड़ी उपवन नदी सरोवर पर्वत आदि स्तूपों की पृथक् विक्रिया कर लेते हैं।

देव अपृथक् विक्रिया भी करते हैं। उन सभी वैक्रियिक पदार्थों में समुदात नामक प्रयत्न से देवों की आत्मा के प्रदेश भरे हुये हैं। अन्य सभी प्रकारों से वे अचित्त हैं। देव नारकियों का माम स्थानीय पदार्थ अचित्त है किन्तु अनुपसेव्य है, नारकी परस्पर में कषायग्रह वैक्रियिक जीवों का अन्योन्य भक्षण कर जाते हैं उस में जीव-बन्ध समथा नहीं होता है पीडित को दुःख होता है। परन्तु घातक को महती सकल्पजा त्रसहिंसा का तीव्र पाप चद्र बैठता है बध्य को रौद्रध्यान से।

ये सब सचित्त अचित्त की व्यवस्था जो गोम्मटसार त्रिलोकसार में बताई है उसको उद्देश्य जीवों को पहिचान कर उनकी रक्षा करते रहना है। हम लोगों क प्रमादग्रह भारी हिंसा हो जाती है, एक शौकीन लडका साबुन लगा र कर गरम पानी से नहा रहा है। साबुन से कपड़े धो रहा है। इस कृत्य से वह शौकीन जीव करोड़ों त्रस जीवों को मार रहा है। गार्मों में खेत या कच्ची छत अथवा रेत वाली भूमिमें पटा रखकर खान करते तो यह हिंसा अत्यल्प

हो सकती है किन्तु शहर की गन्दी सड़ी नालियोंमें अमर-
त्य तस जीव बढ़ते हैं उसमें उष्ण जलतीक्ष्ण क्षार सातुन
के आते ही लाखों जीव तत्फाल मर जाते हैं । जैसे कि
तेजाब डालने से । इसी प्रकार मरुगयन को रेत म या धरे
पेतमें डाला जाय तो अच्छा है । यदि मोग्गिओम बहा दिया
जाय तो अमरत्य जीव उपज कर मरजादगे । मोरी म सड़
रह एक चानल से पचास हजार टश्य लट्टे बन जाती हैं ।
अदरय तसों की गणना कठिन है यों घुन और पर्ई एट-
मल जूआ आदि को भी योग्य रक्षित अमरत्य स्थान में
क्षेपना चाहिये ।

एक बात यह भी समझ लेने की है कि अनन्तानु-
बन्धी या सम्यक्त्वके मस्कार समान विख्यात्व का भी मस्कार
चतुत् काल तक 'प्रवर्तता है । गृहस्थ पुरुष जैसे उत्तरोत्तर
मन्तानों द्वारा लाखों करोड़ों वर्षों तक जीवित रहना चाहता
है । उसी प्रकार बैल, घोड़ा, भुत्ता, तर्तया, मरुड़ी, घना,
गेहू, आदि पर्यायों भी चाहे अनचाह उत्तरवर्ती पर्याय
सन्तानरूप से चिर काल तक स्थिर बनी रहती हैं । यों ही
जीव के सद्गुण, अमद्गुण या स्वभाव विभाव पर्यायों
मस्कार रूप से अनेक वर्षों तक धाराप्रवाह चलती रहती
हैं कारणों द्वारा यथोचित उत्पाद व्यव शीव्य भी होते रहने
हैं कालाणुर्थों की स्त्रीय बतना द्वारा प्रतिक्ष उत्पा-

दादि करते रहने की देर ही पड़ गई है। एक इतर निगो /
 दिशा जीरके दाई पुद्गल परिवर्तन काल तक अनन्त भगो
 में मिथ्यात्व का उदय बना हुआ है। यहा पूर्व मिथ्या-
 त्वोदय के संस्कार भी उत्तरवर्ती अगृहीत मिथ्यादर्शनों में
 पहुच रहे हैं।

जैसे कि एक रूमाल पर एक घण्टे में सौ बार इत
 छिड़का जाय तो पूर्ववर्ती सुगन्धिया उत्तरवर्ती सुगन्धियों
 में अपनी घासनायें जमाती रहती हैं। जल प्रवाहके समान
 परली शोर फंफुते रहनेकी तलब जो ठहरी। प्रत्येक द्रव्य में
 विद्यमान हो रहे अस्तित्व गुण की छाया से सभी अनन्त
 गुण त्रिकाल अस्तिरूप हैं। द्रव्यत्व गुण के तादात्म्य से
 सभी गुणोंका द्रवण होरहा है रक्ताका प्रभात श्रोताओंपर और
 श्रोताओं की काति बक्ता पर पडती है। यों जैन सिद्धान्त
 में छायावाद स्वीकार किया गया है। पूजन करते समय
 फटी मैली धोती, दुपट्टा, बुरीमामग्री, टूटे बर्तन, धिना-
 मना स्थान ये परिणामों पर तत्काल अशुभ आक्रमण करते
 हैं। बढ़िया सुन्दर उपकरण विगेष शुद्धि करते हैं। पापसे
 शुभ राग अच्छा है यही क्रम रसोई घर, निवाह स्थल, दुकान,
 बाजार में भी लगा लो। जगत् में प्रभाव्य प्रभावक की
 सनक सर्वत्र छा रही है।

एक पर्याय या गुण दूसरे पर्याय या गुणस्वरूप नहीं

जाता है किन्तु गुण या पर्याय की दृश्या पदती
 । और जो अविभागप्रतिच्छेद घट, बढ़ जाते हैं जैसे
 के अहिंसा और अचौर्य के माय यदि नष्टचर्य है तो वह
 अकले ब्रह्मचर्य से बहुत बढ़ा हुआ है । सट्टिसार भील
 की कथा पढ़ लो । एक यसन का त्याग और सातों
 यमनाह त्याग म भी ये ही चर्चा लगा लेना । एक मोती
 यदि पाच रुपये का है तो सदृश दो मोती तीस रुपये के हैं
 जैसे ही चार मोती सौ रुपये के हो जाते हैं । एक घोड़े से
 सदृश दो घोड़ों का मूल्य चौगुना होता है यदि घैसे ही
 पत्तीस घोड़े हों तो उनका मूल्य करोड़ों रुपये हो जाता है ।
 इसी तरह से आत्मामे नियम रहे अनेक दोषों या गुणों की
 परिणतियों मे परस्पर प्रभाव डालना रूप क्रान्तिप्रसार से
 पुण्य पाप पन्थ म तारतम्य हो जाता है । प्राय सभी जीव
 पुद्गलोंम प्रभाज लेने देनेकी सहज टेज पही हुई है । जाड़े
 म मरराने की पटियो पर पाव घर दो वह आपकी गर्मी
 को चाटेगी बदले म आपको शीत दे देगी । तभी तो हम
 स्पर्शरोगी, दरिद्र, कुचनी, मूर्ख, सर्प, कमाई, व्यभिचारी
 से दूर रहते हैं और सज्जन, धर्मात्मा विद्वान्, सदाचारी,
 त्यागी, जितेन्द्रिय भगवान् आदि का सत्सग करना
 चाहते हैं ।

कारण कोई कल्पित नहीं या अमन् नहीं, किन्तु वस्तु-

भूत है। जब कि गुण या दोषों में दूसरे गुण, दोषों के परस्पर प्रमाणप्रसार से अत्रिभागप्रतिच्छेद (शक्ति अश) बढ़ गये हैं। भयस्थान पर जाते हुये एक की अपेक्षा दो और दो की अपेक्षा शस्त्रधारी चार को भय रूप लगता है। प्रत्येक की आत्मा में निर्भयता उठ गई है। अनुभव कर लो। अन्योन्य छायावाद डट रहा है। नौकर के साथ सेठ नी आये और सेठनी के साथ नौकर आया इन दो पाष्योमें तारतम्य है। बामी तोरई फी ताजी तरकारी और ताजी तोरई की वासी तरकारी के सवाद में इस ही कारण अन्तर पड़ गया है। दाल के साथ रोटी और रोटी के साथ दाल खानेमें भी कुछ विशेष रहस्य है। इस विषय पर बहुत नहीं कहवाओ विद्वानों के लिये सकेत मात्र पर्याप्त है। यों हम अचित्त घृणित लार, मूत्र, चाण्डालस्पृष्टभाण्ड छत पत्त आदिकों सचित्त जल मिट्टी, अग्नि, वायु से शुद्ध करलेते हैं। यहा भी प्रमाणत्व प्रमेयत्वके समान कारणत्व का र्यत्न घुस रहा है। यों अचित्तों को सचित्तों द्वारा उहु एकेन्द्रिय घात करते हुये पवित्र करे जाओ।

११ - अएसहस्तीमें एक कारण से जितने कार्य होते हैं उतने स्वभावमेद उस कारण में वस्तुभूत मानो इस मन्तव्य पर बहुत धल दिया है। दाढ़ोंमें हलुआ, रमही, पेडा, पूरी, लड्डू, चने, सुपारी, खानेके शक्तव्य ग न्यारे २ हैं। हलुआ खाते

यदि सुपारी या जाम तो आप चाँक पड़ेंगे क्योंकि दाताम थोड़ी शक्ति लगा रही थी घोगा दिया गया । छ महीनेमें एक इ च गाल उड़ने हैं उहाँ एक इ च में असर्याती उत्स-पिणी असर्याती कालके समयों से भी अधिक प्रदेश है । छुरा हटा कर पुन शीघ्र वहाँ छुरा फिराने में जितना काल लगता है उतने समय में कटा हुआ गाल असर्यात प्रदेशों पर ऊपर उभर आता है । मृदग पर धम् के पश्चात् किट्ट बजाने में असर्यात समय लग जाते हैं । इतने कालमें इन्द्र पाचों मेरुओं की वन्दना कर आ जाता है । आसने अठारहवें भागमें भी आयुर्बोध योग्य आठ ही त्रिभाग क्या करोगें अरबों क्या, ठीक जघन्य असर्यात से बढ़कर भी त्रिभाग पड़ सकते हैं । जघन्यपरीतासर्यात को बिरलन, देय, राशि रखकर आवली बनाई जाती है । लब्धपूर्यास्त्र की आयु आयुलि से अधिक है । जैसे दम हजार सख्या में सौवें भाग दो और दसवें भाग चार, पाचवें भाग पाच और त्रिभाग आठ पड़ जाते हैं ।

इसी प्रकार आयुलि में असर्यातवें भाग जब जघन्य परीतासर्य त्रिभाग हैं तो त्रिभाग (तीसरे भाग) तो इन से भी अधिक पड़ जाते हैं । आयुष्य कर्म का बन्ध कर्मभूमि के मनुष्य तिर्यग्नोः आदिम आठ त्रिभागोंमें ही अन्तर्मुहूर्त तक पड़ेगा । अन्यो में नहीं । यदि आठ अपकर्षोंमें परभव

की आयु न चन्वे तो अमत्सेपाद्धा में अत्रय उन्ध जायगी देव और नागरियों में अन्त के छः मासों तथा भोगभूमियों के अन्तिम नौ मासों में आठ त्रिभाग आयु उन्ध योग्य है। पहिले पिछले त्रिभाग अयोग्य है। जैन सिद्धान्तोंमें अनेक सूक्ष्म तत्त्व उताये गये हैं। परिशीलन करने वाला चाहिये। दश जन्मों तक वर्तमान उपलब्ध ही जैन वाङ्मय का अध्ययन करते रहो, अनेक नव्य मव्य प्रमेय रत्न हस्तगत होते रहेंगे। स्वाध्याय में अलीकिक्र आनन्द प्राप्त होता है।

बितण्डा या कुचोद्य करनेमें नहीं। जो कुछ रुद्धा गया है या कहा जायगा वह आगमोक्त ही है। हमारी गाठ का कुछ नहीं है आचार्यों पर उत्तरदायित्व है। तत्वों का ज्ञान ही उपादेय है। जगत् में ज्ञान सर्वोत्कृष्ट पदार्थ है। एकेन्द्रिय विकलत्रयों का छोटा सा ज्ञान भी महत्वपूर्ण कार्यों को करता है। हित प्राप्ति और अहित परिहार करना ज्ञान का ही कार्य है। "द्विताहितप्राप्तिपरिहारममर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्"। (पाणिन्यनन्दी)

इष्टप्राप्ति, अनिष्टपरिहार करने में मन की मत घर्माटो का विचारक बड़े ज्ञान (श्रुत) मत्वियों के होते हैं। किन्तु छोटे श्रुतज्ञान मभी एकेन्द्रिय विकलत्रयों के दो जाते हैं। और मत्रसे बड़ा केवलज्ञान महाराज तो मत्री, असंज्ञी दोनो र नहीं होता है किन्तु उभयव्यपदेशरहित परमेष्ठी के

होता है। वहा विचार का कुछ काम ही नहीं है। अविधि और मन पर्यय म भी विचारणा नहीं है। मन इन्द्रिय का व्यापार भी नहीं है। सूर्य प्रकाश या मेघवत् प्रवृत्ति है। विचार करना परोक्ष ज्ञान है (अमेय कमल मार्तण्ड तर्क प्रमाण)। (प्रमेयरत्नमाला)

आजकल के कतिपय जैन कुछ छोटे मोटे ग्रन्थों का अक्षरम स्मरणाद्यकर अपने को भारी विद्वान् समझ बैठने हैं। किसी २ रात का तीव्र हठ पखे रहते हैं। छोटे बड़े सभी श्रोता स्वयम्बुद्ध बन रहे हैं। आठवर ? गुरु बिना ज्ञान टुटित रहता है। यह ज्ञानार्थी मे मयूर का दृष्टान्त देकर समझाया है कि मोर गुरु के बिना नृत्यरत्ना सीखा है, अच्छा नाचता है, किन्तु गुरुशिष्या के बिना नाचने में उसका गुण अग दौखता रहता है। अतः ज्ञान, ध्यान, आचरण क्रियाओं में गुरु की शिष्या आवश्यक है। तीर्थ-ङ्कर वत् जन्म से ही प्रत्येकबुद्ध उपजने की उनकी मान्यता शिष्ट सम्प्रदायमें आदरणीय नहीं है गर्हणीय है। जैनों में निगुरापन फैलता जाता है। तभी अनेक मार्ग बनते चले जा रहे हैं। निज को स्वयम्भू माने हुये अनेक मानव, या आधुनिक छात्र अपने शिष्यक गुरु का नाम का गुणकीर्तन करने में हैं। यह दोष बहुत बुरा है।

यहा तक कि गाने बजाने वालों या अखाड़े के लोको में भी गुरुओं का आदर किया जाता है। भले ही गुरु गुड और कोई रूढ़, मानी चेला शम्कर हो जाय तो भी गुरु ने भावपूर्ण मनोयोग से शिष्य को संस्कृत किया है वह उपकार छोटा नहीं है। माता पिता गुरुसे ही अभिमान करना कृतज्ञता नहीं। कृतघ्नता है।

कोई भाई गाय के मास में गाय सारिखे और भैंस के मास में भैंस सदृश विकलत्रय जीव मानते हैं यह बात जचती नहीं, कारण कि भैंस गाय तो गर्भज ही है उनके मास रक्तस्थ जीवों को तत्सदृश कहना अस-मञ्जस है। यो तो मनुष्य के चर्वा, मेद में भी मनुष्य समान विकलत्रय मानोगे तत्र सिद्धान्त से विरोध आवेगा, क्योंकि मनुष्य तो मज्ञी ही होते हैं। कर्मभूमि, भोगभूमि के या म्लेच्छ नर तो गर्भज ही होते हैं। हा सम्मूर्च्छन अपर्याप्त मनुष्य तो कर्मभूमि की स्त्रियों के गुप्ताङ्गो में घाहर चुपटे रहते हैं। तीमरी जाति के मर्त्य हैं ही नहीं। अतः अस शरीरों में तत्समान विकलत्रयों की मान्यता सिद्धान्त और युक्तियों की कसौटी पर ठीक नहीं उतरती है। यों वादरायण तुल्यता मानते रहने में कोई तत्व नहीं। कोई इनके मर्यादातिक्रान्त दूधमें भी तज्जातीय जीवों की कल्पना कर लेते हैं वह किसी प्राचीन शास्त्र में देखी नहीं।

कोई वैज्ञानिक वृक्ष बेलोंम पाचो इन्द्रियां मानते हैं। वैशेषिक तो मन भी मानते हैं। यह मानना असत्य है कि कोई पेड़ या वल्ली ठीक स्थान देख कर आगे सरकती है वृक्ष कीड़ोंको पकड़ते हैं, मनसे विचारते हैं छुई छुई छूते घुरझा जाती है। जड़, धन या खात की ओर जाती है ये सब एकेन्द्रिय की या पुद्गल-रुत परिणतिया हैं डेल अघ पतन शील हैं अग्नि ऊर्ध्वगमनस्वभाव है। इस में आस मन की आवश्यकता नहीं। वृक्ष बेलोंमे मात्र एक स्पर्शन इन्द्रिय है। कोई डाक्टर दही में जीव मानते हैं। दही जीवों के बिना नहीं जम सकती है यह कुयुक्ति है। कृथा, धरफ, सातुन, घक्खर भी जम जाते हैं। दूध, दही म हम द्वारा पृथक् करने योग्य चैथड़े से हाते हैं उनको जीव मान लेना अनुचित है। रक्त, मास, नारगरस, चर्म, कफ, फलरस इनम भी चैथरा होते हैं रेशों को जीव न मानो, या दही शुद्ध है अचित्त है। वृषो, पत्तों, वृणों में भी स्नायुयें हैं। वे जर्म जीव नहीं हैं।

कोई आग्रही श्रोता किमी देश काल मे पड़ गई रूटि को छोड़ते नहीं हैं चाहे वे रूटिया इस युग म धर्म की क्षति कर दें। यों जैनों म बाहर से आई कतिपय मिथ्या रूटिया पनप गई हैं। इन हठों ने श्री महाश्रीर स्वामी के ठोम, उदार, स्याद्वादाद्ग शासनको छिपा दिया

है। जैसे कि कोई श्रोता ज्ञान में प्रतिबिम्ब पढ जाना मान बैठे हैं कि तीनों काल के पदार्थों का त्रैलोक्यज्ञान म आकार (तत्सर्वीर) पढ जाता है। भला इस अज्ञानका भी कोई पार है जन ? भूत भागी पदार्थ हैं ही नहीं तो ज्ञानमे प्रतिबिम्ब कैसे पढ सकता है ? विद्यमान भूत का भूत मे ही बिम्ब पढता है, अमूर्त मे नहीं। जैन न्याय-शास्त्रों मे इम त्रैलोक्य के साकार-वाद का बहुत खण्डन किया है। "साकार ज्ञान निरोकार दर्शन" यहा आकार का अर्थ ज्ञेय का विकल्पनात्मक उल्लेख करके समझना समझाना है प्रतिबिम्ब पढ जाना नहीं। प्रतिबिम्ब या छाया तो पुद्गल की पर्याय है।

आकारोर्थाविकल्पः स्यादर्थः स्वरगोचरः,
सोपयोगो विकल्पोऽज्ञानस्यैतद्वि लक्षणम् ।
नाकारः स्यादनाकारो वस्तुनोनिर्विकल्पता,
शेषानन्तगुणाना तल्लक्षणं ज्ञानमन्तरा ।

(पचाध्यायी)

इसी प्रकार जिनपूजन, स्त्राध्याय, तीर्थयात्रा, ध्यान करने मे भी कोई आलसी कह देते हैं कि भाई क्योंदय होगा तो पूजन, ध्यान करलगे। भला चायिक-सम्यक्त्व, महाप्रत, उपशमश्रेणी, क्षपकश्रेणी पर चढ़ने के भी क्या कोई कम नियत है ? एक सौ अड़तालीस कर्मों मे

से प्रताड्ये ? । मनोगदन्त घातें अच्छी नहीं ।

चायोपशमिक भावों में अत्यल्प देशघाती का उदय ममक लो, पारिणामिक भावों में तो कोई कर्मोदय नहीं है । कर्मोंकी मात्र उदय अवस्थासे हुये कार्योंमें कर्मनन्य मानो । आत्मा के घोर प्रयत्न करने पर हुई कर्मों की क्षयोपशम, उपशम, क्षय दशाओं से उपज गये भाव ता महान् पुरुषार्थ हैं इनको कर्मों से हुये नहीं समझ घटना । प्रत्युत कर्म इन के विघातक हैं । प्रतिबन्धक या विध्वंसक को फारक नहीं मानना चाहिये । इत्यादि । कतिपयबाह्य धार्मिकक्रिया-यों परभी क्वचिद् कर्पायें तन जाती हैं । कोई स्वज्ञेयातिरिक्त को सुनना भी नहीं चाहते हैं प्रापणिक शास्त्रों को दिया दो तो भी अपना आग्रह नहीं छोड़ते हैं । इनका मगगान् पेली है । जिन पायात् ।

जिज्ञासु ध्रात ! जिस प्रकार ज्ञान का अव्यवहित फल अमान की निवृत्ति हो जाना है और हेय का हान करना उपादेय का ग्रहण कर लेना तथा उपक्षेणीय में राग द्वेष न करना ये आनुषङ्गिक फल हैं । उसी प्रकार मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्य का त्याग कर देना, सप्तव्यसनों की आसड़ी, आठ भूलगुणों का धारण, देवदर्शन, दया, जिनवृत्त, मुनिदान, प्रतिष्ठा करना, तीर्थयात्रा करना, जाप्यदेना, स्वाध्याय, अनुभव-चिन्तन, धर्म्यध्यान,

त्रतों को धारना, पाच समिति पालना, दीक्षा, केशलोच, उपवास, कायक्लेश, कपायनिग्रह, इन्द्रियदमन, गुप्तिया, उत्तम क्षमा, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, प्रायश्चित्त, प्रभावना, चात्सल्य, परोपकार, कृतज्ञता, परीषदजय, शान्ति, उपेक्षा आदि धार्मिक आचरणों का प्रधान फल भी कर्मोंका सवर हो जाना और सचित कर्मों की निर्जरा होना है। जितना निवृत्ति अंश है उससे दुष्कर्मों का सम्बर होगा तथा जितना योगनिरोध या इच्छानिरोध भाग है उस तप के द्वारा कर्मों की निर्जरा होगी।

हा प्रवृत्ति अश से पुण्यास्रव हो जाता है वह गौण-फल है। लेश्या से थोडा पापास्रव होगा भी तो इसमें स्थिति और अनुभाग अत्यल्प, नगण्य पडेंगे। तभी तो सम्यग्दर्शन के अभिमुख हो रहे सातिशय मिथ्यादृष्टि जीव के सम्यक्त्व की उत्पत्ति, श्रावक, मुनि अवस्था, उपशम-श्रेणी, क्षपकश्रेणी आदि दश स्थानोंमें असख्यात गुणी निर्जरा हो कर गौण ही कर्मों का क्षय हो जाता है। डेढ गुण--हानि प्रमाण अनन्तानन्त सचित कम क्या यों ही क्रीडा मात्र में कट जायेंगे ? कभी नहीं। इसके लिये मुनि को भारी पुरुषार्थ करना पड़ता है। इन गुणस्थानों में धर्त रहे धर्म्यध्यान शुक्ल ध्यानो करके नितान्त कर्मों का सम्बर और निर्जरा होते हैं।

देखिये सातशय मिथ्यादृष्टि के अपूर्वकरण अवस्था में अनन्तानन्त कर्मों की निर्जरा हो जाती है । फिर अनन्तानन्तको दस स्थानोंपर असख्यात गुणा करनेपर सर्वसचित द्रव्य कर्म प्रतिक्षण भङ्ग कर चय को प्राप्त हो जाता है । यों मुमुक्षु जीरका चरमलक्ष्य मुक्ति-लाम कर लेना धर्म-सेवन से बन जाता है ।

सूर्यकी तो मात्र धारह हजार किरणें हैं किन्तु धर्म की असख्याती किरणें हैं । जो कि आत्मस्वरूप की प्रकाशक हैं । मुक्त के अरहन्त आदि आठ देवता यहा ही छूट जाते हैं परन्तु प्रकाश्य प्रकाशक रूप आत्म-स्वरूप नौरा धर्म देवता अनन्त काल तक स्थिर रहेगा ।

आजकल इस निवृत्तकाल में अनेक मुनि और श्रावक धर्म-पालन कर रहे हैं वे केवल स्वर्गों में ही जायेंगे । पञ्चम काल के अन्त में तीन वर्ष साढ़े आठ महीना शेष रहनेपर तबभी मुनि आर्यिका, श्रावक आर्यिका पाये जायेंगे । ये चारों भव्यजीव विचारे छठे पाचवें गुणस्थानवाले भाव-लिंगी हैं तो भी प्रथम स्वर्ग में ही जायेंगे । उहा के राग-पूर्ण ठाट नाचना, गाना, स्नानकरना, देवागनाओंक साथ स्पर्श, आदि प्रवीचार, अनेक वन समुद्र द्वीपोंमें सैर करना आदि चेष्टाओं में असख्याते वर्षों को पूरा कर देंगे ।

हां सम्यग्दृष्टि देव तो बड़ी भक्ति से जिनपूजन भी

करते हैं। गाने, बजाने, नृत्य करने की परिपूर्ण कलाओं का अभिनय करते हैं। इसी लिये तो प्रत्येक विमान में एकत्रित चैत्यालय हैं। प्रत्येक मन्दिर में १०८ वेदिकायें हैं। उनमें पाच सौ धनुषों की मूलनायक रत्नमय प्रतिमा जी विराजमान हैं। प्रत्येक सूर्य, चन्द्रमा, ताराओं में भी एक एक जिन-मन्दिर अवश्य है। यो, असरपाते, अनादि मिद्ध जिनमन्दिर हैं। देवों के धर्मआगधना में रागमान अधिक हैं।

यहा जिनालयोंमें गायन, वादिन, नृत्य, पूजन, प्रक्षाल जाप्य, धूप, दीपक आदिके विशाल परिकर हैं। तदनुसार यहा भी मन्दिरजी को सजाने के लिये उड़िया उपकरण, मुकुट, आभूषण, सुन्दर वस्त्र, चंदोया, आसों, परदा, छत्र चमर, मालायें, मजीरा, ढोलक, लकड़ीके रथ, हाथी, घोडे पट, पटा, चौकी, प्यासे आदि परिच्छद हैं। ये सब शुभ राग हैं। राग ही से राग मिटता है। ठण्डा लोहा गरम को काटता है। विष विपको मार देता है। अशुभ से शुभ अच्छा है। चरम लक्ष्य शुद्धता सनोंपरि है। एकत्रित चैत्यालयों में उड़े ठाट लग रहे हैं। नदीमुख और समुद्र सङ्गम के तोरण द्वारों पर ऊपर या नदी-यात गिरिगृहों पर सिंहासनोंमें अथवा चैत्य घुँचोंके नीचे जो प्रतिमा विराजमान हैं वहा प्रातिहार्य मङ्गल-द्रव्य, मालायें, धूप—घट,

देवच्छन्द, घण्टाजाल, स्तूपादि लम्बा चौड़ा व्यूह नहीं है स्वल्प है एक प्रतिमा जी विराजमान है। एकान्त प्रिय उदासीन देवों या ढाई द्वीप के अद्विधारी मुनियों का ऐसे एकान्त धर्मस्थलों में अच्छा मन लगता है। चलचित विनोदियों का नहीं।

चात यह है कि आत्मा के चारित्रगुण की क्रोध अरति भय जुगुप्सा शोक द्वेष रौद्र वेद सुदुर्मक्तिमय सङ्कर निभाव रली मिली परिणतिया हो रही है। आज कल क धर्म-सेवन तीव्र गग-द्वेषकी कीचड़से सनेहुये हैं किसी का धर्म सेवन बड़ा महंगा पड़ता है। ऐसे धर्म को धर्म शब्द से कहनाभी खटकता है। वस्तुतः शुद्धतापूर्ण धर्म तो कर्मों के सम्बर निर्जरा का हेतु है। लौकिक सुखाभासों को धर्म का फल कहना ही जिनधर्म का अनादर करना है। धर्म का पूर्वरूप या आभास कह लो।

भावपाहुड़ म श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने बहुत अच्छा प्रतिपादन किया है—

पूयादि सुक्य सहिये पुण्य हि जिणेहि सासणे भणिय ।
मोहकपोह विदीणो परिणामो अप्पणो धम्मो ॥
सइहदिय पत्तेदिय रोचेदिय तह पुणो विकासे दि ।
पुण्य मोय णिमित्त , नहि सो कम्मकपुय णिमित्त ॥

इन दोनों गाथाओं का अभिप्राय स्पष्ट है कि पुण्य

तो भोग का अव्यभिचारि कारण है कर्म-वैश्या का निमित्त नहीं ।

इस अथम पञ्चम काल में जैनधर्म पालना उँडा कठिन हो गया है । राग द्वेष की अत्यन्त न्यूनता हो जाने पर ये महावीर का धर्म पलता है । आधुनिक मनुष्यों में ब्राह्मण तो ईश्वरकृत्त्व पर श्रद्धा, वेदोंपर अटल रुचि तथा अहिंसा ब्रह्मचर्य अपरिग्रह का पूर्ण तथा न पाल सकना, देव-द्रव्य खा लेना, शक्ति की पूजा आदि कार्यों के बँश वे आर्हत धर्मसैन से दूर हट गये । कतिपय तो विरोधी बन बैठे । क्षत्रिय भी इन्द्रियलोलुपता हिंसा अमञ्ज्यमक्षणा रात्रि-भोजन आदि प्रयोजनों का शर होकर शीतराग धर्म को स्वेच्छा प्रवृत्ति का नाशक समझने लगे । साथ ही उनको इन्द्रिय-निषय पोषक पर्यक्षास्त्र मिल गये तो जिनशासन को भारी बन्धन मानने लगे । स्तेच्छ या शत्रु विचारे अपनी अवम-आजीविका सन्तानप्रयागत अना-चारासे जकड रहना त्याग करनेकी अशक्ति आदि कारणों के अतीत हाकर उच्च धर्म की ओर दृष्टि भी नहीं डालते हैं । बहुभाग वैश्यों की भी धर्मोदासीनता के ये ही कारण हैं । शेष रह थोड़े से वैश्य जो आजकल दिखाऊ जैनधर्म को पालते दीख रहे हैं । उनकी सैकड़ों पीढीसे प्राणिय्य करने की आजीविका चली आ रही है ।

प्रायः घाण्डिज्य में लोभ अधिक होता है। लोभ के साथ माया तो निरान्त लगी ही रहती है। तथा धन मान को भी बढ़ाता है। धनोपार्जन के आगे, पीछे क्रोध की चाहनी चुपकी रहती है यों आजकल के कपायगामी जैन वैश्यों में महावीर स्वामी का वीतरागशासन बनपने नहीं पाता है। कपायोंसे प्रकृति, निष्ठुर बन जाती है। अन्यथा क्या हतु है, कि, इतनी ममायें, सस्पायें, विद्यालय, गुरुकुल छात्रालय, पाठशालायें, उपदेशक, मासिक-पाक्षिक-मासाहिक पत्र सप्त, त्यागि, पण्डितवर्ग परिषद आदि होते हुए भी हम परमपवित्र सार्वभद्र जिनशासन की यथोचित उन्नति नहीं हो पाती है। श्री समन्तमद्र आचार्य ने ठीक कहा है कि—

कालः कलिर्वा कलुषाशयो वा,

श्रोतुः प्रवक्तुर्धचनानयो वा ।

त्वच्छासनैकाधिपतित्वलक्ष्मी—

प्रभुत्वशक्तेः अपवादहतु ॥

हा थोड़ेसे अगुलियोंपर गिनने योग्य मन्दकपायवान् जीव यदि समन्त-पवित्र आर्हत धर्मको पाल रहे हैं। त्रिलोकीधर्म का इनसे क्या पूरा पड़े। तभी तो गोम्मट-सार में सम्यग्दृष्टि मानवों की संख्या अत्यल्प रही है। करोड़ों में एक दो।

जब कि आजकल इस कलिकालमें ब्राह्मणों के समान जैनो में कोई धार्मिक-वर्ग नियत नहीं है। तथा कोई ईमाई या यत्नों के समान आज्ञावश-वर्तक गृहस्थाचार्य भी नहीं है। ऐसी दशा में आधुनिक जैन विचारे करें भी क्या ? अस्तु-उद्योग करते जाओ सस्थायें भी कार्य करती रह परिश्रम फल भी मीठा निकलेगा ही। आर्य-समाजियों की नकल करना छोड़ो प्राचीन गृहस्थाचार्य या गुरुओंकी परिपाटीको पढ़ो। जैन-धर्म इतना निर्बल नहीं है जो अपनी प्रभावना करने में अन्यमतियों की सरणि को अपनावे। हमरे हमार ही अनुकरण क्यों न करें। निर्बलता को हटाकर आत्म-गौरव स्थापन करो। पूज्य जैनाचार्यों के जनाये ग्रन्थ न्याय, व्याकरण, साहित्य आदिके अध्ययन अध्यापन को बढ़ायो, परत्वको निकाल बाहर करो।

धर्म तत्व बड़ा दुरूह है। जैनों के छोटे छोटे मतभेदों को सहन कगे प्रमोद-पूर्वक दूर भी करो, ग्लानि करने की टेंग छोड़ो, जगत् परिवर्तनशील है। इन पन्द्रह वर्षों में अथाह विपरिणाम द्ये हैं।

अचेत ! विक्रम सम्बत् के यदि तीन भाग हों चुक माने जाय तो प्रथम भागमें यहा ब्राह्मणों का राज्य रहा। अब भी महन्त, गोस्वामी जनारस के पण्डितों का यत्रा-

क्षत्रियों से घृणामान, यद्रास शान्त म ब्राह्मणों के मार्ग से
 अत्राक्षरों की गलिया न्यारी न्यारी, पण्डितोंकी बण्ड-
 प्रकृति, यों छाया दीख रही है। द्वितीय भागमें क्षत्रियों
 का राज्य रहा के ईश्वराश माने गये। अत्र भी खण्डरूप
 से शासक राजगण यहा बहा फले हुये हैं। तृतीय चरण
 में वैश्यों की प्रभुता रही अधिकारीवग, राजा, मन्त्राट्ट भी
 नैरयत्व म रङ्ग गये। धनही प्रतिष्ठा सातिशय बढ़ गयी।
 धनपति-जन सर्वेसर्वा बन गये। अत्र चतुर्थ वर्णका राज्य
 होता दीखता है। श्रीवीर प्रभु क जैन धर्म की प्रमोचना
 अतीव दुर्लभ होती जा रहा है। "जयतु त्रिलोकी-हितो
 जिनधर्म" चाहे तो चारों वर्ण क्या सभी म्लेच्छ, पशु,
 पक्षी भी जैनधर्म को पाल सकते हैं।

बन्धुवर्ग ! धर्म के समान पाप भी अनादि है। पापों
 दो षठी बड़ा भैया है। बसुराजाकी कथा
 श्री महावीर स्वामी के प्रथम से ही
 बहुत प्रचार था। भी नैदि
 अश्वमेध, अजमेध
 यान सम्प्रदायो
 यदाना लेकर, अ
 वर्षोंसे

हिंसा आदि पापोंमें प्रानसशिस इन रहे हैं। पहिले देशों में छोटे छोटे प्रातिक राजा ये दिन रात परस्पर लड़ाई में ही निमग्न रहते थे। युद्धों में नवीन चुने हुये युवाओं की मृत्युयें बहुत होती थीं। सती दाह-प्रथा चालू थी। ऐसे उध, हाय, हत्या, के युगों में ग्रहिंसामय शान्ति-प्रिय जैन-धर्म का टिकना नितान्त दुर्लभ हो गया था। जय तरु निरोधिनी हिंसा करते रहने का प्रावल्य रहा स्वरचार्थ-विरोधियों से लड़ते हुये भी धमे-प्रभावना बनी रही। जैनोमें बड़े बड़े योद्धा हो गये हैं। उन्हीकी कृपा में आज तरु जैनधमे टिक पाया है। अज भी ऐसा युग आ गया है कि वीर जनता ही गीप्रभु के धर्मसी रक्षा कर सकेगी। अत उच्चों को ऊठे बपे से इस्कीस वर्ष तरु अध्ययन के साथ व्यायाम-शालाओं में शारीरिक बलवर्द्धिनी शिक्षायें अनिवार्य कराई जावें।

यह जैनधर्म महान् पत्रि सार्व अनादि अनन्त है। अतः विग्ल अविरल रूप से चिरस्थिर रहेगा। स्वकल्याणार्थी दृढता के साथ जैनधर्म को पकड़े रह। माया, मिथ्यात्व, निदान, तीनों शल्यों को निकाल फेंक दो। वर्तमान जैन अपने धर्म की प्रभावनार्थ अमली ठोस पुस्तकें पाथे करे। "धर्मो जयति नाधर्मः"

कोई २ भोले जैन चाटुबली स्वामी के शल्य होना

भीकार करते हैं। किसी रूजा में भी लिख दिया है। उनका मतान्य है कि गार्हपत्य के यह शल्य लगी हुई थी कि मैं भारत की पृथ्वी पर खड़ा हूँ भारत ने मुझे मान्य नहीं किया आदि। किन्तु यह मान्यता सिद्धान्त विरुद्ध है। क्यों कि दूसरी की पृथ्वी पर खड़े होने या बैठने चलने का परामर्श करना ही मुनि के लिये निषिद्ध है। दूसरे गार्हपत्य जन तीनों युद्धों में जीत चुके थे तो वह पृथ्वी भारत की कैसे रही ? गार्हपत्य की हो गई। तत्त्वार्थ सूत्र में "नि शल्यो प्रती" कहा है। "धारयते नि शल्यो योसौ प्रतिनाम्मतो प्रतिक" (समन्तभद्र)। शल्य वाले के जन अणुप्रत ही नहीं हो सकते हैं तो महाप्रत हो जाना अमाध्य ही है। हा कभी २ छोटे गुणस्थान में गार्हपत्य के ये भार हो गये थे कि मेरु द्वारा मेरे बड़े भाई को क्लेश पहुँचा। ऐसे कदाचित् अनुताप तो सभी मुनियों के हो जाते हैं। तभी तो वे अज्ञान या प्रमाद से एकन्द्रिय आदि जीवों को क्लेश हो जाने पर आलोचन, प्रतिक्रमण कर लेते हैं। ये तो मुनि की दिन रात्रि की चर्या है। मुनि ये विचार करते हैं कि मैंने गृहस्थ अवस्था में फलाने २ को कष्ट पहुँचाया, अमुक पाप किया। कृपाय भाग्य को धिक्कार हो, आदि ये पैराग्यवर्धक भाव हैं। शल्य अवस्था में उच्च धर्मध्यान और चपक श्रेणी कैसे भी नहीं हो सकती है।

भरत मुझको नमस्कार करें ये भाव उनके तीनों कालों में न थे।

भरत जी ने नमस्कार किया तब उनको केवल ज्ञान हो गया ये तो घुणाचरन्याय का रूपक है। जैसे कि श्री महावीर स्वामी के मोक्ष जाने पर गौतम स्वामी को केवल ज्ञान हो गया। गौतम स्वामी के मोक्ष जानेपर सुधर्माचार्य को केवल ज्ञान हो गया। सुधर्माचार्य के मुक्त होने पर भट्ट जम्बू स्वामी को केवलज्ञान हो गया। इनमें मात्र कालिक सम्बन्ध है कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं है अतः बाहुगुली स्वामी सर्वथा निःशक्य थे। भावलिगी हो कर एक वर्ष तक घोर तपस्या कर केवल-ज्ञान प्राप्त किया।
 "नमोस्तु ते बाहुगुलिने आदीश्वरशिषित्तपुत्राय"

इसी प्रकार सीता राजीमती के कतिपय बारहमासे घनाये हैं। किसी २ में "काम सतावै" आदि निर्लज्ज शब्द प्रविष्ट कर दिये ह। यह सब अवर्णनाद हैं। इन निकट-भव्य धर्मिणियों को स्तन्य निमित्त मिलते ही सवेग निर्वेद भाव हो गये थे। जैसे कि नागपाश-बद्ध इन्द्रजीत कुम्भरुण के काराग्रह में पडते ही उत्कट वैराग्यभाव चमक गये थे कि कब कारामुक्त हों और शीघ्र जैनेश्वरी दीक्षा लें। अङ्गद आदि ने कहा कि इन्द्रजीत को बड़े घन्धन प्रसन्ध से रामचन्द्र लक्ष्मण के पाम ले चलो। ये घड़े

क्रूर है पिता की मृत्यु सुनते ही लारों को काट डालेंगे। किन्तु जब रामचन्द्रने सश्लिष्टाचार इन्द्रजीत कुम्भकर्ण को बुलाया, तो वे ईर्ष्यासमिति पालने हुये राजदरवार में आये रामचन्द्र जी उठकर सादर लाये राज्य सम्हालनेकी कहा। किन्तु सर्वोत्कृष्ट युक्ति-राज्य प्राप्त करनेके लिये शीघ्र घनमे जाकर उनसे दीक्षा धारण करली थीर बड़वानी पर्वतसे मोक्ष प्राप्त की। 'इन्द्रजीत कुम्भयणो शिष्याणु गया एमो तेसिं' यों राजीमती, सीता, अञ्जना, द्रौपदी, सुलसा, चन्दना आदि के बड़े पवित्र भाव थे। मन-वचन काय में कदापि का-मोद्रक की राते न थीं। "कस्य किं न जल्पन्ति"।

केरलज्ञानी के चुधा आदि अठारह दोष नहीं हैं शेष सभी ससारी जीवोम तीव्रतम तीव्र या मन्द मन्दतम रूपसे ये दोष पाये जाते हैं, नारकियों के तीव्र भूय हैं देवों के मन्दतर है। मर्त्यसिद्धि के देवों को भी भूय लगती है मले ही वे तेतीस हजार वर्ष पीछे कण्ठसुतामृत सरसों धरार आहार करें, किन्तु चुधा वेदनीय का उदय सर्वदा है, उदीरणा रुदाचित् है। किसी असमृत् गच्छि-मोजी धनाढ्य को भूय कम लगे तो क्या दोष छोटा हो गया ? नहीं।

इसी प्रकार अहमिन्द्रों के वेद-उदय अनुसार मन्द मैथुन भी हैं चारों सञ्चार्य हैं। एकेन्द्रिय विकलत्रयों के भी

मैयुनसज्ञा है। वेद-कर्म के उदय या उदीरणा के साथ इन्द्रियों की त्रिषय-लोलुपता ही पैगुन है। तथा देवों के अव्यक्त रूप से बुढ़ापा, रोग, भय, चिन्ता, त्रिस्मय, आदि भी पाये जाते हैं। तभी तो अरहन्त के अठारठ दोषों से रहितपन की महत्ता है। एकन्द्रियों के तो-ये सभी दोष विद्यमान हैं।

अरहन्तों में पूर्ण अहिमैस्त्व है। द्वय भाव अहिंसा ही उत्कट धर्म है। मुनि के सङ्कल्पजा तसहिंसा, स्थावर-हिंसा, दोनों का त्याग है माधु के उद्योग, विरोध, आरम्भ तो है ही नश। हा श्रावक के पाव सङ्कल्प-जन्य त्रमय की छोड़ है। सङ्कल्प से स्थावर हिंसा करता है उद्यम, त्रिगोव, आरम्भ में भा स्थावर हिंसा, त्रसघात हो जाता है। यथाचार पूर्वक प्रवृत्ति है। 'निरर्गल चेष्टा नहीं। "सङ्कल्पात्कृतकारित" (रत्नप्रणव)

एतदर्थ ही जीवकाण्ड में जीवो, योनियो, जन्मो, कुलों का परिज्ञान कराया है एनेन्द्रिय जीवों में मरसे बड़ा पद्म है जो कि स्वयम्भूरमण द्वीप के परले भाग में स्थित सरोवर में कुछ अधिक छोटे एक हजार योजन ऊँचा है। श्री देवीक निवासस्थान हो रह पद्मसरोवर का कमल पृथिवी-कायिक है जो बड अनस्पाति-कायिक कमल से पाच गुना ऊँचा है।

किसी भी पृथिवीकायिक जीव की बड़ी छोटी अर-
गाहना घनागुल के असख्यातत्र भाग है इस असख्यातत्र
भाग में ही मध्यम, छोटी बड़ी अरगाहनाओं का अन्तर
निहित है। जो श्रीदेवी के कमल में असख्यातासरपात
पार्थिव जीव पिण्डित हो गठे हैं जैसे कि सैन्नों लड़ रहे
क्रोधी चींटा चाटियों का झुण्ड बघ जाता है मने ऐसे
पचामो गुच्छे देखे हैं। सुईपर रखने योग्य जल या डेल
के कारण में असख्याते जीव हैं। स्वयम्भूगमण द्वीप के
कमल में केवल एक वनस्पति-कायिक जीव है।

एकजान यह भी कहनी है कि विध्यात्य, हिंसा करना
भूठ, परिग्रह आदि पाप और इन रिमावों से बन्ध गये
कर्म भी अनादि से चले आ रहे हैं और अनन्तकाल तक
पहुँचेंगे। आठ वर्ष कम अनादि काल से मोक्ष-मार्ग भी
चालू है। कोई ऐसा मर्त्य शक्तिशाली आत्मा नहीं हुआ
जो कि इन पापों या पापोंकी जड़ कर्मनिण्डको ही समूल
शूल विनाश कर देता। यह कार्य अनन्तानन्त बलशा-
लियों ऊँके भी अशक्यानुष्ठान ही रहा, देखो पुद्गल परमाणु
और पिद्म भगवान् दोनों की शक्ति अनन्तानन्त रूप से
संपान है। पुद्गल परमाणुयें या स्कन्ध भी सख्या में
और-राशि से तो अनन्तानन्त गुणे हैं। फिर कोई अ-
हमिन्द्रदव या तीर्थकर महाराज अथवा ममी सिद्ध परमेष्ठी

बला कर समग्र अणुओं या गार्इस प्रकार की वर्गणाओं का अपने अनन्तवीर्य से प्रलय भी नहीं कर सकते हैं। यदि शुद्ध परमात्मा सभी पुद्गलों या रूप से कम जगद्वर्ती रूप और नोरूप वर्गणाओं को भी विनष्ट कर देते तो सभ जीवों के सत्तार परिभ्रमणका बखेडा ही मिट जाता यह तो बडा भारी परोपकार था।

वैशेषिक या पौराणिकों के यहा माने गये सर्व-शक्ति-शाली परमात्मा के घृते भी यह धर्म, अधर्म का प्रक्षय नहीं हो सका। शक्तिशाली बहुसख्यागलों के सन्मुख बल-शाली अल्प-सख्यको का मनोरथ सिद्ध नहीं होने पाता है थोड़ी सी कालाणुओं को मिटा देने से ही भव-भ्रूभट दूर हो जाती, वर्तना नहीं हो पाती। आत्मा और कालाणुकी बुद्धिस्थ कुरती करायी जाय तो बहुत देर तक लड़ते लड़ते जोड़ बरानर छुड़ा दिये जायगे "को चालेदु सबको इन्दो वा अह निर्णिदा वा" ऐसा आचार्य गवय है आचार्य ने जिनेन्द्र की भी सामर्थ्य नहीं ऐसा स्पष्ट कह दिया है। वस्तुत ये द्रव्य अनादि अनन्त नित्य अवस्थित हैं। कोई व्यक्ति या कोई समुदाय किमी भी एक या अनेक द्रव्यका मटिया मेट नहीं कर सकता है। असम्भव है इम कार्य को करने में समी अशक्त हैं।

मात्र अपना लोट छानो स्वकीय व्यक्तिमें चुपट, बैठे

कतिपय अतन्त्र नाकमोड़ा स्व-परिचार्य से घबरा दो अर्थात् अपनी आत्मा में जो कुछ कुछ हुआ पृष्ठलों की कर्म-नोर्म परिणति ही बदल कर अन्य पृष्ठल स्वरूप हो जाने दो। यही बड़े उत्कट प्रयत्नसे माया गया व्यक्तिगत मोक्ष है। उम्र अपने पर या लगे हुए पृष्ठल को असन्तर देना या पराद कर फूट देना अथवा गण्डेन छो देना तो मुक्त नीर स्वप्नि नहीं कर सकता है। रोमी या न्यारिया विधाग मलिन कपटे से या सोने से मूल को पृष्ठल कर देना है यों ही की अन्यस्थान पर दूसरी पृष्ठल पर्याय हो जाते हैं। मूल का मटिया में नर्ग कर सकता है। जला जा, उड़ा दा, गाड़ दा, फाट दो, पीम दो, तो भी मूल को पृष्ठल द्रव्य विद्यमान है।

बन्धुओं ! जिस प्रकार पचाने वाली उदरामि और साध-पेय दा शरा-प्रवाह सम्बन्ध अविच्छिन्न है उमी प्रकार योग और कर्म-नोर्मों का आरूपक नाकर्म्य सन्ध भी अटूट है। यत अनादि शलीन प्रवाहित चले आरु कार्य नमन भावपर कुच-घाकी गैजार मत गिराओ "आदिदें नोदव्य"। यत से अपने पापा को टालो नैमिद्विदात को जात कर आत्म-रक्षा, आत्मानुभव और आत्म-पर्या ले विषय मोक्ष मार्ग में राग बैठो। तभी कर्मों का संवर और निर्जरा होकर मोक्ष पा सकोगे, यही धर्म

सुरगें, यान-विघ्न सक तोपं, त्रिषमैसैं, रेडियो, वायरलैस, घड़ीयम, वायुयान आदि रूपों में अनेक सातिशय कार्य देखे जा रहे हैं। ये सब 'निस जन्तू डूड पजर' इत्यादि गोम्मतसार अनुसार कुञ्जान हैं हिसामय हैं। जड़ोंने भी जीवात्मा को परतन्त्र कर अनेक रङ्ग दिखाये हैं। "कर्म-स्थिति जन्तुरनेकभूमि नयत्यम्" सा च" (घनज्ञयः) मानव पर्याय में कर्मधीनता को मिटा सकते हो, गुरु शिष्याओं पर चलो।

अब आप सर्वोत्कृष्ट आत्म-कल्याण के मार्ग में लगिये। देवशास्त्र गुरु सदा कल्याणमय मोक्ष मार्ग का उपदेश देते हैं ससार-वर्द्धक या हिसामय कर्तव्योंका नहीं।

आप प्रयत्न कर स्वीकृत कर्मायों को न्यून करो। छ इन्द्रियों को बलात् बश में रखो, सभी लौकिक पार-लौकिक सुखों को प्राप्त कर सकोगे। ऐदयुगीन हिसा-असत्य, चौर्य, ध्वनिचार, मूर्च्छा, दम्भ, धोकेबाजी, चालाकी, विश्वासघात, कन्या-स्त्री-वास्तु हरण की पाप भित्ति पर जमाया गया दूराज्य कितने दिन ठहरगा ? शीघ्र नष्ट हो जायेगा विचारे भले लोग भी उनके पाप में फँस जायेंगे यानी जो पाप आगे काल में उदय आता या पुण्यरूप होकर फल देता उस पापोदय से सज्जनभी उनके साथ कष्ट पावेंगे "कर्मायमावान् धिक्"।

हा अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, त्याग, तपस्या अपरिग्रह, परोपकार, क्षमा की नींव पर जो सुराज्य है वह चिरस्थायी है। इस राज्यमें कतिपय पापी भी सुख पावेंगे। द्रव्य, क्षेत्र, काल, मात्र अनुसार पाप का भी पुण्य-रूप सक्रमण हो जाता है।

गृहस्थ पण्डित भी उपदेश दे सकते हैं। मनका स्रोत मर्मज्ञोक्त से है। उद्भट आचार्यों क बनाये हुये समयसार, कपायप्राभृत, तत्त्वार्थ सूत्र, गोम्मटसार, राजवातिक आदि महान् ग्रन्थ हैं ही, इनकी प्रतिपत्ति बहुत बढ़ी हुई है। साथ ही गृहस्थ पण्डितों यानी धनञ्जयकवि, विद्वद्वर्य आश्रमजी टोडरमल जी आदि क बनाये गये द्विसप्त-काव्य, त्रिपापहार स्तोत्र, धर्माभूषण, प्रतिष्ठाशठ, मोक्षमार्ग प्रकाश आदि ग्रन्थ भी श्लाघनीय हो रहे हैं पञ्चाध्यायी, चारित्रमार, चर्चा-ममाधान, चर्चा शतरू, धर्म-प्रश्नोत्तर, मेवागी श्रावकाचार, ज्ञानानन्द श्रावकाचार, दो क्रियाकोश का गृहस्थों न रचा है। जयपुर क विद्वानो ने गोम्मटसार त्रिलोकसार, मर्मावेसिद्धि, प्रमेयस्त्रमाला आदि की प्रामो-शिक भाषा-टीकाय लिखी हैं। मुझ छोटे से गृहस्थ ने भी लोकार्तिरु नामक न्यायसिद्धान्त ग्रन्थ की एक लाख सास हजार श्लोक प्रमाण भाषाटीका लिखी है। भीदेव-शास्त्र गुरु के प्रसादसे यह शुभोपयोग का कार्य पन्द्रह वर्षों

म सम्पन्न ऋगा है । इस निबन्ध-पिण्ड म श्री रलोक-
वार्तिक से भी महायत्ना ली गई है ।

तथा यन्व भी पण्डित बनारसीदाम जी भूधरदासजी,
घानतराय जी भागचन्द्र जी प्रभृति आवक-व्यवहारों क
धनाये हुये पुराण, भाषापाठ, पूजन, पद्य, रीतिरिवाज का
संग्रह आदरणीय हो रहा है । अतिरिक्त-व्यवहार-
आवक श्रेणिक जी का तो एक चरित्र-ग्रन्थ ही शास्त्रगद्दी
पर पढ़ा जाता है ऐसे भीता-चरित्र, रचित कथा, सुगन्ध
दशमी व्रत कथायें भी शास्त्र-सभाम वाची जाती हैं । उपाय
मात्र मन्द होय, विशुद्ध प्रतिभा होय, चिनशासन प्रभासना
का उत्कट भाव होय तो संस्कृत, प्राकृत, देशभाषाके ग्रन्थों
को कोईभी मूल या टीका स्तुति आदि रूपसे लिए सजता
है । ऐसे कार्य में लौकिक आराम और तन धन की
चिन्ताय छोड़नी पड़ती है ।

महापण्डित गोपालदास जी, त्यागी रान जी स्वामी,
मृनि कुन्धुमागर जी, उदामीन दुलीचन्द्र जी आदि की
लेखारत्नि जैन-जनता क स्वाध्याय म आ ग्दी है सचका
साक्षात् परम्परा सम्पन्व श्री महावीर भगवान् से है जैसे
कि निजलीली छोटीमी पती कही चपक ग्दी होय उसका
सम्पन्ध पड़े निजली पर (पावर हाउस) से है मले ही
मध्यमे कई लपट, भूषावेशा पहिन लिये जाय तद्वत् उक्त

प्रमेयों का सम्बन्ध वीरोद्भव द्वादशाङ्ग धारणी से चुपट रहा है। अग्रामाणिक वाक्यामलि की चर्चा पृथक् है सर्वत्र आमास पाये जाते हैं।

आज भी अनेक गृहस्थ परिणत उपदेश देते हैं सभामं कतिपय मुनि, ऐलक, छुल्लक, ब्रती, त्यागी उदासीन श्रावक समझदार श्रोता उपयोग लगाकर सभिनय जिन-धाणी को सुनते हैं। गहर वेप के बिना भी अनेक आत्माओं में पवित्रत्व घुस रहा है जैसे कि मातृ नरक में आठ अन्त-हृष्टैर्तकम तेतीस सागरतक मम्यदर्शन चमकता रह स्रता है तथा द्रव्यलिङ्गी या नवम ग्रंथेयक में बहिर्वेपी के मिव्या-त्वोदय विद्यमान है। "भरत नृप धर ही मं वैरागी" अन्य भी गृहस्थ विद्वानों की अनेक अमर कृतियाँ हैं तीर्थकर-जन्म मुनिदान, मन्दिर चैत्यालय बनवाना, उच्छ्राह प्रतिष्ठा कराना, सध निकालना, विद्यालय चलाना आदि कार्यों को गृहस्थ ही कर सकता है। पाँचों से छटे सातवें गुणस्थान का मात्र सवाया टोड़ा अन्तर है। सम्पत्त्वसे गुणकार लगाना। नीचे तो शून्य है।

आताजी ! लेख बढ़ गया है। अन्त में यही उप-सहार करना है कि लौकिक सुखकी कामनाओं को छोड़कर आत्मीय सुखों की प्राप्ति के लिये यत्न करो। लौकिक सुख दुःख तों दैवसाध्य हैं आप लोग विपरीत

कारणों को मिलाते हैं। भाग्य से होने वाले पुत्र-प्राप्ति निरोगता, धन-मन्त्रय आदि तार्यों तथा व्यर्थ पुरुषार्थ कर रहे हैं। और पुरुषार्थ से मिये जाने वाले जिन-पूजन तीर्थयात्रा, तपश्चरणा, ध्यान करना आदि मर्दन का सहारा पकड़ते हो, कि भाई क्या करें ? घमे करना हमारे भाग्य में ही नहीं बदा है। आप हम इन्हीं प्रमाद-पूर्ण प्रवृत्तियों से आज तक दुःख भोग रहे हैं। और यदि नहीं सम्भले तो यही मोह, अज्ञान, राग, द्वेष, ड्रव्य-कर्म भाव-कर्म की परम्परा बढ़ती चली जावेगी, पुत्रल में बड़ी शक्ति है इसी ने जीवों को अनादि से पराधीन दुःखित कर रक्खा है एक बड़े पहलवानकी सरमों चरोरर विपसे कुरती कराइये। अणुम को ५० मील लम्बे चौड़ क्षेत्र के सभी पलाय्य पदार्थों से लडा दीजिये देख कौन जीतता है ? बस एक धर्माचरण या तपस्या से ही पुत्रल जीता जाकरता है यही मर्वाग सुखित मोघ का उपाय है।

जहां तक होय शीघ्र ही मोह निद्रा को त्यागो, और कपायमय प्रकरणों में सवेग वैराग्य भावते हुये आत्म-वस्तु का स्वभाब हो रहा तथा क्षमा आदि स्वरूप-परिणामन कर रहा, दयापूर्ण इस रत्नत्रयधर्म को पालन कर कर्मों का मन्वर निर्जग करने हुये चरम-फल निश्चयस को प्राप्त करो। जो कि धर्म-सेवन का प्रधान फल है। इस लेउके

आगमोक्त प्रमेय का चिन्तन करना भी शुभध्यान है अतः मरर हेतु है स्वाध्याय नामका तप है अतः निर्जरा हेतु भी है जैन-मिद्धान्तो का परिज्ञान तो सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य है ही ।

ओं नम श्रीशान्तिनाथाय, नमोस्तु वर्धमानाय ।

क्षुण्णीकृतकर्मपट्टकजाष्टगुणा अष्टमीधराधिष्ठा
सिद्धा क्षमादिरूपा सुखिनोरत्नत्रय ददतु धर्मम् ।

नानानानात्मनीन नयनयन-युत तत्र दुर्नीतिमान,
तत्र-श्रद्धानशुद्ध्याध्युपित-तनुवृद्धदोष-धामाधिरुढम् ।
चञ्चचारित्र चक्र प्रचुर परिचर षड् कर्मरिसेना,
सातु साक्षात्समर्ष घटयतु सुधिया सिद्धिसाम्राज्यलक्ष्मीम् ।

(श्लोकनातिक हिन्दीभाषा भाष्य)

(धर्मश्च फलञ्च सिद्धान्तश्च) इस निरन्व मे जैनधर्म पालना और उमका फल तथा जैन-मिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है ।

इति चाप्रली निगसि न्यायाचार्योपाहित माणिक्यन्द्र
सम्पादित "धम-फल-सिद्धावा" सम्पूर्णम् ॥

॥ शान्ति शान्ति शान्ति ॥



श्रीमन्तोर्हन्त आसास्त्रिदशपतिनुता वीच्य निर्दोषं हृताद्
यस्माद्दस्तस्थमुक्ताफलमिप्रयुगपद् द्रव्य पर्यायसार्थान् ।
हानोपादत्युपेक्षा-फलमभिलषतो मुक्तिमार्गं शशासु-
स्तत्पज्ञानेषुभव्यान् स किल विजयते केवलज्ञानभानुः ॥

प्रमाण-नय-सतकैर्न्यमकृत्यैकान्तिना गतिम् ।

हसीस्याद्वादगी स्वच्छा पुनीतान्मममनसम् ॥

द्रव्येक्षानाद्यनन्तो निखिलमतिनिदानोद्गयाद्यागमेदो,
निर्दोषो हु एतत्सासुगदनपदु-निष्कलङ्काशिपेद् ।

विधानन्दाकलङ्कोक्त्यमृतस्त्रिणमृत्प्रातिभाद्यं कलाद्वयो
भानाद्येनान्तगणी तिमिरततिभिद द्योतता व श्रुतेन्दु ॥

ध्याने हित्वात्तरौद्रे समितिमुपगता दैशिक सर ये,
ध्यायन्तो धर्म्यशुक्ले परिपहजयतो भावनेद्वाष्टशुद्धी ।

कुर्वाणा, स्वात्मयत्नादगणितगुणिता निर्जरा कर्मणात्,
निर्ग्रन्था सयमाद्यै स्वपरहितरता पान्तु माज्यास्त्रिगुता ।

वीरोमास्याम्युपज्ञा प्यगमुनिपसमन्तादिमद्राकलङ्क-
विधानन्दोक्तिमिर्द्राक् छलवितथवचोनिग्रहस्थान्परीक्ष्य
तत्त्वार्थज्ञप्तिभेद जितविजितदशामाकलग्याप्तशास्त्र-
रचन्द्रार्कावध्यभिज्ञोनुभवतु शिवदा न्यायसाभ्राज्यलक्ष्मी ॥

(श्लोक धार्तिक हिन्दी भाष्य)



आभार प्रदर्शन

असरययन्दारुसुरेद्रवृ द- निमेषशून्याक्षिसहस्रलोभ्यम् ।

निद्रुष्टकर्माष्टकशैलवञ्ज नमामि धीर त्रिजगच्छरण्यम् ॥

मुमुक्षु को निश्चयनय से आरमा ही आत्मा का उपकारी है । तभी तो उसकी निज सपत्न्या का फल स्व को ही मिलता है । स्वप्नपरार्थ-जन्य विशुद्धि परिणतियों का ही अनन्त-फल तक आत्मा आभारी रहता है । (समयसार)

॥ व्यवहार मे नारक, तियग्, मनुष्य और देवोंके सच्चे उपकारी पञ्च परमेष्ठी हैं । असरय तीर्थङ्करों के जन्म कल्याणक अवसर पर असरयात वर्षायुक्त नारकियों को असरयात बार दो दो मिनट के लिये ज्ञेय हो जाता है । सम्यग्दृष्टि नारकी तो पञ्चपरमेष्ठियों का बुद्धि, इच्छा, प्रयत्न पूर्वक श्रद्धान करते हैं बडे हर्षतिरेक से कहना पड़ता है कि एक बटे सोलह राजू चौड़े, एक बटे चार राजू लम्बे यों असंख्याते बडे योजनों लम्बे चौड़े तिरछे गोल स्वयम्भूरमण द्वीपोत्तरार्ध मे पत्न्य के असख्यातवें भाग परिमित असंख्याते गाय, भैंस, घोड़े, सिंह आदि तिर्यच देशव्रती हैं ये स्वर्गों नरकों या यहासे जाते हैं अनेक मिथ्यादृष्टि यहा पहुचते हैं वहा ही सम्यग्दर्शन और देशत्रव ले लेते हैं, बहिरङ्ग निमित्त यहा नहीं हैं । ये सब परमेष्ठियों की बड़ी श्रद्धा करते हैं "धन्यास्ते" ।

“श्रेयोमार्गस्थ ससिद्धि प्रसादात्परमेष्ठिन ” (विद्यानन्द)

देव और मनुष्य तो परमेष्ठियोंकी आराधना करते प्रसिद्ध ही हैं तथा वेदिक गुरु-परम्परा का भी उपर्युक्त यह मान्य है।

“उच्चैर्गोत्रं प्रणते” (म्यामी समन्तमद्र)

एत प्रथम तिन-चैत्य, चैत्यालय, मातृ पितृ परम्परा, विद्यालय, रात्ता, वैद्य, देशनेता आदि उपकारी गण भी “गुणिषु प्रमोद” की भावना भावने वालों को स्मरणीय हैं।

मङ्गलाष्टक स्तोत्र, पूजन, तत्त्वाथसूत्र में आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, मेघ, नदी, अन्न, प्राण, शरीर, मन वचन धर्मद्रव्य काल आदि को भी उपकारी मान्य किया है।

श्रुतको इन सबका लक्ष्य रमना चाहिये।

भूत भविष्य उपकारकों का भी जो श्रुत है यह तो पुरुषोत्तम ही है। मङ्गलाचरण या तिनपूजन में उपकारक स्मरण भी प्रयोजक है। वेदी में विराजमान, तेरहवें गुणस्थानपर्वी अरहत की हम, आप पूजा करते हैं। यह भी उपकारक के तीन कल्याणक भूत हैं एक कल्याण भविष्य है। तीन काल के तीर्थङ्गुओंको चौपीसीने पूजन समान भूत भविष्य वर्तमान उपकारकों का अधमर्ण हो रहा श्रुत तो महान् आत्मा है जैसे अधमर्ण (धन का कर्नदार) दीक्षा नहीं ले सकता है ‘अधमर्णं प्रवृज्या नाहंति’ किन्तु यह उपकारकों का अदिरमर्ण अधमर्ण श्रुत तो दीक्षा लेना क्या दूसरोंको दीक्षा शिक्षा दे भी सकता है। चन्द्रमहाकाव्य में श्रुतता को सर्वोत्कृष्ट गुण कहा है।

सगरचक्रवर्ती ने अर्सरयात वर्षों पश्चात् जन्म लेने वाले

श्री नेमीश्वर भगवान् के निर्वाण क्षेत्र होने वाले गिरनार पर्वत की प्रथम ही तीर्थ वनना की थी, आस्ताम् ।

सहारनपुर में लाला जम्भूप्रसाद जी प्रद्युम्नकुमार जी का घराना याज्ञजैनों में प्रख्यात है ये तीनों सम्प्रदायों के जैनों में सर्वोत्कृष्ट जमींदार हैं । ८० ग्रामों के अधिपति हैं ।

मैं बाईस वर्ष से श्रीमान् लाला प्रद्युम्नकुमार जी रईस के के यहा आजीविकित निवास करता हू । लाला जी ने अपने प्रसाद में उच्च निवासस्थान दे रखा है । लाला जी बड़े आदर सम्मान के साथ मुझे बड़ा विद्वान् मानकर सत्प सत्कृत करते हैं । जैन-जगत् प्रसिद्ध, धर्मप्राण, तीर्थभक्त-शिरोमणि, स्वर्गीय लाला जम्भूप्रसाद जी भरतवत्भोग-विरक्त थे । उन्हीं मान्य पिता जी के अनुरूप अनेक गुण लाला प्रद्युम्नकुमार जी में हैं । बड़े दयालु उदार तथा विद्वदनुरागी हैं । स्वभाव मृदु है, मिलन-प्रकृति हैं । पाच सौ रुपये मासिक दान करते हैं । अन्य भी हजारों रुपयों का दान अपने हाथों से कर चुके हैं । जिनपूजन, शुभाचरण बढे हुये हैं । गृहस्थ विद्वान् को आदर विनय करने वाले प्रभु का प्रसङ्ग बड़े भाग्य से मिलता है । तभी विद्वान का क्षयोपशम, नवनवोभेपशालिनो प्रतिभा, निराकुलता, निश्चितता, स्वोन्नति, आत्म-गौरव आदि रक्षित रह पाते हैं । रोग आदि के प्रकरणों पर हमारे कर्तों के निवारणार्थ लक्ष्य रखते हैं । आचार-विचार बड़ा अच्छा है । बाईसवर्ष से आज तक आनीविका प्रदान कर रहे हैं, भविष्यके लिये भी उच्च-भाव हैं ।

इनकी धर्मपत्नी श्रीमती श्रीभाग्यवती यह जी पञ्चाषाई की प्रकृति कोमल भद्र यत्नज्ञा है। धर्मकार्योमें दक्षावधान है। मान तो छू भी नहीं गया है। मेरी अधिक मान्यता करती है। पति के अनुरूप ही गुण हैं, दास्यती में गाढ़ स्नेह है।

ऐसे ही इनके पुत्र सौम्याकृति कुल-प्रतीप सज्जन, चाणु चिरञ्जीव देवकुमार जी हैं। नवांशसिद्धि तक धर्मराज्य पट्टे दृष्टे हैं। अंग्रेजी हिन्दी की भी प्रणुयी योग्यता है। अथवा अभी भीम घर की है। भविष्यमें अन्त्रे होनहार है। तार्थ वर्ष प्रथम विवाह हो चुका है। छोटी यह कानपुर के रायसाहिब लाला रूपचन्द्र जी की लक्ष्मी है। लम्बा, अल्पभाषण, कोमल प्रकृति बर्षा की सेवा, शिष्टा, सदाचार, अतिथि-सत्कार गुण विद्यमान है।

लाला प्रणुजकुमार जी के चित्तव्य रायबहादुर लाला हुलासराय जी रहम प्रसिद्ध धार्मिक हैं, जिन पुत्रन का विशेष अनुराग है जैन पद्धतोंका आदर, पुरस्कार, विराय करने में सदा कटिबद्ध रहते हैं। सैकड़ों दु लियों का उपकार किया है, सदा-चारी, भद्र-भद्रपरिणामी गुणदानी हैं। ये "गगन गगनाकार" के समान अनन्य हैं। अजातराणु है। यह यस्तुस्थिति है, पादुकार नहीं। मैं इस परिवार के समीचीन व्यवहारों से नि-
तात आभारी हू।

धर्म-प्राण, उदासीन आशय, दयासिन्धु जयचन्द्र जी भक्त तो त्यागियों से भी बढ़कर हैं। दसों वर्षों से दही, घी, दूध,

मीठा, तेल, हरिया सबका त्याग है। मात्र मद्य या चना अपने हाथसे भू नकर चात्र लेते हैं आठ वर्षोंसे दाज, भात, रोटी पड़ी पकवान, शाक नहीं खाया। सदा वच्चा, युवाओं, ब्रह्मों को धर्मपालन में निमग्न करते रहते हैं। परोपकारी सज्जन, दया-मूर्ति हैं। इनके उद्योग से यहा एक शुद्ध जैनश्रीपधालय चार वर्ष से चल रहा है। प्रतिदिन नवै रोगियों को श्रीपधिया अ-मूल्य दत्ती है। यहा इनके तीनसौ जैनपुत्र बने हैं। जो कि यहा या बाहर जाकर अथवा मेलों में धर्म्यक्रियाओं का प्रचार करते हैं इनने सैरुहों व धुओंको आजीविका से लगाया है, हजारों कुत्तों, झारों चूहों, पशु पक्षियों, करोडों अरघों असरघों चीटियाँ पई, घुन, लटों आदिको मौतसे बचाया है। विद्वान् की सात्त्विक चर्चा को बड़ी श्रद्धा से समझते हैं। ये शास्त्रज्ञ हैं।

मेरे कुटुम्बीजनों ने मुझे निराकुल, निश्चित, सययावृत्त्य, सामोद रक्सा है वे मेरे अनुकूल प्रवर्त रहे हैं। गृहस्थ की बुद्धि-स्थिरता, धर्मपालन, अथलेसन, उचितशुद्धाहार, आरोग्य में ये सभी सातिशय बहिरङ्ग कारण हैं। अथ भी सद्भाव रखते हैं। परस्परोपग्रहो जीवानाम्। मैं इन सत्र का आभारी हू।

स्याद्वाददीधितिसहस्रनिरस्तमिथ्या-

यादत्रिपष्टि—सहितत्रिशतीतमिस्र ।

निर्दोषपृत्तमहितो जिनपस्य जीयाद

विरयज्ञबोध-सरणिर्जगदेकमित्रम् ॥

आमारभारभृत—माणिक्यचन्द्र कौन्देय ।

सम्मति

(१)

प्रस्तुत पुस्तक के निम्न ता वे विद्वान हैं चिनका दिगम्बर-
जैन समाज में सर्वोच्च स्थान है। श्रीमान् पण्डित बंशीधर जी
इन्दौर, प० मन्मथलाल जी शास्त्री मुरना, प० देवकीनन्दन जी
कारझा, प० राजेन्द्रधर जी मधुरा, प० पत्रालाल जी सोनी, प०
कै.रा.च.द्रुपी बनारस, प० नगमोहनलाल जी और मुक्त जैसे जी
विद्वान् मुरेना विद्यालय से तयार हुये है प्राय सभी ने आप से
न्यायदीपिका से श्लोकार्थिकात् न्यायशास्त्रों का अध्ययन किया
है। जम्बू-विद्यालय सहरनपुर में भी आपने बीसों छात्रों की
जैन-न्याय तथा गोम्मटसार, राजवार्तिन, प्रवचनसार, पञ्चाध्यायी
त्रिलोकसार आदि सिद्धातप्रथ मढ़ाये है। आप न्याय, व्याकरण,
साहित्य, सिद्धात आदि विषयों के तथा पद्-दशन के अथगाही
विद्वान् है। न्याय, सिद्धात नीति आदि विषयों के लगभग ८०
हजार श्लोक आपको फण्डस्थ हैं। आपने न्याय तथा सिद्धात के
प्रमुख प्रथ श्लोकार्थिक का एक लाख बीस हजार श्लोक प्रमाण
विशाल, हिन्दी-भाष्य किया है। पाठक महानुभाव श्रीमान् पूज्य
पण्डित माणिक्यचन्द्र जी न्यायाचार्य-श्री विद्वत्ता इत्योड़े शब्दों से

आक सफ़ते हैं। आप अब अध्यापन कार्य छोड़कर धार्मिक प्रथ-स्वाध्याय, धर्माचरण में समय यापन करते हैं। अवस्था ६१ वर्ष है।

आपने इस पुस्तकमें 'धम तथा धर्म-साधन का फल और जैन तात्त्विक सिद्धांत' इन विषयों का अन्तस्तत्व स्पष्ट कर दिया है। 'धर्ममात्रक या ध्याता के लिये उपसर्ग परीपह-त्रिजय श्रेयस्वर है अथवा किसी देव आदि द्वारा उपसर्ग-निवाग्ण हित-कर है ? इस विषयका बहुत सरल सुन्दर विवेचन किया है। आप ने अपनी तार्किक तुला से तुलना करके 'कथित देवातिशय (देव-कृत सहायता से सङ्कट निवारण) तथा धीरता बीरता से घोर कष्ट सहन एवं द्वेषोपनीत पदाभयथाव है' इन बातों का ठीक यजन कर के पाठकों के सन्मुख रख दिया है।

इसके सिवाय 'प्रेन्द्रिय आदि अस्मिन्नी जीवा के दर्शन-मोहनीय आदि अष्ट-धर्मबन्ध किस प्रकार होता है आर्ति गहन्य-पूर्ण बातों का विवेचन प्रौढ प्राज्ञल भाषा में किया है। पृष्ठ २५ ३० वर्ष से किसी भी विद्वान् द्वारा लिखी गई ऐसी पुस्तक में नहीं आई। अतः यह पुस्तक अपने रूप में अनूठी पुस्तक है।

अजितकुमार जैन, शास्त्री,

अकलङ्क-प्रेस सदा

जातियाँ के ईश्वर-कृतत्ववाद का प्रभाव पड़ रहा है और उनकी असावधानी एवं शिथिलता के कारण जैना में एक प्रकार का मिथ्यात्व घुस गया है। श्रीमान् सिद्धांत महोदय, तत्परत्न, विद्वद्भ्यो परिद्धत माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य ने इस पुस्तक में इन विषय पर बड़ा सुन्दर तथा सुकियुक्त विवचन किया है। मुझको पूर्ण आशा है कि इस पुस्तक स्वाध्याय से जैना को मिथ्यात्व त्यागने में अत्यन्त सहायता प्राप्त होगी। इसने अतिरिक्त ५० जी महोदय ने इस पुस्तक में अपने चिर-अभ्यस्त ज्ञान से निनागम का मथन कर बहुत सी रहस्यपूर्ण बातें उद्घृत की हैं।

इस पुस्तक के स्वाध्याय से मुझको बहुत लाभ तथा ज्ञान प्राप्त हुआ है। ५० जी महोदयने स्थान २ पर प्रमाण व सुकिया भी दी है। ध्यान और ध्यातव्य विषयों का भी उत्तम विवेचन किया है। जैन-समाज आपका अत्यन्त कृतज्ञ है कि आपने फेरल परोपकार बुद्धि से अपना अमूल्य समय तथा परिश्रम इस पुस्तक के लिखने में व्यय किया है, और विशाल-हृदय से समाज के सामने सैकड़ों महान् प्रथा का स्वाध्याय व मनन के पश्चात् निबाले हुये रहस्यपूर्ण सिद्धांत-सत्त्व रख दिये हैं। मैं आपको इसके लिये हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

रत्नचन्द्र जैन,
मुज्जार

नेमिचन्द्र जैन वी० काँम,
(धकील)

परिशिष्ट निवेदन

नानावस्तुस्वभावमप्रकलितवपु स्यात्स्वतत्त्वाप्यनीचि,
रत्नाना अप्यगाधे गणधरमुनयः स्नान्ति यद्वोघतोये ।
मिद्वार्थापत्यनीरोद्धव—सफल—जगतारिसामर्थ्यजुष्ट—
त्राक्षी गङ्गा पुनीताद्दुरितनिरसनी चिद्वहा भव्यहसान् ॥

(पिता जी)

मैं पूज्य पिता जी पं० माणिकचन्द्र जी का अमज (बहा) पुत्र हूँ। मेरा लघु भ्राता चिरञ्जीव प्रेमचन्द्र है, भद्र स्वभाव है। मैंने पिता जी से शास्त्रीय और न्यायतीर्थ परीक्षा तक के सिद्धान्त न्याय ग्रन्थ पढ़े हैं। पिता जीने परिश्रम कर इस पुस्तक को लिखा है। अनेक प्रतिपादन तो ऐसे हैं जो मैं भी बुद्धि पर जोर लगाकर भी नहीं समझ पाता हूँ। आप भी मन, बचन, फाय से प्रयत्न कर दो तीन बार स्वाध्याय करें। सभी क्षेत्र ज्ञातव्य हैं। लोकत्रय में सब से बड़े ज्ञानदानी तो श्री अरहत्तदेव है। द्वितीय श्रीगौतम गणधर, भद्रबाहु, धरसेन, भूतबलि पुन्दकुन्द, समन्त-भद्र, अकलङ्कदेव, नेमिचन्द्र, विद्यानन्द आदि प्रकाण्ड आचार्य महोदय हैं। किन्तु पूज्य पिता जीने भी उन्हीं से प्राप्त कर यह

समयोचित मन्थ लिप्य कर विशेष ज्ञानदान किया है। आपका उत्कृष्ट उद्देश्य तो प्रयत्न-पूर्वक सब कर्मों का मोक्ष करना है। एकेन्द्रिय जीव भी व्यक्त अथवा पुरुषाय करने कीर्या-तराय कर्म का जयोपराम कर और सद्भावी ज्ञानावगण का यत्नपूर्वक जयो-पराम करता हुआ स्वशैन्द्रिय-जय ज्ञान अपना लेता है। सती नर तो प्रत्येक ज्ञान को उपजाने में अधिष्ठ कीर्ययुक्त होकर धम करते हैं। तैस्य यथा चेश्ये उस प्रयत्न को करन में अयत्नम्ब है। इन निमित्ता से परिहृता की आत्मा में स्वपुरुषार्थ पर के उर्चा श्रुतज्ञान उपजा लिया जाता है इसी लिये प्रयत्नपूर्वक किया गया स्वाध्याय सभी श्रायक या मुनियों का अधर्यक क-संख्य माना है किसी किसी निबिड पक्ति को लगाने में जाइों में पसीना आ जाता है मस्तिष्क घुलन हो जाता है। इस सफलनके स्वाध्याय से थोड़ा भी आवरण हटेगा यह एक देरा निगरा है।

बधने, घुलने के विभिन्न द्रव्य हैं। नाना पदार्थों को अनेक प्रकारके निमित्ता से बाध दिया जाता है। जैसे परधरको कपड़ा से, काठ को सरेश से, आत्मा को कपार्या से, सोने चादी को टांके से, कागज को गीद से, दम्पती को स्नेह से, कपड़े को होरा से, ईट को चूना से, ज्वर को अपथ्य से, हृष्टी को औपधि-रैख से, मित्रों को समप्रकृतित्व से, माता पुत्र को यात्सल्य से, पुटुम्बियोंको निरलक्ष व्यवहार से, धामिका को सदाचार से जोड़ दिया जाता है। सबन् आत्मा और कर्मोंकी मिथ्यात्व, असयम और प्रमादों से बधन बद्ध कर दिया जाता है। इसी प्रकार

पदार्थों के विभाग करने के भी साधन अलग हैं। सौने के मल को अग्नि या तेजाज से हटा दिया जाता है। पानी का मल फिट-करी से, ऊनी वस्त्र का मल पेट्रोल से, डामरवा मल मिट्टी के तेल से दूर हो जाता है। आत्मा और स्थूल शरीर के सम्बन्ध को त्रिप, शस्त्राघात, रक्तक्षय, तीव्रसक्लेश से हटा दिया जाता है। पेट मल को जमालगोटा से, सखिया मल को गोदुग्ध से, लोह मल को त्रिफला से, ज्वर को ज्वराक्षरा से पृथक् कर दिया जाता है। तद्वत् कम और आत्मा को रत्नत्रय, सयम, तपस्या, ध्यान, करके विभक्त कर देते हैं। प्रामाणिक पुस्तकाध्ययन से अज्ञान दूर हो जाता है।

इस निस्पृष्ट काल में जैनों कर के अन्य धार्मिक आचरणों के समान तार्किक पुस्तकें लिखना भी दुस्साध्य होगया है। पुन कोई धान्यता, ईर्ष्या, कुचोद्य, शङ्कायें छठाना, रण्डन, आक्षेप, निन्हा, फदारोप आदि छुरे छुरियों की पैनी धार के मध्य बैठ कर लिखे भी, तो पचगुनी लिखाई, छपाइ, भेजाई के कार्यों में सैकड़ों हजारों रुपये फौन धनिक लगावे। दो चार विद्वानों ने तार्किक पुस्तकें लिखीं कि तु वे अचिन्तित विघ्नों के आज्ञाने से हतोत्साह हो गये। इस पैसेके युगमें धर्मसेवन में भी धन की आवश्यकता है। निस्पृह मुनि विचारे कितने हैं? सर्वत्र द्रविणाकाक्षा पाई जाती है। मात्र शिखर जी की यात्रा में ही एक आदमी को कम से कम पचास रुपये चाहिए। प्रवास की कठिनाइयों का मेलना सूची-शय्या पर बैठना है। पैदल भी जावे तो दो महाने तक

रिक्त पेट को भोजन तो चाहिये ही। त्यागिर्या का आदर कैसा होता है ? यह उनको त्वर्य-वेद्य है। र्या आन कल जैन समाज में योग्य प्रथा का प्रकाशन मन्द पड़ गया है। आर्य समाजियों, धर्मग्रन्थों, श्रेताम्यरा में अनेक प्रथ-प्रकाशित सस्थायें हैं। विग-म्यरों में नहीं मद्रा हैं, छोटी मोटी हैं भी व लक्ष्मीपतियों के सर्वाधिकार में हैं। ठोम कृतिया को वे प्रकाशित नहीं करते हैं। अन्धे लेखकों को मोत्साहन भी नहीं देते हैं। यहा स्वामियों को जो रुचेगा सो होगा। पाण्डित्य की प्रमुखता नहीं है।

पुस्तकें छपाकर बेचने वाली संस्थाओं के लक्ष्य ही न्यारे हैं। विगम्यर जैनों की परिस्थितिया ही विलक्षण हैं चार सौ वर्ष के प्राचीन विद्वान ने ठीक कहा है कि—

घोद्धारो मत्सरग्रस्ता, प्रभय' स्पयद्विता ।

अबोधोपहताथान्ये, जीर्णं मन्ये सुभाषितम् ॥

सभी धार्मिक अनुष्ठानों में तथा विशेषतः साहित्यिक पुस्तकें या प्रौढ-प्रथा की भाषा टीका लिखने में जिनेन्द्र-भक्ति, जैनप्रथों का पुरुषार्थ से अन्तःप्रविष्ट अध्ययन, शुभ-विचार, तीर्थ-यात्रा, प्रतिभा, शुद्ध भोजन, शास्त्रान्तरज्ञान प्रह्वचर्य, तर्कणाशक्ति आदि गुण कारण हैं तथा दूसरोंसे वैय्यावृत्त्य या रुशामद धराते रहना अकर्मण्य चुप बैठना, पुनापा अल्पसार पुस्तकें या अत्यन्त पढ़ना विनोद-ब्राला, मानसिक अशुद्धि भावदिसा, प्रवेशी स्वाध्याय न करना, फोरा अभिमान, आलस्य, राद्य-वेद्य आदि के बाह्य सुखों

का स्वाद, कुटुम्बि-स्नेह, व्यथे मोह, धनार्जन परत्व आदि दोष प्रति बंधक, है ।

यों कतिपय परिस्थितियों को देख कर किहीं त्यागी या विद्वानों ने "मौन सर्वावसाधनम्" का आश्रय ले लिया है । इस फलन से बोधित या प्रेरित हो कर कोई विद्वान् या त्यागी नवीन प्रतिपादन पद्धति से प्रौढ वाचिक पुस्तकें लिखेंगे तो वे इस युगमें जैनात्मन जनता का महान् उपकार करेंगे । राजवातिक गोम्मट-सार श्लोकवार्तिक आदि खानोंमें असरय प्रमेय-रत्न भर रहे हैं । समुद्रावगाहन कर उनको युक्तियों और दृष्टान्तों द्वारा भव्य दश-भाषा में प्रकट दिखाने की आवश्यकता है । प्रमाणों, नवों, पद्-द्रव्यों, लेश्याश्रा, धर्माभू, भोजन शुद्धि, एकेन्द्रियजीवसिद्धि, तज्ज्ञान, सूयभ्रमण, सप्तभङ्गो, सम्यक्त्व, ध्यान, शरीरकमरचना आदि विषयों पर कतिपय तल्लज सिद्धांत पुस्तकें लिखे जाने की प्रचुर आवश्यकता है । तभी विशाल जिनेन्द्रशासन की वज्रलेप प्र-भायना हो सकेगी । हित, गम्भीर, महान्, जैन साहित्य के सम्मुख आधुनिक उपलब्ध सैरङ्गो गुना अल्पसार साहित्य छोटा, फीका जखेगा ।

सहारनपुर में सब से छोटा खाने योग्य खीरा छह मासों का होता है । और मालवे में पाच सेर पक्के का खीरा उपजता है । यहा बहुत पक्का आम एक तोले का लगता है । और बड़ा आम सौ तोले तक का होता है । मध्यम अवगाहनाश्रों के धारी आम्रफल भी यहा पाये जाते हैं । हमारे घर में एक छोटी कसैड़ी

ऐसी है जिसमें केवल तीन तोला दाल घनती है। बड़े भगोने में पाच सेर दाल पकती है। जाला जी, के यहा एक पारधा टेमा है जिस में पाच मन साग छुक जाता है। अजमेर की दरगाह में एक डेरा ठसी है जिस में पाच सौ मन खीर रघती है। ऐसे ही छह मागे से लेकर सौ मन तक की पढ़िया देखी गई है। तहत मनुष्यों, पुद्गलों, देवों और देवा के कार्यों में तथा विद्वहल्लोयों में भी तारतम्य है पाग, भाग, थाणी, सुरत, विवेक प्रवृत्ति, हाता-कारों के समान बड़े विद्वान् और छोटे परिहृत के लेखा में बड़ा अंतर है।

विद्वान् सूर्य समान स्वपरप्रकाशक है। सूर्य मूलमें ठंडा है किरणें उष्ण हैं। सूर्य से कोई रत्ती भर किरण यहा नही आती है या मूसमरोत्या असाग्राते पृथ्वी-कायिक जीव यहा जन्म, मरण कर रहे हैं और अनन्ते पुद्गल स्वयं सूर्य में से आने जाते रहते हैं उनका प्रकाश या किरणों से कोई सम्बन्ध नहीं है सूर्य और आलोकित पदार्थों के मध्य क्षेत्र में अतन्त बादर पुद्गल भरा हुआ है। यह सूर्य निमित्त से उष्ण हो जाता है जैसे अग्नि के निमित्त से जल गर्म हो जाता है। टोकनी के जल में घून्हे से रत्तीभर भी आग नही आती है अग्नि स्पर्श से पैदा तप्त हो जाता है पैदे से छुआ पानी भी गर्म हो जाता है। नैयाधिक गर्म पानी में अग्नि मिल जाना स्वीकार करते हैं सो ठोक नहीं है। दीपक प्रकार से भी मध्यवर्ती पुद्गल प्रकाशित हो जाता है। जैनसिद्धांत यों है कि पौद्गलिक कासा अघेरा शुक्ल-प्रकाशमय परिणम जाता

है। और दीपक में से झुठ आता जाता नहीं। शीतल सूर्य के निमित्त से सौ योजन ऊपर, पचास हजार तिरछा और अठारहसौ योजन नीचे भरे हुये वादर स्वन्ध प्रतापित, प्रकाशित हो जाते हैं। हरा कपडा और लाल कपडा दोनों मूल में ठण्डे हैं। किन्तु हरा कपडा टूटती आखों पर रखने से लाभ होता है और लाल कपडे की कान्ति से हानि।

फन्तूरी, सौंठ, पीपल, चित्रक, पीपलामूल भी परिपाक में उष्ण हैं मूल में नहीं। मकरध्वज, घृहघ्नोदय शीशी में ठण्डे रखे हैं आसन्न-मरण नर की शीत व्यथा में एक चानल धरोवर देते ही सम्पूर्ण शरीर गर्मागम हो जाता है। हा अग्नि तो मूल और प्रभा दोनों में उष्ण है। चन्द्रमा दोनों में ठण्डा है। बस इन्हीं पदार्थों के समान प्रतिपादक के ज्ञान की किरणें प्रतिपाद्य को धारमा को ज्ञानप्रकाशित करती हैं। आता जाता झुठ भी नहीं है। मात्र छोटा सा पृथग्भावरूप से निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। क्रमिक स्वाध्याय से अधिक ज्ञान लाभ होना है चारित्र्यपालन भी क्रमबद्ध होय।

हम आप, अप्रमी चौंस या प्रतिदिन नित-पूजन में सचित अचित्त रली मिली सामग्री चढ़ाते हैं, पर्यं के दिन हरित धनधृति नहीं दाते। सचित्त जल या नमक की डेली पी रखा लेते हैं। सचित्त जल से अभिपेक करते हैं। चढ़ाने के पानी में एक लौंग डाल देने से क्या हो जाता है? एक लोटा जल में एक तोला लव्हचूर्ण घोलो तब रसा तर होकर अचित्त बने। धूप

को सचित्त अभिमे डालते हैं। कोई कोई घृष्टीपक या पर्पूर-
 शीपक भी चढ़ाने हैं, दक्षिण देशमें इससे भी अधिक सचित्त द्रव्य
 चढ़ाये जाते हैं। यों हम पाश्चिमा के कोई पाचवीं प्रतिमा की
 म्रिया दो रती हैं। कोई पहिली प्रतिमा की भी नहीं। हां अम्मास
 रूप जो हो जाय अच्छा ही है। मम होता तो अच्छा था। आप
 अष्टमी, चौदस, अष्टादश, दसलक्षण, महीने की आदि तिथि,
 वर्ष का आद्य-दिवस, स्वप्न-मतिथि आदि तिथियां में अधिक धर्म
 सेवन करो। भावक को विशेष तिथियों का लक्ष्य रम्यता चाहिये
 मुनिमहाराज अतिथि हैं, गृहस्व सतिथि हैं।

इस पुस्तकान्वयन से आप को क्या ज्ञान लाभ हुआ ?
 इसका अनुभव तो आप ही करेंगे स्वयं आत्माही रत्नत्रयमय है।
 पुस्तक तो बाह्य निमित्तमात्र है। इस निमित्त के बिना ज्ञानपन
 रसाध्याद तो लेखक महोदय को प्राप्त हुआ ही होगा। मैं पिताजी
 की प्रकृति को जानता हूँ वे सात्त्विक विषया के आनन्द में लौकिक
 धावा को भूलकर तन्मय हो जाते हैं। अन्य विज्ञातवत्त्व उद्ध
 विद्वान् तो प्रथम से ही ज्ञानानन्दित हो चुके हंगे। इन परिदृष्ट
 जी की शास्त्र-य, ज्ञानहेतु, वाक्यावलि से हम आप सभी लो-
 पातिप्राप्त ज्ञान-द प्राप्त करें ऐसा निवेदन है। पूज्य ताऊजी स्व०
 परिदृष्ट नरसिंहदास जी के चित्र का ब्लाफ उपद्रवोंसे पारण नहीं
 बन सका इसका भृश अनुताप है। काकाजी अपना चित्र नहीं
 छपाना चाहते थे, कई बार निषेध किया, किन्तु भी सुशीलादेवी
 जी के भ्राता बाला बलवंतप्रसाद जी ने छद्म सात धार जोर देकर

फदा नि पण्डित जी का चित्र अवश्य लपेगा। तदनुसार फाका जी का चित्र लगा लिया है। चित्र तो पौद्गलिक है आप सहजशुद्ध निर्णिकल्प, निरञ्जन, महानन्द, निदात्मतत्त्व परिणति कारण पर लक्ष्य पहुँचाइयेगा।

२५१) सुशीलारानी दिल्ली—मे एजर्जीय लाला अयुध्या-प्रसाद जी महारनपुर की बड़ी पुत्री हैं। सम्बत् १९४४ मे जन्म हुआ सम्बत् १९६० में विवाह हुआ। समाज प्रख्यात रायबहादुर लाला सुलतानसिंह जी रईस देहली की पत्नी हैं। यहा के धनाढ्य प्रसिद्ध धार्मिक लाला सुमतिप्रसाद जी, बलवन्तप्रसाद जी, शातिप्रसाद जी, कातिप्रसाद जी की बड़ी बहिन हैं। तत्त्वार्थसूत्र आदि पढ़ी हैं। धर्म मे रुचि है। दशन, पूजन, व्रत, नियम करती हैं। अष्टमी चौदश को विशेष व्रत रखती है, शिक्त हैं। दीपपरिपाक अटल है, 'यमस्य करणा नास्ति'। सम्बत् १९८७ में इनको ब्रह्मप्रहारघत् पति-वियोग का दुःख सहना पड़ा। तब से विशेष रूप से परोपकार करने में मनोयोग रखती हैं। अनेक सभा सुसाइटियों की सदस्या हैं। प्रैसिडेंट देहली वूमंस लीग (President Delhi womens league) प्रैसिडेंट मैनेजिंग कमिटी इन्द्रप्रस्थ गर्ल्स स्कूल (President maneging Committee Indraprastha girls School) अन्य भी बहुत दान देती हैं। इनके छोटेभाई लाला बलवन्तप्रसाद जी यहा बड़े धर्मात्मा सज्जन हैं, विद्वानों के स्नेहानुगामी हैं। जिन-पूजन जाप और ध्यान मे दत्तावधान हैं। स्वभाव से मृदु हैं, सर्वदा

को सचित्त शक्तिमें टालन है। कोइ कोई पृथक्पृथक् या कर्पूर-दीपक भी चढ़ान टे. दक्षिण त्रेरामे इमसे भी अतिव मपित द्रव्य पडाये जाते है। यो हम पाठिका के कोई पापयो प्रतिमा की मिया हो रहीं हैं। कोठ पहिली प्रतिमा की भी गहा। हां अम्मास रूप जो लो जाय कष्टा होई है। मम होता तो कष्टा था। आप अष्टमी, धौदस, अष्टादश, दसमराण, महीने की आदि तिथि, पर्य का आप-द्विस, स्वप्न-मतिथि आदि तिथिया में अतिव धर्म सेवन करो। आपक को विशेष तिथियों का लक्ष्य रगना पाद्विमे मुनिनक्षत्र प्रतिथि है, गृह्म सतिथि है।

इम पुस्तकअध्ययन से आप को ऐसा ज्ञान प्राप्त हुआ ?। इसका अनुभव तो आप ही करेंगे स्वय आत्माही रसनयमय है। पुस्तक तो पाद्य निमित्तमात्र है। इस निमित्त के बिना ज्ञानपन रसास्वाद तो लोचक महोदय को प्राप्त हुआ ही होगा। मैं पिताजी की प्रकृति को जानता हू व साद्विषय विषया के आनन्द में कौटिक धारता की भूलकर तमय ही जात है। अन्य विशातपत्य उद्य विद्वान तो प्रथम से ही ज्ञानानन्दित हो चुके हान। इन परिदृश जी की ज्ञानजन्य, ज्ञानहेतु, पाक्यापनि से हम आप सभी लो-कातिनात्र आनन्द प्राप्त करें ऐसा निवेदन है। पूज्य साऊजी स्व० परिदृश नरसिंहदास जी के चित्र का न्लाक उपद्रुषोक कारण नहीं बन सका इसका गृह अनुताप है। काकाजी अपनी चित्र गही छपाता चाहते थ, कई बार निषेध किया, किन्तु भी मुशीगादेवी जी के भावा लाला बलवन्तप्रसाद जी ने उह सात बार जोर देकर

कहा कि परिचित जी का चित्र अवश्य छपेगा। तन्नुमार काका जी का चित्र लगा दिया है। चित्र तो पौद्गलिक है आप सहज शुद्ध निर्रिकल्प, निरखन, सहजानन्द, चिदात्मतत्त्व परिणति' कारणों पर लक्ष्य पहुँचायेगा।

२५१) सुशीलारानी दिल्ली—मे स्वर्गीय लाला अयुध्या-प्रसाद जी सहारनपुर की बड़ी पुत्री हैं। सम्बत् १९४४ मे जन्म हुआ सम्बत् १९६० में विवाह हुआ। समाज प्रख्यात रायबहादुर लाला मुलतानसिंह जी रईस देहली की पत्नी हैं। यहा के धनाढ्य प्रसिद्ध धार्मिक लाला सुमतिप्रसाद जी, बलवन्तप्रसाद जी, शातिप्रसाद जी, कर्तिप्रसाद जी की बड़ी बहिन हैं। तत्त्वार्थसूत्र आदि पढ़ी हैं। धर्म मे रुचि है। दशन, पूजन, व्रत, नियम फरती हैं। आष्टमी चौदश को विशेष व्रत रखती हैं, शिखित हैं। दिनपरिपाक अटल है, 'यमस्य करणा नास्ति'। सम्बत् १९८७ मे इनको बसप्रहारवत् पति-वियोग का दुःख सहना पड़ा। तब से विशेष रूप से परोपकार करने में मनोयोग रखती हैं। अनेक सभा मुसाइटियों की सदस्या हैं। प्रैसिडेंट देहली वूमंस लीग (President Delhi womens league) प्रैसिडेंट मैनेजिंग कमेटी इन्द्रप्रस्थ गर्ल्स स्कूल (President maneging Committee Indraprastha girls School) अथ भी बहुत दान देती हैं। इनके छोटेभाई लाला बलवन्तप्रसाद जी यहा बड़े धर्मात्मा सग्नन हैं, विद्वानों के स्नेहानुगामी हैं। जिन-पूजन जाप और ध्यान मे दत्तावधान हैं। एतत्काल मे

शुद्ध भोजन करते हैं, अनेक व्रत पालते हैं। शास्त्र सुनने का भारी चाव है।

१००) गुणमाला देवी—ये यद्वा के प्राचीन श्रोता स्वर्गीय लाला निशालचन्द्र जी की पुत्री हैं। लाला सुमतिप्रसादजी की गृहिणी हैं। यद्वा की कन्यापाठशाला की सस्थापिकाओं में से एक हैं। उसकी चिर-मन्त्रिणी रही। विन-पूजन का अनुराग है। व्रत नियमों को पालती हैं। स्वाध्याय अच्छा है। स्त्रियों में उपदेश करती हैं। विनय, लज्जा, आदर विद्वानों में श्रद्धा आदि गुण हैं।

१००) लाला समुन्दरलाल जी—यद्वा के प्रसिद्ध श्रोता, चर्चा-प्रेमी हैं, कर्णयें मन्द हैं। जाप, जिन-भक्ति, ध्यान, तत्त्व-चर्चा में विशेष अनुराग है, विद्वद्भक्ति है। गृहभार को महेन्द्र लाल पुत्र सम्भालते हैं। दम्पती—धर्म सेवन करते हैं, अवस्था ६२ वर्ष है। कतिपय यात्रायें की हैं।

१२५) श्रीकातादेवी—ये मेरी माय माता हैं। धर्मपालन में भारी रुचि है। भोजन-शुद्धि, अतिथि सत्कार पर पूरा लक्ष्य रखती हैं। पूज्य पिता जी (५० माणिकचन्द्र जी) कई वार कठोर रोगाक्रान्त हो गये तो इन्होंने दिन रात के कष्टों को अणुमात्र नहीं गिना, प्रकाण्ड सेवा करके अच्छा कर लिया। सर्व घर को निराशुल अनुपम स्नेह-मात्र बनाये रखती हैं। कुटुम्ब रिश्तेदारों में भारी प्रतिष्ठा है, गृह-लक्ष्मी हैं। कई वार शिखरजी महाराज की यात्रायें की हैं, जैतवद्री मूलनद्री, गिरनार जी, सीनागिर, बड़वानी

गनपथा, पात्रागिरि, पावागढ, पात्रापुर की भी यन्त्रार्य की हैं।
 प्रतोद्यापन मिये हैं। मातृत्व भरा हुआ है। लड़के, बहुर्ये नानी
 सत्र प्रतिष्ठा करते हैं। सत्तर कुटुम्बजन इनकी आजा मानते हैं।
 भतीजे, भतीज बहुर्ये, नाती कुटुम्बो इनकी आजाओ शिरमा माय
 करते हैं। इनके दो जेठ विद्यमान हैं, सभी जेठों ने बहुर्येमान रत्ना
 इनने भी सासू जेठ, ससुर की अधिक परिचर्या की।

५१) मामचन् जी सराफ, ये युवक होकर धर्म्य-त्रियाया
 को करने में उत्साही हैं। प्राचीन आजाय के पोषक हैं ठोम त्रि
 दान या त्यागियों में भक्ति रखते हैं इनके पिता जी लाला महावीर
 प्रसाद जी सज्जन हैं।

इस पुस्तक की प्रेस-कापी लिप्राई, हजार प्रतिया छपाई,
 १६ रिम कागज, प्रेषण, वाइडिंग आदि में आठ सौ आठ ८००)
 रुपये व्यय हुये हैं प्रत्येक वस्तु महर्घ्य हो गयी है।

इस पावन फायमें निम्नलिखित श्रावक, श्राविकाओं ने स्व-
 योग्य बहुभाग सहायता प्रदान की है उनका समयोचित दान श्ग-
 धनीय है।

श्रावक्यौ

- | | |
|------------------------------|------------------------|
| २५१) श्री सुरीलादेवी | ६७) पुस्तक की रफ फेरने |
| १००) गुणमाता देवी | कापी कराई लेखकको मिये |
| १००) लाला समुन्दरलाल जी ६१५) | ५० अक्षितभारती |

[२०४]

५१) भाई मामचंद जी
१०५) पूज्य मेरी माताजी
६२७)

अकलङ्क प्रेस सहारनपुर
को १००० प्रति छपाई १६
रिम कागज वाशरिडग
आनि ।

६४) प्रतिया ४५० बाहर भेजी
जावेंगी प्रति पोस्ट =)
२३) सत्रासौ प्रतिया रनिष्टई
भेजी जावेंगी प्रति ३.
६) स्फुट परितोष

६०८) हुल सच

स्याद्वादोन्नतवर्द्धमानहिमरत्पन्नागतोनि सृता

स्रान्यज्ञसिधृताजटाकजिनभृद्द्वीपागनिद्रौतमात् ।

सन्तप्तात्महिताप्यफुण्डवदुमास्वाम्याननाद् रोहिता,
निर्देशादिकृणान्विकीर्य जिनवाग्गमा पुनात्वाशु न ॥

(श्री श्लोकवार्तिक हिन्दी टीका)

भरदीय —

बपचन्द्र जैन कौन्दय शास्त्री

न्यायती १/१

१५

पूर्वायातिरिक्त

५०) चाचू कस्तूरचन्द्रजी जैन—ये होनहार युवक हैं। इनके पिता लाला रुडामलजी डेरे सामयाने बाले अर्मात्मा हैं। इन्होंने कतिपय यात्रायें की हैं। एक बार स्थानीय रथोत्सव भी बड़े ठाठ से कराया। इनके पिता स्वर्गीय लाला नारायणदास जी भव्य थे।

निकेदक

नवीन टाइपक हाते हुये भी शोकारकी मात्रा कम-तोर होनेके कारण छपते समय दबकर अनेक स्थानोंपर शोकारकी मात्रावत् छपती रही, पाठरुचुन्द ! खयाल रखो।